आबू

कीर्त्ति स्थम्भ (तीर्थ स्थान)

प्रकाशक—
मैनेजिंग कमिटी,
सेठ कल्याणजी परमानन्दजी
देलवाड़ा (आबू)-सिरोही

प्रथमावृत्ति
२००० प्रति.

मुद्रक—
के. हमीरमल लूणियां
दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

जगतपूज्य–स्वर्गस्थ–गुरुदेव

श्री [illegible]

महाराज को अर्घ्य

धर्मो विज्ञवरेण्यसेवितपदो

धर्मं भजे भावतः,

धर्मेणा वधुतः कुवोधनिचयो

धर्माय मे स्यान्नतिः।

धर्माच्चिन्तित कार्यपूर्ति रखिला

धर्मस्य तेजो महत्,

धर्मे शासनरागधैर्यसुगुणाः

श्रीधर्म ! धर्मं दिश ॥ १ ॥

जन्म संवत् १९२५. **दीक्षा संवत् १९४४.**

आचार्य्यपद संवत् १९६५. **स्वर्गगमन संवत् १९७९.**

D. J. Press, Ajmer.

प्रकाशक का निवेदन

भारतवर्ष का शृंगार और राजपूताने का शिर छत्र, जगद्विख्यात 'आबू' पर्वत यह इस ग्रंथ का विषय है। तो फिर हमें 'आबू' के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती। इधर ग्रंथकार ने अपने 'किञ्चिद्वक्तव्य' में तथा 'उपोद्घात' के लेखक मुनिराज श्री विद्याविजयजी ने भी 'आबू' की प्रसिद्धि के कारण और आबू-देलवाड़ा के मंदिरों के निर्माता पर अच्छा प्रकाश डाला है। हम इस ग्रंथ के संबन्ध में इतना तो अवश्य कहेंगे कि—'आबू' जैसे जगत प्रसिद्ध पर्वत के संबन्ध में ग्रन्थकार मुनिराज श्री ने अधिकार पूर्ण लेखिनी से सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ निर्माण किया है और इसके प्रकाशित कराने का प्रसङ्ग हमें प्राप्त हुआ, इसके लिये हम अपना अहोभाग्य समझते हैं।

मुनिराज श्री जयन्त विजयजी ने इस ग्रन्थ की योजना केवल अन्यान्य ग्रंथों अथवा अन्यान्य साधनों पर से नहीं की, किन्तु 'आबू' में दो बार पधार कर सारे स्थानों को

स्वयं देखकर पूर्ण अनुभव प्राप्त करके की है। इतिहासिक बातें भी केवल किंवदन्तियों पर से नहीं परन्तु शास्त्रों के प्रमाणों से दी है। इस प्रकार अनेक परिश्रम पूर्वक जिसकी योजना की गई हो। उसकी सत्यता, और प्रामाणिकता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। ग्रन्थ की श्रेष्ठता का क्या वर्णन करें, 'हाथ कंगन को आरसी' की जरूरत नहीं रहती। ग्रन्थ पढ़ने वाले स्वयं देख सकते हैं कि—ग्रंथकार ने कितना परिश्रम किया है।

यह ग्रंथ प्रथम मुनिराज श्री जयन्तविजयजी ने गुज-राती भाषा में तैयार किया था, और जिसको भावनगर की 'श्री यशोविजय ग्रंथमाला' ने प्रकाशित किया था। कुछ ही समय में उसकी प्रथमावृत्ति समाप्त हो गई, उसकी दूसरी आवृत्ति भी लगभग प्रकाशित होने की तैयारी में है। यह भी इस पुस्तक की लोकमान्यता, श्रेष्ठता का एक प्रमाण ही है।

अब हम ग्रंथकार' के विषय में दो शब्द कहना चाहते हैं।

पाठकों को स्मरण में होगा कि 'आबू-देलवाड़े के जिन पवित्र मंदिरों का वर्णन इस ग्रन्थ में दिया गया है,

उन्हीं पवित्र मंदिरों में यूरोपियन लोग बूट पहन कर जाते थे। इस भयंकर आशातना को, आज से करीब १६-२० वर्ष पूर्व एक महान् पुरुष ने विलायत तक प्रयत्न करके, दूर करवाया था। वे जैन धर्मोद्धारक, नवयुग प्रवर्त्तक, शास्त्र विशारद जैनाचार्य्य श्री विजयधर्मसूरि हैं। 'आबू' ग्रन्थ के निर्माता इन्हीं पूज्यपाद आचार्य्य देव के विद्वान् और प्रसिद्ध शिष्यों में से एक हैं।

मुनिराज श्रीजयन्त विजयजी ने 'शान्त मूर्त्ति' के नाम से खूब ख्याति प्राप्त की है। सचमुच ही आप शान्ति के सागर हैं। आपकी शान्तवृत्ति का प्रभाव कैसे भी मनुष्य पर पड़े बिना नहीं रहता। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने में आप रात दिन तल्लीन रहते हैं। क्लेशादि प्रसंगों से आप कोसों दूर रहते हैं। हमें भी आपके दर्शन का लाभ लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आपने काशी की श्री जैन पाठशाला में गुरुदेव श्री विजयधर्मसूरि महाराज की छत्रछाया में वर्षों तक रह कर संस्कृत प्राकृत का खूब अभ्यास किया था। आपने अपने पूर्वाश्रम में अनेक संस्थाओं के चलाने का कार्य बड़ी दक्षता के साथ किया था और गुरु के साथ बंगाल, मध्य हिन्दुस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि देशों में खूब

भ्रमण भी किया, इससे आप में अनुभव ज्ञान भी अपार है।

आपकी प्रवृत्ति प्रति समय ज्ञान, ध्यान और लेखनादि क्रियाओं में ही रहती है। आपकी कलम ठंडी, परन्तु वज्र लेप समान होती है। आप जो कुछ लिखते हैं। प्रमाण-पुरःसर और अनेक खोजों के साथ लिखते हैं। आपका विहार वर्णन, कमल संयमी, टीका युक्त उत्तराध्ययन सूत्र, सिद्धान्त रत्निका की टीप्पणी, श्रीहेमचन्द्राचार्य्य के त्रिषष्ठिशला का पुरुष चरित्र के दसों पर्वों की सुक्तियों का संग्रह आदि आपके लिखे हुए ग्रन्थ हैं।

इन कार्यों से स्पष्ट है कि—मुनिराज श्रीजयन्तविजयजी न केवल पवित्र चारित्र पालक साधु ही हैं, किन्तु विद्वान् भी हैं। आपने अपने ज्ञान का लाभ देकर कितने ही गृहस्थ बालकों को विद्वान् भी बनाया है।

जिस समय मुनिराज श्रीजयन्तविजयजी सिरोही पधारे थे, उस समय आपके इस ग्रन्थ के प्रकाशन के सम्बन्ध में बातचीत हुई और यह निर्णय हुआ कि—'आबू' की यह हिन्दी आवृत्ति हमारी पेढी की तरफ से प्रकाशित की जाय। उस समय के निश्चयानुसार आज हम यह ग्रन्थ

जनता के कर कमलों में रखने को भाग्यशाली हुए हैं। एतदर्थ हम ग्रन्थकार मुनिराज श्री के आभारी हैं।

हमारी इच्छानुसार इस ग्रंथ को चैत्री ओलीजी के पहले प्रकाशित कर देने में दि डायमंड जुबिली प्रेस, अजमेर ने जो योग दिया है, इसके लिये हम उसके भी आभारी हैं।

सिरोही,
फाल्गुन शुक्ल १४
वीर सं. २४५६, वि. सं. १९८६

निवेदक—
मैनेजिंग कमेटी—
सेठ कल्याणजी परमानन्दजी
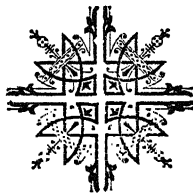
* जगत्पूज्य, श्री विजयधर्मसूरिभ्यो नमः *

किञ्चिद् वक्तव्य

'आबू' और 'आबू-देलवाड़े' के जैन मन्दिरों की संसार में कितनी ख्याति है? यह किसी से अज्ञात नहीं है। बहुत से यूरोपियन और भारतीय विद्वानों ने उस पर बहुत लिखा है, कुछ गाईड कुछ फोटो के एल्बम भी प्रकाशित हुए हैं। परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो 'आबू' पर की एक-एक वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान दे सके, मन्दिरों में भी कहां क्या है? उसका इतिहास बता सके ऐसी एक भी पुस्तक किसी भी भाषा में नहीं है। अतएव प्रसंगोपात आज से करीब छः वर्ष पहले मुझे 'आबू' पर जाने का प्रसंग प्राप्त हुआ था और वहां कुछ स्थिरता भी हुई। इसका लाभ लेकर आबू सम्बन्धी कुछ बातें मैंने लिखीं। जहां तहां खोज करके संग्रह करने योग्य बातों का संग्रह किया। थोड़े समय में मेरे पास अच्छा संग्रह हो गया। प्रथम तो मैंने उसको लेखों के ढँग पर लिखना प्रारम्भ किया परन्तु मित्रों और साहित्य प्रेमियों के अनुरोध ने मुझे 'आबू'
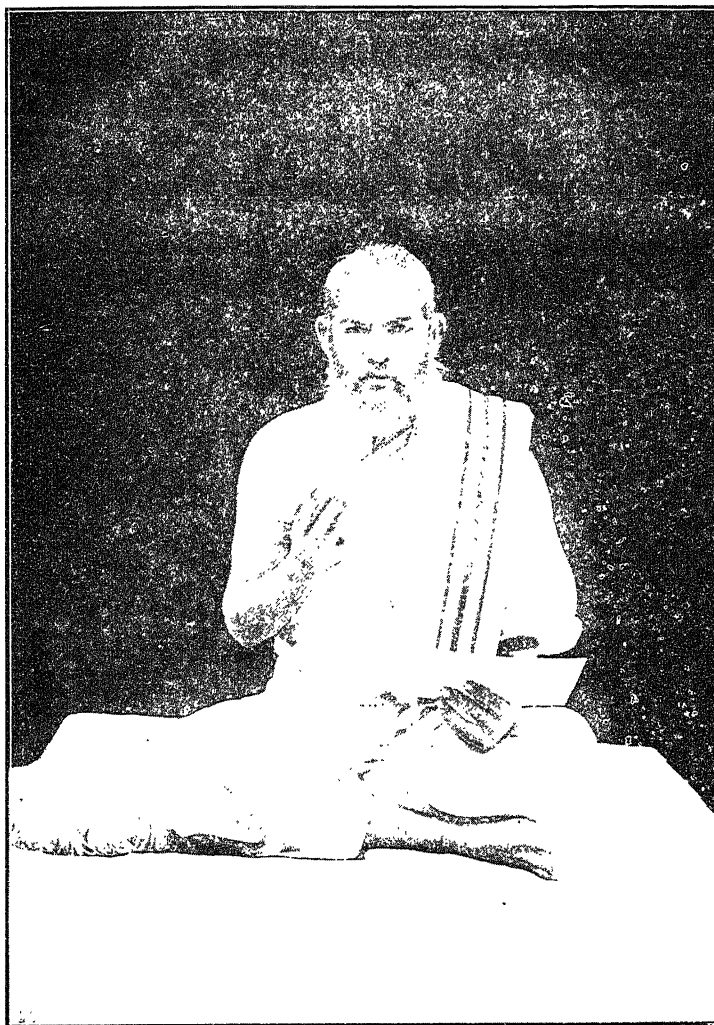
'आबू' के लेखक—शान्त मूर्त्ति मुनिराज श्री जयंत विजयजी महारा

D. J. Press, Ajmer.

सम्बन्धी एक पुस्तक तय्यार करने के लिये बाध्य किया।
जो पुस्तक आज से तीन वर्ष पहले 'आबू' के नाम से
गुजराती में प्रकाशित की गई थी।

थोड़े ही समय में 'आबू' की प्रथमावृत्ति बिक गई
और प्रथमावृत्ति के मेरे 'किञ्चिद्वक्तव्य' में जैसा कि मैंने
कहा था, 'दूसरा भाग' तय्यार करूं, उसके पहले ही
प्रथम भाग की 'दूसरी आवृत्ति' अनेक संशोधनों के साथ
निकालने की आवश्यकता खड़ी हुई। यह सचमुच मेरे
आनन्द का विषय हुआ और मेरे परिश्रम की इतने अंशो
में मिलने वाली सफलता के लिये मैंने अपने को भाग्य-
शाली समझा।

जिस समय 'आबू' सम्बन्धी मेरे लेख 'धर्मध्वज' में
प्रकाशित होने लगे; उस समय प्रथमावृत्ति के 'वक्तव्य' में
जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूँ, "किसी ने इस पुस्तक में
मन्दिर की सुन्दर कारीगरी के फोटू देने की, किसी ने
विमल मंत्री, वस्तुपाल तेजपाल आदि के फोटू देने
की; किसी ने मन्दिरों के स्थान और बाहर के दृश्यों के फोटू
देने की; किसी ने देलवाड़ा और सारे 'आबू' पहाड़ का
नकशा देने की; किसी ने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी

ऐसे तीनों भाषाओं में इस पुस्तक को छपावाने की और किसी ने 'आबू' सम्बन्धी रास, स्तोत्र, कल्प स्तुति, स्तवनादि (प्रकाशित और अप्रकाशित-सब) को एक स्वतन्त्र 'परिशिष्ठ' में देने की—" ऐसी अनेक प्रकार की सूचनाएँ बहुत से आकांक्षिओं की तरफ से हुई, और ये सूचनाएँ उपयोगी होने से उसका अमल 'दूसरे भाग' में करने का विचार मैंने रक्खा था, परन्तु 'दूसरा भाग' (गुजराती) शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से तय्यार करने का विचार होने से, तथा उस वक्त तय्यार करने में कुछ विलम्ब देख कर उपर्युक्त सूचनाओं में से कुछ सूचनाओं का यथा साध्य उपयोग मैंने गुजराती की दूसरी आवृत्ति में कर लिया है।

प्रथमावृत्ति की अपेक्षा गुजराती की दूसरी आवृत्ति में बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ है, उसी के अनुसार यह अनुवाद हिन्दी की प्रथम आवृत्ति-प्रकाशित की गई है।

गुजराती की प्रथमावृत्ति की अपेक्षा दूसरी आवृत्ति, में जिसका यह अनुवाद है, आशातीत परिवर्त्तन और परिवर्द्धन करने का प्रसंग, सं० १९८६ की मेरी 'आबू' की दूसरी यात्रा के प्रसंग से प्राप्त हुआ। इस दूसरी यात्रा से मैं दो मास 'आबू' पर रहा और गुजराती की प्रथमावृत्ति की एक एक बात को मिलान बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया।

इस प्रसंग पर मैं एक खास बात का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं।

'आबू' के मंदिरों में खास करके 'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' नामक विश्व विख्यात मंदिर हैं, देखने की खास चीज उनकी कारीगरी-कोतरणी और खुदाई का काम है। यह कारीगरी, भारतीय शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। जिसके पीछे करोड़ों रुपये इन मंदिरों के निर्माताओं ने व्यय किये हैं। शिल्प के ज्ञाता किंवा शिल्प से अभिरुचि रखने वाले शिल्पकला की दृष्टि से इसका निरीक्षण करें, परन्तु इस शिल्प के नमूनों (कारीगरी) में से हम और भी बहुतसी बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—उस समय का वेष, उस समय के रीत-रिवाज, उस समय का व्यवहार आदि। देखिये—

१—'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' के खुदाई में जैन साधुओं की मूर्त्तिएँ। क्या उस पर से हमें यह पता नहीं चलता है कि आज से सातसौ वर्ष के पहले भी जैन साधुओं का वेष लगभग इस समय के साधुओं के जैसा ही था। देखिये मुँहपत्ति हाथ में ही है, न कि मुख पर बंधी हुई। दंडे भी उस समय के साधु अवश्य रखते थे। हां, आधुनिक

रिवाज के अनुसार, उन दंडों के ऊपर मोघरा नहीं बनाया जाता था।

२—कोतरणी में क्या देखा जाता है? चैत्यवंदन, गुरु-वंदन, पैर दबाना (भक्ति करना), साष्टांग नमस्कार, व्याख्यान के समय ठवणी का रखना, गुरु का शिष्य के सिर पर वासक्षेप डालना आदि अनुष्ठान क्रियाएँ कैसी दिखती हैं? क्या उस समय की और इस समय की क्रियाओं की तुलना करने का यह साधन नहीं है?

३—उसी नक़्शी में राज-सभाएँ, जुलूस (प्रोसेशन) सवारियां, नाटक, ग्राम्य जीवन, पशु पालन, व्यापार, युद्ध आदि के दृश्य भी दृष्टिगोचर होते हैं। ये वस्तुएँ उस समय के व्यवहारों का ज्ञान कराने में बहुत उपयोगी हो सकती हैं।

४—इसी प्रकार जैन मूर्त्ति शास्त्र किंवा जैन शिल्प शास्त्र का अभ्यास करने किंवा अनुभव प्राप्त करने का भी यहां अपूर्व साधन है। किन्हीं किन्हीं मूर्त्तिओं अथवा परिकरों को देख करके तो बहुत ही आश्चर्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ—भीमाशाह के मंदिर में मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान् की

धातुमयी सुन्दर नक्शी वाली पंचतीर्थी के परिकर युक्त जो मूर्त्ति है, वह करीब ८ फुट ऊँची और साढे पांच फुट चौड़ी है। इतनी बड़ी धातु की पंचतीर्थी अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आई। शायद ऐसी मूर्त्ति अन्यत्र होगी भी नहीं।

५—इसी मंदिर के गूढमंडप में तथा विमलवसहि में मूलनायक की संगमरमर की बहुत बड़ी मूर्त्ति श्री ऋषभदेव भगवान् की है। उसके परिकर में, अत्यन्त मनोहर, परिकर में देने योग्य सभी वस्तुएँ बनी हुई हैं। परिकर बहुत बड़ा होने से उसकी प्रत्येक चीज का ज्ञान अच्छी तरह से प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न आकृति वा काउस्सग्गिये, भिन्न भिन्न प्रकार की रचना वाले चौबीसी के पट्ट, जुदी जुदी जात के आसन वाली बैठी और खड़ी आचार्य्य तथा श्रावक श्राविकाओं की मूर्त्तिएँ, तथा प्राचीन व अर्वाचीन पद्धति के परिकर आदि बहुत कुछ हैं, जिनसे कि–जैन मूर्त्ति शास्त्र के विषय में अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हां! कहीं २ कोई २ काम देखकर हम लोगों को अनेक प्रकार की शंकाएँ भी हो उठती है। जैसे—

'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' के खंभों की नक्शी में, भिन्न भिन्न आकृतिओं की भिन्न भिन्न क्रियाएँ करती हुई, हाव-भाव विभ्र और काम की अनेक चेष्टाएँ युक्त पुतलियों की बहुलता नजर आती है।

ऐसी विचित्र आकृतिओं को देखते हुए बहुत लोगों को शंका होती है और होना स्वाभाविक भी है-कि जैन मंदिर में यह क्या? ऐसी कामोत्तेजक पुतलियाँ क्यों होनी चाहिए।

मेरे ख़याल में तो यही आता है कि—कारीगरों ने अपनी शिल्पकला को दिखाने के लिए ऐसी पुतलिएँ बनाई हैं। इसका धर्म के साथ कोई की सम्बन्ध नहीं है। हिन्दुस्थान में उस समय ऐसी अवस्था की भी मनुष्या-कृत्तियाँ बनाने वाले कारीगर मौजूद थे, यह दिखलाने के उद्देश्य से ही कारीगरों ने अपनी शिल्पकला के नमूने कर दिखाये हैं। 'अखूट द्रव्य का व्यय करने वाले जब ऐसे धनाढ्य मिलें तो फिर वे भी क्यों नाना प्रकार के नमूनों से अपनी शिल्प विद्या दिखाने में न्यूनता रखे, बस इस बात को लक्ष्य में रख कर उन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार उन आकृत्तियों को बनाया होगा। वर्त्तमान में भी किसी जैन व हिन्दु मन्दिर जो कि मुसलमान कारीगरों के हाथ

से बनते हैं, उसमें मुसलमान संस्कृति के नमूने बना दिये जाते हैं और वे अनभिज्ञता में निभा लिये जाते हैं। इसी प्रकार उस समय भी हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

परन्तु साथ ही साथ इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि उन कारीगरों ने बे नियम जैसा मन में आया वैसे नहीं खोद मारा है। प्रत्येक आकृत्ति 'नाट्य-शास्त्र' के नियम से बनी है। 'नाट्य-शास्त्र' में 'नाट्य' के आठ अङ्ग अथवा आठ प्रकार दिखलाये हैं। उनमें से किसी स्थान में प्रथम अङ्ग के अनुसार किसी स्थान में दूसरे अङ्ग के नियमानुसार तथा किसी स्थान में ३, ४, ५, ६, ७ किंवा ८ वें अङ्ग के अनुसार व्यवस्थित रीति से पुतलियाँ बनी हैं। 'नाट्य-शास्त्र' का अभ्यासी अपने अभ्यस्त ग्रन्थों में से यदि इसका मिलान करेगा, तो अवश्य उसको उपर्युक्त कथन का निश्चय होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि—आबू के जैन मन्दिर, एक तीर्थ रूप होकर मुक्ति को प्राप्त कराने में साधनभूत तो हो ही सकते हैं, परन्तु साथ ही साथ भूतकाल का इतिहास, रीति रिवाज, व्यवहारिक ज्ञान, शिल्प शास्त्र एवं नाट्य-शास्त्र

आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान कराने वाली एक खासी कॉलेज किंवा विश्व-विद्यालय है।

एक अन्य बात का उल्लेख भी आवश्यकीय है कि देलवाड़ा के इन मन्दिरों के एक दो स्थान में स्त्री अथवा पुरुष की नितान्त नग्न मूर्त्तिएँ भी खुदी हुई दिखाई देती हैं। ऐसी मूर्त्तियों को देखते हुए कुछ लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि–बौद्ध, शाक्त, कौल और वाममार्गी मतों की तरह, जैन मत में किसी समय तान्त्रिक विद्या का प्रचार होगा।

परन्तु यह कल्पना नितान्त अयुक्त है, हमने इस विषय पर दीर्घकाल तक परामर्श किया, जांच की, परिणाम में कुछ शिल्प-शास्त्र के अच्छे अनुभवियों से ऐसा मालूम हुआ कि–शिल्प-शास्त्र का ऐसा नियम है कि–"ऐसे बड़े मन्दिरों में एकाद नग्न मूर्त्ति अवश्य बना दी जाती है। ऐसा करने से उस मन्दिर पर बिजली नहीं गिरती। इसी कारण से मन्दिर निर्माता की दृष्टि को चुरा करके भी कारीगर लोग एकाद ऐसी नग्न पुतली बना देते हैं"।

शिल्प-शास्त्र का ऐसा नियम हो चाहे न हो, अथवा ऐसा करने से बिजली से बचाव होता हो या न हो।

परन्तु यह बात सम्भवित है कि परम्परा से ऐसी श्रद्धा अवश्य चली आती होगी।

दूसरी कल्पना यह भी हो सकती है कि कोई दृष्टि विकारी मनुष्य मंदिर में जाय तो उसके दृष्टि दोष से मंदिर को नुकसान हो, इस प्रकार का वेहम प्रचलित है। इस वेहम को टालने के लिये एकाद नग्न मूर्त्ति मंदिर में किसी स्थान पर बना देते हैं अर्थात् परधर्म: असहिष्णु, ईर्ष्यालु मनुष्य मंदिर को देखकर ईर्ष्या से मंदिर पर तीव्र दृष्टि डाले जिससे मंदिर को नुकसान होने की संभावना रहती है इस कारण उस नग्न मूर्त्ति को देखते ही, ईर्ष्या जन्यकर दृष्टि बदल जाय और वह मनुष्य अन्य सब विचारों को छोड़, उसको देखने में एकाग्र बन जाय। परिणाम में ऐसा भी कुछ कारण हो कि उसकी क्रूर भावनायुक्त दृष्टि का असर मंदिर पर न रहे।

इस प्रकार 'आबू' के जैन मंदिर अनेक दृष्टि से देखे जा सकते हैं और उन दृष्टिओं से देखने वाले अवश्य लाभ उठा सकते हैं।

अब मैं अपने इस वक्तव्य को पूरा करूं, इसके पहिले एक दो और बातें स्पष्ट कर लेना उचित समझता हूं।

पहली बात तो यह है कि—'आबू' यह प्राचीन और सर्वमान्य तीर्थ है और इससे खास 'आबू' में तथा उसके आसपास इतनी ऐतिहासिक सामग्री है कि-जिस पर जितना लिखा जाय, उतना कम है। गुरुदेव की कृपा से मुझे दो दफे 'आबू की' स्पर्शना करने का प्रसंग प्राप्त हुआ। उसमें मुझसे जितना हो सका उतना संग्रह कर लिया। संग्रह पर से मैंने 'आबू' सम्बन्धी निम्न लिखित भाग तय्यार करने की योजना की है।

१ 'आबू' भाग १ (यह ग्रन्थ)।

२ 'आबू' भाग २ ('आबू' भाग १ में जो २ ऐतिहासिक नाम आए हैं उनका विस्तृत वर्णन है)।

३ 'आबू' भा० ३ ('अर्बुद प्राचीन जैन लेख संग्रह')।

४ 'आबू' भा० ४ ('अर्बुद स्तोत्र-स्तवन संग्रह')।

इन चारों भागों में प्रथम भाग तो प्रकाशित हो ही चुका है। दूसरा, तीसरा और चौथा भाग भी लगभग तय्यार हुआ है।

इनके अतिरिक्त 'आबू' के नीचे से सारे पहाड़ की प्रदक्षिणा करते हुए बहुत से गांवों में से प्राचीन लेखों का अच्छा संग्रह उपलब्ध हुआ है तथा ऐतिहासिक गांवों का

जैन दृष्टि से वृत्तान्त लिखने के लिये भी साधन एकत्रित हुए हैं। जिनमें कुम्भारियाजी, जीरावलाजी और बामणवाड़जी आदि तीर्थों का भी समावेश होता है।

इस सारे संग्रह को **'आबू' भाग ५** और **'आबू भाग' ६** के नाम से प्रसिद्ध करने का विचार रक्खा गया है।

ये भाग प्रकाशित हों, इसके दरमियान 'आबू' भाग १ का अंग्रेजी अनुवाद एक बी. ए., एल एल. बी., विद्वान् जैन गृहस्थ कर रहे हैं।

दूसरी बात लिखते हुए मुझे बहुत आनन्द होता है कि-देलवाड़ा (आबू) के जैन मन्दिरों की व्यवस्थापक कमेटी-सेठ कल्याणजी परमानन्दजी के व्यवस्थापक जो कि-सिरोही संघ के मुखिया हैं वे 'आबू' की हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित कर रहे हैं।

'आबू' तीर्थ की व्यवस्थापक कमेटी को, उनके इस उदार कार्य के लिये जितना धन्यवाद दिया जाय उतना कम है। सेठ कल्याणजी परमानन्दजी की पेढी का यह कार्य अत्यन्त स्तुत्य और अन्य तीर्थों की व्यवस्थापक कमेटियों के लिये अनुकरणीय है।

अन्त में—जगत्पूज्य परमगुरु स्व० श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी की असीम कृपा और उनके परोक्ष आशीर्वाद के अवलम्बन से ही, मैंने 'आबू' सम्बन्धी उपर्युक्त योजनानुसार पुस्तकें तय्यार करना प्रारम्भ किया है। गुरुदेव मुझे मेरे कार्य में, मेरी और जनता की इच्छानुसार सफलता प्राप्त कराने का सामर्थ्य दें, यही अन्तःकरण से प्रार्थना करता हुआ मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूं।

जयन्त विजय

सिद्धक्षेत्र—पालीताना,
फाल्गुन सुदि १, वीर सं० २४५१
धर्म सं० ११

जगद्वंद्य श्री विजय धर्म सूरि गुरुदेवेभ्यो नमः।

उपोद्घात

परम-स्नेही, आत्म-बद्ध, शान्तमूर्त्ति मुनिराज श्री जयन्तविजयजी ने मेरे पास सूचना भेजी कि 'आबू' गुजराती की दूसरी आवृत्ति के लिये और हिन्दी की प्रथमावृत्ति के लिये 'उपोद्घात' स्वरूप कुछ पंक्तियाँ मुझे लिखना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आया और अब भी नहीं आया कि—मैं क्या लिखूं? 'आबु' पुस्तक को देखने वाला कोई बता सकता है कि—'आबू' के लेखक मुनिराज श्री ने किस बात की न्यूनता रक्खी है जिसकी पूर्त्ति मैं अपनी पंक्तियों में करूं? हां, एक बात अवश्य है मुनिराज श्री जयन्तविजयजी के व्यक्तित्व को और उनके इस अत्यन्त परिश्रम-जनित ऐतिहासिक खोज से भरपूर इस ग्रन्थ को देख कर एक बात तो अवश्य कहने का दिल हो जाता है और वह यह है:—

आज संसार में ऐसे अनेक मनुष्य पाये जाते हैं, जिनमें कर्मण्यता की बू तक नहीं होने पर भी वे अपने को 'कर्मवीर' बताते हैं और वे बड़ी बड़ी उपाधियों को लेकर फिरने में ही अपना गौरव समझते हैं। जरा आगे बढ़ कर कहा जाय तो—कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने आप बड़े बड़े टाइटिल-धारी दिखाने में ही रात दिन प्रयत्न शील रहते हैं। उन्हें सविनय पूछा जाय कि आप जिस विषय का टाइटिल लिये बैठे हैं और जिसको प्रगट में लाने के लिये स्वयं प्रेसों में दौड़ धूप करते हैं, वह कब, कहां और किसने दिया? क्या उस विषय का कोई ग्रन्थ या लेख भी आपने लिखा है? अथवा ऐसा ही कुछ कार्य भी किया है? जवाब में उनके क्रोध के पात्र बनने के और कुछ नहीं मिलता।

जब समूह में एक ओर ऐसे ही ले भग्गू मनुष्यों की भरमार पाई जाती है, जब कि दूसरी ओर ऐसे भी सज्जन महानुभाव व सच्चे विद्वान् पाये जाते हैं, जो कि अपने विषय के अद्वितीय विद्वान् अनेक खोजों के प्रकट कर्त्ता और ग्रन्थों के निर्माता होने पर भी उनके नाम के साथ एक मामूली विशेषण भी कोई लगाता है तो उनकी आँखें

शरम से नीचे ढल जाती हैं। स्वयं कोई टाइटिल लिखने लिखवाने की तो बात ही क्या करना।

ऐसे सच्चे संशोधक, पुरातत्त्व के खोजी, इतिहास के ज्ञाता होने पर भी 'सरलता' और 'नम्रता' के गुणों से विभूषित जो कुछ विद्वान् देखे जाते हैं, उनमें शान्त-मूर्त्ति मुनिराज श्री जयन्त विजयजी भी एक हैं।

मुनिराज श्री जयन्त विजयजी ने 'आबू' पुस्तक में कितना परिश्रम किया है, कितनी खोज की है, इसको दिखलाने के लिये 'हाथ कंघन को आयने, की जरूरत नहीं है'। आपने इस पुस्तक के निर्माण करने में सिर्फ़ यात्रालुओं का ख़याल नहीं रक्खा। 'यहां से वहां जाना' 'वहां से वहां जाना', 'यहां से यह देखना', 'वहां से वह देख़ना', 'यहां से मोटर में इतना किराया देकर बैठना' और 'वहां जाकर उतर जाना', 'धर्म-शाला के मैनेजर से ओढ़ने बिछाने व रसोई के लिये साधन मिल जायगा' बस यात्रालुओं के लिये इतनी ही वस्तुएँ पर्याप्त हैं। ग्रन्थ निर्माता मुनिराज श्री का लक्ष्य बहुत बड़ा है। उन्होंने प्रत्येक मन्दिर कें निर्माता का परिचय, बल्कि उसके पूर्वजों का भी संक्षिप्त इतिहास दिया है। किस २ समय में उसका जीर्णोद्धार हुआ? उसमें क्या क्या

परिवर्त्तन हुआ? प्रत्येक मन्दिर व देहरियों में क्या क्या दर्शनीय चीजें हैं? उनमें जो जो भाव चित्रकारी के हैं, उनकी मूल वस्तुओं का सूक्ष्मता से निरीक्षण करके उनको भी सम्पूर्ण विवेचन के साथ दिया है, प्रत्येक मन्दिर व देहरी में कितनी कितनी मूर्त्तियाँ हैं अथवा और भी जो जो चीजें हैं, उनका सारा वृत्तान्त देने के अतिरिक्त आवश्यकीय शिला लेखों से उस बात पर और भी प्रकाश डालते हैं। न केवल जैन मन्दिरों ही के लिये 'आबू' के ऊपर यावत् जितने भी हिन्दु व अन्य धर्मावलम्बियों के जो जो दर्शनीय स्थान हैं, उन सारे स्थानों का वर्णन उन उन धर्मों के मन्तव्यानुसार मय तद्विषयक इतिहास एवं कथाओं के दिया है।

प्रसंगोपात आबू से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन राजाओं व मन्त्रियों का इतिहास भी यद्यपि संक्षेप में, परन्तु खोज के साथ दिया है।

इस प्रकार आबू के सच्चे इतिहास को प्रकट करने वाला वर्त्तमान स्थिति की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीज को दिखाने वाला, सर्वोपयोगी, सर्वमान्य, सर्व व्यापक एक ग्रन्थ का निर्माण एक जैन मुनिराज के हाथ से हो, यह भी एक गौरव की ही बात है और इसके

लिये मुनिराज श्री जयन्त विजयजी सचमुच धन्यवाद के पात्र हैं।

'आबू' यह तो हिन्दुस्थान के ही नहीं, सारे संसार के दर्शनीय स्थानों में से एक है और भारतवर्ष का तो शृङ्गार है, सिरमौर है। आबू ने संसार के इतिहास में अपना नाम सुवर्ण अक्षरों से लिखवाया है। दुनिया के किसी भी देश का कोई भी मुसाफिर हिन्दुस्तान में आकरके आबू का अवलोकन किये बिना नहीं जा सकता। 'आबू' की स्पर्शना के सिवाय उसकी यात्रा अपूर्ण ही रहेगी। आज तक जितने भी यात्री भारत भ्रमण के लिये आए, उन्होंने आबू को देखा और शब्दों द्वारा मनुष्य जाति से जितना भी हो सकता है, प्रशंसा की।

'आबू' की प्रशंसा अनेक ग्रन्थों में पाई जाती है। कर्नल टॉड ने अपनी 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' में एवं मि० फर्गुसन ने 'पिक्चर्स इलस्ट्रेशन्स ऑफ इन्शे-न्ट आर्किटेक्चर इन हिन्दुस्तान' में 'आबू' की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसी प्रकार भारतीय अनेक विद्वानों ने भी आबू यो अपने पुस्तकों में बड़ा महत्त्व का स्थान दिया है। उदाहरणार्थ—प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने

अपने 'राजपूताने का इतिहास' व 'सिरोही राज्य का इतिहास' में आबू को गौरव युक्त स्थान दिया है।

इसमें कोई शक नहीं कि—'आबू' भारत के प्रसिद्ध पर्वतों में से एक है। बल्कि भारत के अति मनोहर और भारत की बहुत बड़ी सीमा में फैले हुए सुप्रसिद्ध 'अरबली' पहाड़ का सब से बड़ा हिस्सा ही आबू पर्वत है। यही नहीं, भारत के—खास करके गुजरात और राजपूताने के परमार राजाओं का आबू के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी आबू उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है, परन्तु आबू की इतनी प्रसिद्धि और यशस्विता में खास कारण तो और ही है, और वह है **'आबू—देलवाड़ा के जैन मंदिर'**।

यह तो स्पष्ट और जग जाहिर बात है कि—आबू पर्वत पर जो देशी-विदेशी लोग जाते हैं बहुधा वे सब के सब आबू-देलवाड़े के जैन मन्दिरों को देखने ही के लिये जाते हैं। सुप्रसिद्ध चौलुक्य राजा भीमदेव के सेनाधिपति विमल मंत्री का बनवाया हुआ 'विमल वसहि', और महा मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल का बनवाया हुआ 'लूण-वसहि' ये दो ही मन्दिर आबू पहाड़ की विश्व विख्याति के कारण हैं। संसार की आश्चर्यकारी—दर्शनीय वस्तुओं में

आबू भी एक है। इस सौभाग्य का मुख्य कारण, जैन धर्म प्रभावक उपर्युक्त महामंत्रिओं के करोड़ों रुपयों के व्यय से बनवाये हुए उपर्युक्त दो मन्दिर ही हैं। इन मन्दिरों के शिल्प की वास्तविक तारीफ आज तक के किसी भी विद्वान् लेखक से नहीं हो पाई है।

कर्नल टॉड ने अपनी 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' नामक पुस्तक में 'विमल वसहि' के सम्बन्ध में लिखा है।

"'हिन्दुस्तान भर में यह मन्दिर सर्वोत्तम है और ताज महल के सिवा कोई दूसरा स्थान इसकी समता नहीं कर सकता"

वस्तुपाल के मंदिर के सम्बन्ध में शिल्पकला के प्रसिद्ध ज्ञाता मि० फर्ग्युसन ने 'पिक्चर्स इलस्ट्रेशन ऑफ इन्शेसेण्ट आर्कीटेक्चर इन हिन्दुस्थान' नामक पुस्तक में लिखा है।

"इस मंदिर में, जो संगमरमर का बना हुआ है, अत्यन्त परिश्रम सहन करने वाली हिन्दुओं की टांकी से फीते जैसी सूक्ष्मता के साथ ऐसी मनोहर

---

१ ताज महल भी इसकी समता नहीं कर सकता। देखो परिशिष्ट ५ में दिया हुआ रा० रा० रत्नमणिराव भीमराव का अभिप्राय। लेखक.

आकृतियाँ बनाई गई हैं, जिनकी नकल कागज पर बनाने में कितने ही समय तथा परिश्रम से भी मैं सफल नहीं हो सकता"।

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने 'राजपूताने का इतिहास' (खंड १, पृ० १९३) में लिखा है।

"कारीगरी में उस मंदिर (विमलवसहि) की समता करने वाला दूसरा कोई मंदिर हिन्दुस्तान में नहीं है।"

यद्यपि यहां और भी कुछ जैन मंदिर दर्शनीय हैं, जैसे कि—महावीर स्वामी का मंदिर, भीमाशाह का पित्तलहर मंदिर, चौमुखजी का मंदिर जिसको 'खरतरवसहि' कहते हैं, और अचलगढ के पास 'ओरिया' नामक छोटा गांव है, वहां का महावीर स्वामी का मंदिर, तथा उसके पास ही 'अचलगढ' गांव में चौमुखजी का आदीश्वरजी, कुंथुनाथजी और शान्तिनाथजी का मंदिर है। ये सभी मंदिर कुछ न कुछ विशेषता रखते हैं, परन्तु 'आबू' की इतनी ख्याति का प्रधान कारण तो विमलवसहि और लूण-वसहि ये दो मंदिर ही हैं।

अत्यन्त खुशी की बात है कि—इन मंदिरों की कारीगरी के अद्भुत नमूने का परिचय कराने के लिये ग्रंथकार ने लगभग ७५ पचहत्तर फोटू इस पुस्तक में देने का प्रबन्ध करवाया है। आबू की कारीगरी के कुछ फोटू कतिपय पुस्तक याने, रेलवे गाईडों में तथा 'आबू गाईड' वगैरह में देखने में आते हैं, परन्तु इतनी बड़ी संख्या में और वह भी खास २ महत्त्व के फोटू सिवाय आज तक किसी भी पुस्तक में देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। इस पुस्तक के इस दृष्टि से भी इस पुस्तक का महत्व कई गुना बढ गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि—आबू के जैन मंदिरों के पीछे, जैन इतिहास का ही नहीं, बल्कि भारत वर्ष के इतिहास का बहुत बड़ा हिस्सा समाया हुआ है। आबू के उपर्युक्त प्रसिद्ध मंदिरों के निर्माता कोई सामान्य व्यक्तियाँ नहीं थीं। वे देश के प्रधान राज्य कर्त्ताओं के सेनाधिपति और मंत्री थे। उन्होंने उन राजाओं के राज्य शासन विधान में बहुत बड़ा हिस्सा लिया था। ग्रंथकार ने उन राजाओं, मन्दिर निर्माता मंत्रियों और और सेनाधिपतियों का आवश्यकीय परन्तु संक्षिप्त परिचय दिया है। इसी प्रकार उन्हीं के किञ्चिद् वक्तव्य से

प्रगट होता है, कि इतिहासिक बातों का विस्तृत वर्णन आबू के दूसरे भाग में आवेगा। और इसी लिये उन इतिहासिक बातों पर यहां विशेष उल्लेख करना अनावश्यक समझता हूं। तथापि इतना तो कहना समुचित होगा कि—आबू के जैन मंदिरों के निर्माता से संबंध रखने वाले जो कुछ जैन ऐतिहासिक साधन उपलब्ध होते हैं उन में मुख्य ये भी हैं:—

१—तेजपाल के मंदिर के शिलालेख—दो बड़ी प्रशस्तियां (वि० सं० १२८७ का)।

२—'विमलवसहि' मंदिर के जीर्णोद्धार का शिलालेख (वि० सं० १३७८ का)।

३—द्व्याश्रय काव्य (कर्त्ता श्री हेमचंद्राचार्य्य)।

४—कुमारपाल प्रबन्ध (जिन मंडनोपाध्याय कृत)।

५—तीर्थ कल्पान्तर्गत अर्बुद कल्प (जिनप्रभसूरि कृत)।

६—प्रबन्ध चिन्तामणि (मेरुतुङ्गाचार्य्य कृत)।

७—चित्तौड़ किले का कुमारपाल का शिलालेख।

८—वसंतविलास (बालचंद्राचार्य्य कृत)

९—सुकृत संकीर्त्तन (अरिसिंह कृत)।

१०—वस्तुपाल चरित्र (जिन हर्षकृत)।

११—विमल प्रबन्ध (कवि लावण्यसमय कृत)।

१२—उपदेशतरङ्गिणी (रत्न मंदिरगणि कृत)।
१३—प्रबन्ध कोश (राजशेखर सूरिकृत)।
१४—हमीर मदमर्दन (जयसिंह सूरिकृत)।
१५—सुकृतकल्लोलिनी (पुंडरीक-उदयप्रभसूरि कृत)।
१६—विमलशाह के मंदिर का शिलालेख (वि० सं० १३५० का)।
१७—'विमलवसहि' की देहरी नं० १० का शिलालेख (वि० सं० १२०१ का)।
१८—तिलकमञ्जरी (धनपाल कविकृत)।

आदि २ कई ऐसे जैन ग्रन्थ व शिलालेख एवं रासादि है, जिनमें आबू और उस पर के जैन मंदिरों के निर्माण पर काफी प्रकाश डाला गया है ।

इन मंदिरों के निर्माताओं में प्रधान तीन पुरुष हैं, जो भारतवर्षीय इतिहास की रंगभूमि पर प्रधान पात्रता को धारण किये हुए खड़े हैं। विमलशाह, वस्तुपाल और तेजपाल ।

विमलशाह, यह अणहिलपुर पाटन का राजा भीमदेव (जो विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दि के उत्तर भाग में हुआ) का सेनापति था। विमल बड़ा वीर था। इसके

विषय में 'विमल प्रबन्ध' और विमलवसहि की देहरी नं० १० के शिलालेख से बहुत बातें ज्ञात हो सकती हैं।

दूसरे हैं वस्तुपाल–तेजपाल, इसमें कोई शक नहीं कि–विमल की अपेक्षा वस्तुपाल तेजपाल इतिहास में विशेष प्रशंसा पात्र हुए हैं। इसका खास कारण भी है। ये दोनों भाई शूरवीर, कर्त्तव्य परायण, राज्य कार्य में बड़े दक्ष, प्रजावत्सल्य, पर-धर्म सहिष्णु, बड़े बुद्धिमान्, दानेश्वरी इत्यादि गुणों को धारण करने के साथ साथ बड़े भारी विद्वान् भी थे। एक कवि ने वस्तुपाल के समस्त गुणों की प्रशंसा करते हुए गाया है:—

"श्री वस्तुपाल! तव भालतले जिनाज्ञा,
वाणी मुखे, हृदि कृपा, करपल्लवे श्रीः।
देहे द्युतिर्विलसतीति रुषेव कीर्त्तिः,
पैतामहं सपदि धाम जगाम नाम ॥"

(उपदेशतरङ्गिणी)

अर्थात् हे वस्तुपाल! तुम्हारे भालतल में जिनाज्ञा, मुख में सरस्वती, हृदय में दया, हाथों में लक्ष्मी और शरीर में कान्ति विलास कर रही है। इसीलिये तुम्हारी कीर्त्ति ब्रह्माजी के स्थान में (ब्रह्मलोक में) मानो क्रोधित
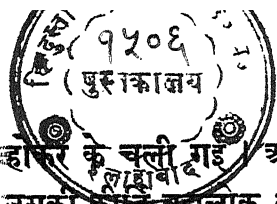
होकर के चली गई। अर्थात् वस्तुपाल के अनेक गुणों से उसकी कीर्ति ब्रह्मलोक तक पहुंच गई।

सचमुच, वस्तुपाल पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियाँ प्रसन्न थीं। उसके साथ दोनों भाईयों में उदारता का गुण भी असाधारण होने से उन्होंने दोनों शक्तियों का (सरस्वती और लक्ष्मी का) इस प्रकार सद्व्यय किया कि जिससे वे अमर ही हुए।

ये दोनों भाई दृढ़ श्रद्धालु जैन होने से, यद्यपि इन्होंने जैन मन्दिर और जैन धर्म की उन्नति के कार्यों में अरबों रुपयों का व्यय किया, परन्तु साथ ही साथ अन्यान्य सार्व जनिक व अन्य धर्मावलंबियों के कार्यों में भी अखूट धन व्यय किया है। इन्होंने १८,९६,००,००० शत्रुंजय में, १२,८०,००,००० गिरिनार में, १२,५३,००,००० इसी 'आबू' पर लूणवसहि में खर्च किये। इनके अतिरिक्त सवा लाख जिन बिंब, नव सौ चौरासी पौषधशालाएँ, कई समवसरण, कई ब्रह्मशालाएँ, कई दानशालाएँ, मठ, माहेश्वर मंन्दिर जैन मन्दिर, तालाब, बावड़ियाँ, किले-आदि बनवाये। कई जीर्णोद्धार किये और कई पुस्तक-भंडार बनवाये। 'तीर्थकल्प' के कथनानुसार, इनके बड़े-बड़े कार्यों की जो कुछ नोंध मिल सकती है उस पर से इन महानुभावों ने ऐसे

बड़े पुण्य कार्यों में कोई तीन अरब, चौरासी लाख, अठारह हजार के करीब धन व्यय किया है। इनका इतना धन सचमुच हमें आश्चर्य सागर में डाल देता है।

वस्तुपाल के चरित्र से हमें यह भी पता चलता है कि--वे स्वयं अद्वितीय विद्वान् थे, जैसा कि--मैं पहले कह चुका हूं। उन्होंने (वस्तपाल ने) संस्कृत के जो ग्रंथ बनाये हैं, उनमें **नरनारायणानन्द काव्य, आदीश्वर मनोरथमयं स्तोत्रम्** और **वस्तुपाल सूक्तभः** ये तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। (ये तीनों ग्रन्थ **'गायकवाड ओरियेण्टल सिरीज'** में **प्रकाशित हुए हैं**)।

इसी प्रकार स्वयं विद्वान् होकर विद्वानों की कदर भी वे बहुत करते थे। कई विद्वानों को हजारों नहीं, लाखों रुपये सत्कार में देने के प्रमाण मिलते हैं। इनके समकालीन व पीछे के कई जैन-अजैन विद्वानों ने इनकी विद्वत्ता, उदारता, और दान शीलता की प्रशंसा की है। इनके प्रशंसक विद्वानों में सोमेश्वर कवि, अरिसिंह कवि, हरिहर, मदन, दामोदर, अमरचन्द्र, हरिभद्रसूरि, जिनप्रभसूरि, यशोवीर मंत्री और माणिक्यचन्द्र आदि मुख्य हैं। उनकी बनाई हुई स्तुतियों के कुछ नमूने ये हैं :—

एक दिन सोमेश्वर कवि वस्तुपाल के मकान पर पहुंचे। वस्तुपाल ने आदर के साथ उत्तम आसन दिया। सोमेश्वर आसन पर नहीं बैठते हुए कहने लगेः—

"अन्नदानैः पयःपानैर्धर्मस्थानैश्च भूतलम्।
यशसा वस्तुपालेन रुद्धमाकाश मण्डलम्" ॥

इस प्रकार स्तुति करके कवि ने कहाः—'इसलिये स्थानाभाव से मैं नहीं बैठ सकता'।

वस्तुपाल ने प्रसन्न होकर नौ हजार रुपये इनाम में दिये। इसी सोमेश्वर ने अन्य स्थान पर भी कहा हैः—

"इच्छा सिद्धिसमुन्नते सुरगणो कल्पद्रुमैः स्थीयते,
पाताले पवमान भोजनजने कष्टं प्रणष्टो बलिः।
नीरागानगमन् मुनीन् सुरभयश्चिन्तामणिः क्वाप्यगात्,
तस्मादर्थिकदर्थनां विषहतां श्रीवस्तुपालः क्षितौ ॥

(उपदेश तरङ्गिणी)

एक कवि ने वस्तुपाल में सातों वारों की कल्पना इस प्रकार की हैः—

"सूरो रणेषु, चरणप्रणतेषु सोमः,
वक्रोऽतिवक्रचरितेषु, बुधोऽर्थ बोधे।

नीतौ गुरुः, कविजने कविराक्रियासु,
मन्दोऽपि च ग्रहमयो नहि वस्तुपालः ॥"
(उपदेश तरङ्गिणी)

श्रीजिनहर्षसूरि ने वस्तुपाल चरित्र में कहा है:-

"न गिरौ न च मातङ्गे न कूर्मे नैव सूकरे ।
वस्तुपालस्य धीरस्य प्राणौ तिष्ठति मेदिनी" ।

तेजपाल की प्रशंसा करते हुए कहा है:—

"सूत्रे वृत्तिः कृता पूर्वं दुर्गासिंहेन धीमता ।
विसूत्रे तु कृता वृत्तिस्तेजःपालेन मन्त्रिणा" ।

हरिहर कवि ने कहा :—

"धन्यः स वीरधवलः क्षितिकैटमारि-
र्यस्येदमद्‌भुतमहो महिमप्ररोहः ।
दीप्रोष्ण दीधिति सुधा किरण प्रवीणं
मन्त्रिद्वयं किल विलोचनतामुपैति" ॥

मदन कवि ने कहा है:—

"पालने राज्य लक्ष्मीणां लालने च मनीषिणाम् ।
अस्तु श्रीवस्तुपालस्य निरालस्यरतिर्मतिः" ॥
(जिन हर्ष सूरिकृत वस्तुपाल चरित्र)

इस प्रकार वस्तुपाल, तेजपाल की दान वीरता, विद्वत्ता आदि गुणों की प्रशंसा कई जैन अजैन विद्वानों ने की है। वस्तुतः ऐसे महान् पुरुष प्रशंसा के पात्र ही हैं। क्योंकि इन्होंने न केवल जैन धर्म की ही सेवा की है बल्कि भारतवर्ष के समस्त धर्मों की भी सेवा की है। इन्होंने ऐसे २ कार्य करके भारतीय शिल्प की रक्षा कर भारत का मुख उज्ज्वल किया है। आबू पहाड़ की इतनी ख्याति का सर्वाधिक श्रेय इन्हीं दो वीर भाईयों और विमलशाह को ही है।

यह आशा की जाती है कि मुनिराज श्री जयन्तविजयजी आबू के दूसरे भागों में इन महा पुरुषों के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश अवश्य डालेंगे क्योंकि—आपने आबू पर दीर्घकाल रहकर शिला लेखादि का बहुत ही संग्रह किया है।

'आबू' के सम्बन्ध में, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यों तो बहुतसी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, कई लेख भी छपे हैं, परन्तु इतना सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रंथ तो यह पहला ही है। ग्रन्थकार महोदय ने 'आबू' सम्बन्धी सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास तय्यार करने में कितना परिश्रम किया है, यह बात इस प्रथम भाग से और अब निकालने वाले ग्रन्थों की योजना से सहज ही में समझी जा सकती है।

अब मैं अपने इस वक्तव्य को पूरा करूं, इसके पहले एक दो और बातों का उल्लेख कर देना समुचित समझता हूं।

इस पुस्तक के पृष्ठ ५ से पता चलता है कि—मुनिराज श्री जयन्तविजयजी का यह कथन है कि भगवान् महावीर स्वामी अपनी छद्मस्थावस्था में (सर्वज्ञ होने के पहले) अर्बुद भूमि में विचरे थे। इतिहासज्ञों के लिये यह नवीन और विचारणीय बात है। अभी तक की शोध से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस मरुभूमि में भगवान् महावीर स्वामी कभी भी नहीं पधारे। अब इस शिलालेख के आधार पर ग्रंथकार इस नवीन बात को प्रकट करते हैं। इसकी सत्यता पर विशेष परामर्श और शोध करने की आवश्यकता है।

दूसरी बात—ग्रंथकार ने स्वयं आबू पर स्थिरता करके एक कुशल फोटोग्राफर के द्वारा खास पसंदगी के अच्छे अच्छे फोटू लिवाये हैं, जो इस पुस्तक में दिये गये हैं। इन्हीं फोटूओं का एक सुन्दर आल्बम, चित्रों के थोड़े थोड़े परिचय के साथ पुस्तक प्रकाशक की तरफ से निकालने की योजना कराई जाय तो यह कार्य बहुत ही

आदरणीय होसकेगा। क्योंकि–आबू के फोटूओं का इतना संग्रह आज तक किसी ने नहीं किया।

हमें यह जानकर बड़ी खुशी उत्पन्न होती है कि–जिस प्रकार आबू पुस्तक की 'गुजराती' और 'हिन्दी' आवृत्तियाँ निकल रही हैं, उसी प्रकार इसका अंग्रेजी अनुवाद भी हो रहा है। उधर 'आबू' के शिलालेखों का एक भाग भी छप रहा है। ग्रंथकार के 'किञ्चिद् वक्तव्य' के अनुसार 'आबू' पहाड़ के नीचे के जिन-जिन गांवों और स्थानों से उन्होंने शिलालेखों का संग्रह किया है, उनका, तथा 'आबू' सम्बन्धी प्राचीन कल्प, स्तोत्र, स्तवन वगैरह का भी एक भाग निकलेगा। इस प्रकार ग्रन्थकर्त्ता 'आबू' सम्बन्धी छः भाग प्रकाशित करायेंगे। कितनी खुशी की बात है? कितना प्रशंसनीय कार्य है?

सचमुच मुनिराज श्री जयन्तविजयजी का यह एक भागीरथ प्रयत्न है। उनके इन भागों के निकलने से न केवल 'आबू' के ही विषय में, परन्तु अन्य भी अनेक ऐतिहासिक बातों पर बड़ा ही प्रकाश गिरेगा।

गुरुदेव, मुनिराज श्री जयन्तविजयजी की इस कामना को पूर्ण करें, यही अन्तःकरण से मैं चाहता हूं।

अन्त में—मुनिराज श्री के प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी कम है। उनका यह अद्भुत प्रयत्न है। इसमें न केवल जैन धर्म का, बल्कि सारे राष्ट्र का गौरव है। पुनः भी यही चाहता हुआ कि—गुरुदेव, ग्रंथकार उनके आगामी कार्यों को बहुत शीघ्र तय्यार और प्रकाशित कराने का सामर्थ्य अर्पण करें, मैं अपने वक्तव्य को यहां ही समाप्त करता हूं।

सरदारपुर छावनी, (ग्वालियर स्टेट)
फाल्गुन वदि ५ वीर सं० २४५१,
धर्म सं० ११ ता० १९-२-२३

विद्याविजय

विषय सूची

विषय पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय			पृष्ठ

चित्र-सूची

आबू

नत्वा तं श्रीजिनेन्द्राद्यं निष्क्रोधहृतकर्मकम् ।
धर्मसूरिगुरुं मुख्यं स्मृत्वा जैनीं तथा गिरम् ॥१॥
वर्णनमर्बुदाद्रेर्हि जगन्नेत्रहिमद्युतेः ।
किञ्चिल्लिखामि नामूलं लोकोपकारहेतवे ॥ २ ॥
(युग्मम्)

केवल भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु यूरोप (Europe) अमेरिका (America) आदि पाश्चात्य देशों (Western countries) में भी आबू पर्वत ने अपनी अत्यन्त रमणीयता एवं देलवाड़ा के सुन्दर शिल्पकला युक्त जैन मन्दिरों के द्वारा इतनी ख्याति प्राप्त करली है कि उसका विस्तार-पूर्वक वर्णन करना अनावश्यकसा प्रतीत होता है। इसी कारण से विस्तार-पूर्वक न लिखते हुए संक्षेप में कहने का यही है कि आबू पर्वत-(१) देलवाड़ा और अचलगढ़ के जैन मन्दिर, (२) गुरुशिखर, (३) अचलेश्वर महादेव, (४) मन्दाकिनी कुण्ड, (५) भर्तृहरि की गुफा,

(६) गोपीचन्दजी की गुफा, (७) कोटेश्वर (कनखलेश्वर) महादेव, (८) श्रीमाता (कन्याकुमारी), (६) रसियावालम, (१०) नलगुफा, (११) पांडवगुफा, (१२) अर्बुदादेवी (अधर देवी), (१३) रघुनाथजी का मन्दिर (१४) रामझरोखा, (१५) रामकुण्ड, (१६) वशिष्ठाश्रम, (१७) गौमुखीगंगा, (१८) गौतमाश्रम (१६) माधवाश्रम, (२०) वास्थानजी, (२१) झोड़ीधज, (२२) ऋषीकेश, (२३) नखीतालाव, (२४) क्रेग पॉयण्ट (गुरु गुफा) आदि तीर्थों (जिनका वर्णन आगे 'हिन्दूतीर्थ और दर्शनीय स्थान' नामक अन्तिम प्रकरण में आवेगा) के कारण प्राचीन काल से ही जिस प्रकार जैन, शैव, शाक्त, वैष्णवादि के लिये पवित्र एवं तीर्थ स्वरूप है, वैसे ही अपनी सुन्दरता एवं स्वास्थ्य दायक साधनों के कारण राजा-महाराजा और यूरोपियनों में भी सुविख्यात है। भोगी पुरुषों के वास्ते वह भोग-स्थान और योगी पुरुषों के वास्ते योगसाधना का एक अपूर्व धाम है। वह नाना प्रकार की जड़ी बूंटी व औषधियों का भण्डार है। बाग बगीचे, प्राकृतिक झाड़ियाँ, जंगल, नदी, नाले और झरणादि से अत्यन्त सुशोभित है। जहां थोड़ी २ दूर पर आम-करौंदा आदि नाना प्रकार के फलों के वृक्ष तथा चम्पा, मोगरादि

पुष्पों की झाड़ियां आगन्तुकों के हृदयों को अपनी शोभा से आह्लादित करती हैं, और स्थान २ पर कूप, बावड़ी, तालाव, सरोवर, कुण्ड, गुफा आदि के दृश्य भी आनन्ददायक हैं।

उपर्युक्त तीर्थस्थान तथा बाह्य सुन्दरता के कारण आबू पर्वत, यदि सर्व पर्वतों में श्रेष्ठ एवं परम तीर्थ स्वरूप माना जाय तो इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। आबू प्राचीन तथा पवित्र तीर्थ है। यहां पर कतिपय ऋषि महर्षि लोग आत्म-कल्याण तथा आत्म-शक्तियों के विकास के लिए नाना प्रकार की तपस्याएं तथा ध्यान करते थे। आज कल भी यहां अनेक साधु-सन्त दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु उन साधुओं में से अधिकांश साधु तो बाह्याडम्बरी, उदरपूर्ति और यश-कीर्ति के लोभी प्रतीत होते हैं। जब हम गुफायें देखने गये तब हमने दो चार गुफाओं में जिन व्यक्तियों को योगी, ध्यानी एवं त्यागी का स्वरूप धारण किये देखा, उन्हीं महानुभावों को दूसरे समय आबू कैम्प के बाज़ारों में पानवालों की दुकानों पर बैठ कर गप शप करते, पान चबाते और इधर उधर भटकते हुए देखा। वर्त्तमान समय में आत्म-कल्याण के साथ परोपकार करने की भावना से युक्त सच्चे साधु-महात्मा तो बहुत ही कम दिखाई देते हैं। आबू पर्वत पर तेरहवीं शताब्दि में बारह

गांव बसे हुए थे। आज कल भी लगभग उतने ही गांव विद्यमान हैं। आबू पर्वत पर चढने के लिये रसिया वालम ने बारह मार्ग बनाये थे, ऐसी दन्तकथा * है। भारतवर्ष में दक्षिण दिशा में नीलगिरि से उत्तर दिशा में हिमालय और इनके बीच के प्रदेश में आबू को छोड़ कोई भी पर्वत इतना ऊँचा नहीं है जिस पर गांव बसे हों। अभी आबू पर्वत के ऊपरी भाग की लम्बाई १२ मील और चौड़ाई २ से ३ मील तक की है। समुद्र से आबू कैम्प के बाज़ार के पास की ऊँचाई ४००० फीट तथा गुरुशिखर की ऊँचाई ५६५० फीट है, अर्थात् आबू पर्वत का सब से ऊँचा स्थान गुरुशिखर है। आबू पर चढ़ने की शुरूआत करने वाले यूरोपियनों में कर्नल टॉड की गणना सब से प्रथम की जाती है।

प्राचीन काल में वशिष्ठ ऋषि यहां पर तपस्या करते थे। उनके अग्निकुण्ड में से परमार, पड़िहार, सोलंकी और चौहान नामक चार पुरुषों का जन्म हुआ था, उनके

---

* "हिन्दु तीर्थ और दर्शनीय स्थान" नामक प्रकरण में (१३–१४) "कन्याकुमारी और रसियावालम" के वर्णन के नीचे की फुटनोट देखो।

वंशजों की उक्त नामों की चार शाखायें हुईं, ऐसी राजपूतों की मान्यता है।

आबू पर्वत पर सं० १०८८ में विमलशाह ने जैन मंदिर निर्माण कराया। यद्यपि उस समय इस पर्वत पर अन्य कोई जैन मंदिर विद्यमान नहीं था, परन्तु प्राचीन अनेक ग्रन्थों से निश्चित होता है कि महावीर प्रभु के ३३ वें पाट के पट्टधर विमलचन्द्रसूरि के विनेय (शिष्य) वडगच्छ (वृद्धगच्छ) के संस्थापक उद्द्योतनसूरि यहाँ पर वि० सं० ९९४ में यात्रार्थ पधारे थे, इस से यहां पर जैन मन्दिरों के अस्तित्व की संभावना की जा सकती है। संभव है कि उसके बाद ९४ वर्ष के अन्तर में जैन मंदिर नष्ट हो गये हों। हाल में ही आबू की तलहटी में आबूरोड स्टेशन से पश्चिम दिशा में ४ मील की दूरी पर मूंगथला (मुंडस्थल महातीर्थ) नामक ग्राम के गिरे हुये एक जैन मन्दिर से हमको एक प्राचीन लेख मिला है, जिससे मालूम होता है कि—भगवान श्रीमहावीर स्वामी अपनी छद्मस्थ अवस्था में (सर्वज्ञ होने के पहिले) अर्बुद भूमि में विचरे थे। भगवान के चरण स्पर्श से पवित्र हुए आबू और उसके आसपास की भूमि पवित्र तीर्थ स्वरूप माने जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है? उपर्युक्त

कथन से यह सिद्ध होता है कि विमलशाह ने यहां पर जैन मंदिर बनवाया उससे पहले भी आबू जैन तीर्थ था।

शास्त्रों में आबू के अर्बुदगिरि तथा नंदिवर्धन नाम दृष्टिगोचर होते हैं।

आबू पर्वत की उत्पत्ति के लिये हिन्दू धर्मशास्त्रों में लिखा है, और यह बात हिन्दुओं में बहुत प्रसिद्ध भी है कि प्राचीन काल में यहां पर ऋषि तपस्या करते थे, उन तपस्वियों में से वशिष्ठ नामक ऋषि की कामधेनु गाय उत्तंकऋषि के खोदे हुए गहरे खड्डे में गिर पड़ी। गाय उसमें से बाहिर निकलने को असमर्थ थी, किन्तु स्वयं कामधेनु होने से उसने उस खाई को दूध से परिपूर्ण किया और अपने आप तैर कर बाहिर निकल आई। फिर कभी ऐसा प्रसंग उपस्थित न हो इस वास्ते वशिष्ठ ऋषि ने हिमालय से प्रार्थना की; इस पर हिमालय ने ऋषियों के दुःख को दूर करने के लिये अपने पुत्र नान्दि-वर्धन को आज्ञा की। वशिष्ठजी नन्दिवर्धन को अर्बुद सर्प द्वारा वहां लाये और उस खड्डे में स्थापित करके खड्डा पूर दिया, साथ ही अर्बुद सर्प भी पर्वत के नीचे रहने लगा। (कहा जाता है कि वह अर्बुद सर्प छः छः महीने में बाजू

करता है उसही से आबू पर्वत पर छः छः महीने के अन्तर से भूकम्प होता है)-इसी कारण इस गिरि का अर्बुद तथा नन्दिवर्धन नाम प्रसिद्ध हुआ होगा? नन्दिवर्धन पर्वत अर्बुद सर्प द्वारा वहाँ लाया गया उससे पहिले भी यह भूमि पवित्र थी, यह बात स्पष्टतया निश्चित है। क्योंकि यहाँ पर पहिले भी ऋषि तपस्या करते थे।

रास्ता—राजपूताना मालवा रेलवे होने के पहिले आबू पर जाने के वास्ते पश्चिम दिशा में (१) अनादरा तथा पूर्व दिशा में (२) खराड़ी–चन्द्रावती, यह दो मुख्य मार्ग थे। अनादरा, सिरोही राज्य का प्राचीन गाँव है, और वह आगरा से जयपुर, अजमेर, ब्यावर एरनपुरा, सिरोही, डीसाकेम्प होकर अहमदाबाद जाने वाली पक्की सड़क के किनारे पर बसा है *। यहां पर श्री महावीर स्वामि का प्राचीन जैन मन्दिर, जैन धर्मशाला और पोस्ट ऑफिस इत्यादि हैं।

---

* यह सड़क ब्रिटिश गवर्नमेण्ट द्वारा ई० सन् १८७१ से १८७६ के बीच में बनाई गई है। सिरोही राज्य की सीमा में यह सड़क आजकल बिल्कुल जीर्ण हो गई है, कई स्थानों में तो सड़क का नामोनिशान भी नहीं है, केवल मील सूचक पत्थर अवश्य लगे हैं।

आबू रोड (खराड़ी) से आबू कैम्प तक की पक्की सड़क बनने से अनादरे का मार्ग गौण हो गया—मुख्य न रहा, तो भी सिरोही राज्य एवं समीपवर्त्ती ग्राम के लोगों के लिये यही मार्ग अनुकूल है। आबू कैम्प वासियों के लिये दूध, घी, शाकादि वस्तुएँ प्रायः इसी मार्ग द्वारा ऊपर लाई जाती हैं, इसी कारण से यह मार्ग बराबर चालू है। अनादरा गाँव से कच्चे मार्ग पर पूर्व दिशा में लगभग १॥ मील चलने पर सिरोही स्टेट का डाक बंगला मिलता है; वहां से आधे मील की दूरी पर आबू की तलेटी है *। वहां से तीन मील ऊँचा चढ़ाव है। चढ़ने के लिये छोटे नाप की कच्चीसी सड़क बनी हुई है जिस पर बोझ लदे हुवे बैल, पाड़े व घोड़े आसानी से चढ़ सकते हैं। बीच में देलवाड़ा जैन कारखाने की तरफ से स्थापित की गई पानी की प्याऊ मिलती है। मार्ग में कई एक स्थानों पर भील लोगों के छप्पर भी दृष्टिगोचर होते हैं। वन होने के कारण प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीय लगते हैं। ऊपर पहुँचने पर वहाँ से आबू कैम्प का बाज़ार १॥ और देलवाड़ा २ मील दूर है, जहां

* यात्रियों की अनुकूलता के लिये अभी यहां एक जैन धर्मशाला बनाने का कार्य आरंभ हुआ है। देलवाड़ा जैन कारखाने की ओर से यहां एक पानी की प्याऊ भी है।

जाने को पक्की सड़कें हैं। सीधे देलवाड़ा जाने वाले को नखी तालाव तथा कबर के समीप से देलवाड़ा की सड़क पर होकर देलवाड़ा जाना चाहिये।

दूसरा मार्ग आबू रोड (खराड़ी) की तरफ से है।

सिरोही के महाराव शिवसिंहजी ने वि० सं० १६०२ (सन् १८४५) में आबू पर्वत पर अंग्रेज सरकार को सेनीटोरीयम (स्वास्थ्यदायक स्थान) बनाने के वास्ते १५ शर्तों पर ज़मीन दी। फिर सरकार ने छावनी स्थापित की, तत्पश्चात् आबू कैम्प से खराड़ी तक १७॥ मील की लम्बी पक्की सड़क बनवाई।

ता० ३० दिसम्बर सन् १८८० के दिन 'राजपूताना मालवा रेल्वे' का उद्घाटन हुआ, उस समय खराड़ी (आबू रोड) स्टेशन स्थापित किया गया; तब से यह मार्ग विशेष उपयोगी हुआ। इस सड़क के बनने के पहिले यह मार्ग बहुत विकट था। हाथी, घोड़ों और बैलों द्वारा सामान ऊपर भेजा जाता था। कहा जाता है कि देलवाड़ा जैन मन्दिर के बड़े बड़े पाषाण हाथियों पर लाद कर चढ़ाये गये थे। सड़क बन जाने से अब वह विकटता जाती रही। यद्यपि

बैलगाड़ी के साथ रात्रि में चौकीदार की आवश्यकता होती है; परन्तु दिन को ज़रा भी भय नहीं है।

खराड़ी गांव में अजीमगंज निवासी राय बहादुर श्रीमान् बाबू बुद्धिसिंहजी दुधेड़िया की बनवाई हुई एक विशाल जैन धर्मशाला है, जिसमें एक जैन मन्दिर भी विद्यमान है, मुनीम रहता है, यात्रियों को हर तरह का सुभीता है। जैन धर्मशाला के पीछे हिन्दुओं के लिये एक नई तथा अन्य अनेक धर्मशालायें हैं।

आबू रोड से ४॥ मील दूर, आबू कैम्प की सड़क पर मील नम्बर १३-२ के पास "शान्ति-आश्रम" नामक एक सार्वजनिक जैन धर्मशाला अभी बन रही है, जिसका लाभ सभी मुसाफिर ले सकेंगे।

आबू रोड से १३॥ मील ऊपर चढ़ने पर एक धर्मशाला आती है, वह आरणा गांव में होने से आरणा तलेटी के नाम से प्रसिद्ध है। वहां पर जैन साधु साध्वी और यात्री भी रात्रि को निवास कर सकते हैं। यात्रियों के लिये हर तरह का प्रबन्ध है। यहां पर जैन यात्रियों को भाता (नाश्ता) तथा गरीबों को चने दिये जाते हैं। यहाँ की देख रेख अचलगढ़ के जैन मंदिरों के प्रबन्धक रखते हैं।

जहां से आबू कैम्प १ मील शेष रहता है, वहाँ (ढूँढाई चौकी के समीप) से देलवाड़ा की एक नई सीधी सड़क महाराव सिरोही, महाराजा अलवर, जैन संघ तथा गवर्नमेण्ट की सहायता से थोड़े ही समय से बनी है। इस सड़क के बन जाने से आबू कैम्प गये बिना ही सीधे देलवाड़े तक वाहनादि जा सकते हैं। जब यह नई सड़क नहीं बनी थी, तब जैन यात्रियों को अधिक कष्ट सहन करना पड़ता था। देलवाड़ा जाने वाले को आबू कैम्प नहीं जाने देते थे। इस कारण से गाड़ी-तांगे वाले, जहां से नई सड़क प्रारम्भ होती है, उसी स्थान पर जंगल में यात्रियों को उतार देते थे। मजदूर कुली आदि भी कभी कभी नहीं मिलते थे। यात्रियों को १॥ मील तक सामान उठा कर पैदल पहाड़ी मार्ग से जाना पड़ता था। उपर्युक्त कष्ट का अनुभव इन पंक्तियों के लेखक ने भी किया है। परन्तु नई सड़क बन जाने से यह सब कठिनाइयां दूर हो गईं।

इन दो मार्गों के अतिरिक्त आबू के आसपास के चारों तरफ़ के गांवों से आबू पर जाने के लिये अनेक खुश्की पगडण्डी मार्ग हैं, किन्तु उन मार्गों से भोमिया और चौकीदार लिये बिना आना जाना भययुक्त है।

मुख्यतया जंगल में निवास करने वाली भील आदि जाति के लोग भी ऐसे मार्गों से बिना शस्त्र लिये आते जाते नहीं हैं।

आबू कैम्प के आसपास चारों तरफ और आबू कैम्प से देलवाड़ा होकर अचलगढ़ तक पक्की सड़कें बनी हुई हैं।

वाहन—आबूरोड (खराड़ी) से आबू पर्वत पर जाने के लिये वाहन (सवारियां) चलाने का गवर्नमेण्ट की तरफ से ठेका दिया गया है, इस कारण से ठेकेदार के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति किराये पर वाहन नहीं चला सकता है। आबूरोड स्टेशन से, आबू पर्वत पर दिन में दो वक्त सुबह-शाम किराये की मोटरें नियमित आती जाती हैं। इसके लिये आबूरोड और आबू कैम्प में ठेकेदार के ऑफिस में चौबीस घंटे पहले सूचना देने से फर्स्ट, सैकण्ड या थर्ड क्लास के टिकिट प्राप्त कर सकते हैं। यदि मोटर में जगह हो तो सूचना न देने से भी जगह मिल जाती है। इसके अलावा स्वतंत्र मोटर अथवा बैल गाड़ियों के वास्ते २४ घण्टे पहिले नीचे उतरने के लिये आबू कैम्प में और ऊपर चढ़ने के वास्ते खराड़ी में ठेकेदार के ऑफिस में, सूचना देने से वाहन मिल सकता है। मोटर चार्ज गवर्नमेण्ट की तरफ से निश्चित किया गया है। यात्रियों से ऊपर जाने के लिये थर्ड

क्लास के १।।।) रु० तथा टोल-टैक्स के ।) याने कुल २) रु० लिये जाते हैं। आबू पर रहने वालों से टोल-टैक्स माफ होने के कारण १।।।) रु० लिये जाते हैं। ऊपर से नीचे आने वाले प्रत्येक मनुष्य से १।।।) रु० लिये जाते हैं। आने जाने के लिये रिटर्न टिकिट के ३।।=) रु० लिये जाते हैं, जो कि एक महीने तक चल सकता है। आबू कैम्प से देलवाड़े तक आने अथवा जाने के लिये बारह सवारी के मोटर का चार्ज ३) रु० ठेकेदार लेता है, बारह से कम सवारी हो तब भी पूरा तीन रुपया देना पड़ता है। बाद में सिरोही स्टेट की ओर से फ़ी मोटर आठ आने का नया टैक्स लगाया गया है, जिसको ठेकेदार यात्रियों से वसूल करता है।

देलवाड़े से अचलगढ़ जाने के लिये किराये की बैल गाड़ियां व घोड़े, जिसका ठेका सिरोही स्टेट की ओर से दिया गया है और किराया भी निश्चित किया हुआ है, ठेकेदार द्वारा मिलते हैं; तथा आबू पर्वत पर सर्वत्र भ्रमण करने के लिये रिक्सा (एक प्रकार की टमटम जो आदमी द्वारा खींची जाती है) किराये पर मिलती है।

अनादरा के मार्ग से आबू जाने के लिये अनादरा गांव में किराये के घोड़े मिल सकते हैं। इस मार्ग पर

सड़क चौड़ी और पक्की बँधी हुई नहीं है। इस कारण घोड़े के अतिरिक्त अन्य वाहन ऊपर नहीं जा सकते हैं। यहां पर किराये की सवारियों के लिये स्टेट की तरफ से ठेका नहीं है। इस प्रकार वाहनों का ठेका देने का हेतु सरकार किंवा स्टेट की तरफ से यह प्रगट किया जाता है कि "मेला आदि किसी भी प्रसंग पर यात्रियों को उनकी आवश्यकतानुसार वाहन निश्चित रेट पर मिल सकें" यह बात सत्य है, किन्तु इसके साथ ही अपनी आय की वृद्धि करने का हेतु भी इसमें सम्मिलित है। यात्रियों का सच्चा हित तो तब ही कहा जा सकता है जब कि राज्य ठेकेदारों से किसी प्रकार का कर लिये बिना यात्रियों को वाहन सस्ते में मिल सके, ऐसा प्रबंध करें।

यात्रा टैक्स (मूंडका)—देलवाड़ा, गुरुशिखर, अचलगढ़, अधरदेवी और वशिष्ठाश्रम की यात्रा करने व देखने को आने वाले सब लोगों से सिरोही राज्य द्वारा फी मनुष्य रु० १-३-६ यात्रा टैक्स लियाजाता है। उपर्युक्त पांच स्थानों में से किसी भी एक स्थान की यात्रा करने व देखने के लिये आने वालों को भी पूरा कर देना पड़ता है। एकबार कर देने से वह आबू पर्वत के प्रत्येक तीर्थ की यात्रा कर सकता है। आबू

कैम्प वासी एक बार कर देने से एक वर्ष पर्यन्त सब स्थानों की यात्रा का लाभ उठा सकते हैं ।

निम्नलिखित लोगों का यात्रा टैक्स माफ है:—

१—समग्र यूरोपियन्स तथा एङ्गलो इण्डियन्स,

२—राजपूताना के महाराजा तथा उनके कुमार,

३—साधु, संन्यासी, फकीर, बावा सेवक और ब्राह्मण आदि जो शपथ पूर्वक कहें कि मैं द्रव्य-रहित हूँ,

४—सिरोही राज्य की प्रजा,

५—तीन वर्ष तक की अवस्था वाले बालक ।

चौकी तथा मूंडके के सम्बन्ध में एक नोटिस सिरोही स्टेट की तरफ से सं० १९३८ माघ शुक्ला ६ को प्रकाशित हुआ था । इसके बाद तारीख १ अक्टूबर सन् १९१७ से आबू पहाड़ का कुछ हिस्सा लीज़ (पट्टे पर) पर राज्य सिरोही की तरफ से बृटिश सरकार को दे दिया गया जिससे उसमें कुछ परिवर्त्तन करके करीब उसी आशय का एक नोटिस ता० १-६-१९१८ को निकाला गया जो आबू लीज़ एरिया में ठहरने व रहने वालों के लिये है मूंडके के हुक्मों के सम्बन्ध में इस ग्रंथ के परिशिष्ट देखे जाएँ ।

मूंडके का टिकिट आबूरोड स्टेशन पर मोटर में बैठते ही स्टेट का नाकेदार रु० १-३-६ लेकर देता है।

कुछ वर्षों के पहले उस टिकिट पर 'चोकी वळावा बदल मुंडकुं' ऐसे शब्द होने का हमें याद आता है। परन्तु अभी कुछ समय से ये शब्द निकाल कर सिर्फ 'मूंडका टिकिट' शब्द ही रक्खे हैं। पहले संवत् १९३८ के हुक्म के अनुसार जुदे जुदे तीर्थ स्थानों के लिये अलग २ थोड़ी थोड़ी रकम ली जाती थी। ऐसा मालूम होता है कि पीछे से सबको मिलाकर एक रकम निश्चित कर उसमें भी थोड़ी रकम और मिलादी गई है। परिणाम यह हुआ कि-चाहे कोई एक तीर्थ को जाय, चाहे सब तीर्थों को, कुल रकम देनी ही पड़ती है। इस अनुचित टैक्स को हटवाने के विषय में जैन समाज प्रयत्न कर रहा है।

मूंडका माफी की कलम ४ के अनुसार सिरोही स्टेट की समस्त प्रजा का मूंडका माफ है लेकिन प्रत्येक मनुष्य से बतौर चौकी रु. ०-६-६ लिये जाते हैं। यद्यपि आबू-रोड से देलवाड़ा तक कुल रास्ते में कोई भी चौकी राज की सन १९१८ से नहीं है।

अनादरा से आबू पर जाने वाले यात्रियों से नींबज के ठाकुर साहब प्रत्येक मनुष्य से चौकी के रु. ०-३-६ लेते हैं, यहां पर जिसने साढे तीन आने दिये हों उससे आबू पर सिर्फ रु. १-०-३ लिये जाते हैं।

सिरोही के वर्त्तमान महाराव के पूर्वज चौहान महाराव लुम्भाजी के, इन जैन मन्दिरों, इनके पुजारियों और यात्रियों से किसी भी प्रकार का कर (टैक्स) न लेने सम्बन्धी, सम्वत् १३७२ का १ तथा १३७३ के २ शिलालेख विमलवसहि में विद्यमान हैं, जिनमें उनके वंशज तथा उत्तराधिकारियों (वारिसदारों) को भी उपर्युक्त आज्ञा का पालन करने का फर्मान है। इसी प्रकार इसी आशय वाले महाराजाधिराज सारङ्गदेव कल्याण के राज़्य में विसल-देव का सं० १३५० का, महाराणा कुम्भाजी का सं० १५०६ का तथा पित्तलहर मन्दिर के कर माफ करने के लिये राउत्त राजधर का सं० १४६७ का, ये लेख * विद्यमान होते हुए भी कलियुग के प्रभाव अथवा लोभ से भण्डार को भरपूर करने के लिये अपने पूर्वजों के फर्मानों पर पानी फेर कर आजकल के राजा महाराजा

---

* ये सब शिलालेख आबू के 'लेख-संग्रह' में प्रकट किये जावेंगे।

यात्रा टैक्स लेने को कटिबद्ध हुए हैं, यह बड़े खेद की बात है। सिरोही के महाराव इस विषय पर खूब गौर कर, अपने पूर्वजों के लिखे हुए दान-पत्रों को पढ़कर यात्रा टैक्स (मूंडका) सर्वथा बन्द करके जनता का आशीर्वाद प्राप्त करेंगे।

देलवाड़ा—आबू रोड से १७॥ मील तथा आबू कैम्प से एक मील दूर, अत्युत्तम शिल्प कला से ख्याति पाने वाले जैन मन्दिरों से सुशोभित, **देलवाड़ा** नामक गाँव है। हिन्दुओं तथा जैनों के अनेक देवस्थान विद्यमान होने के कारण शास्त्रों में इस गाँव का नाम **देवकुल पाटक** अथवा **देवलपाटक** कहा है। यहां पर जैन मन्दिरों के अलावा आसपास में (१) **श्रीमाता** (कन्याकुमारी), (२) **रसिया बालम**, (३) **अर्बुदादेवी–अम्बिकादेवी** (जो आजकल अधरदेवी के नाम से विख्यात है), (४) **मौनी बाबा की गुफा**, (५) **संतसरोवर**, (६) **नल गुफा**, और (७) **पांडव गुफा** आदि स्थान हैं, जिनका वर्णन आगे "हिन्दुतीर्थ और दर्शनीय स्थान" नामक प्रकरण में किया जायगा। यहाँ पर केवल जैन मन्दिरों का ही वर्णन किया जाता है।

देलवाड़ा गाँव के निकट ही एक ऊँची टेकरी पर विशाल कम्पाउण्ड में श्वे० जैनों के पाँच मन्दिर मौजूद

हैं-(१) मंत्री विमलशाह का बनवाया हुआ विमलवसहि (२) मंत्री वस्तुपाल के लघु भाई मंत्री तेजपाल का बनवाया हुआ लूणवसहि (३) भीमाशाह का बनवाया हुआ पित्तलहर (४) चौमुखजी का खरतरवसहि और (५) वर्द्धमान स्वामी (वीर प्रभु)। इन पाँच मन्दिरों में से शुरु के दो मन्दिर संगमरमर की उत्तम नक्शी से शोभित हैं। तृतीय मन्दिर में मूलनायकजी की पीतल की १०८ मन की, पंचतीर्थी के परिकर वाली मनोहर मूर्त्ति है। चतुर्थ मन्दिर, तीन खण्ड (मंज़िल) ऊँचा होने और अपना मुख्य गंभारा मनोहर नक्शी वाला होने से दर्शनीय है। पांच में से चार मन्दिर तो एक ही कम्पाउण्ड में हैं। चौमुखजी का मन्दिर मुख्य (पूर्वीय) द्वार से प्रवेश करते दाहिनी ओर एक जुदे कम्पाउण्ड में है।

कीर्त्तिस्तम्भ से बाँई ओर की सीढियों से थोड़ा ऊपर चढ़ने पर एक छोटासा मन्दिर मिलता है, जिसमें दिगम्बर जैन मूर्त्तियाँ हैं। उसके पीछे कुछ ऊँचाई पर दो-तीन मकान हैं, जिनमें पुजारी आदि रहते हैं।

लूण-वसहि मंदिर के मुख्य दरवाज़े से ज़रा आगे उत्तर दिशा में एक छोटासा दरवाज़ा है, जिसमें होकर

सीढ़ी चढ़ते कुछ ऊँचाई पर एक मकान है, जिसके बाहर एक छोटी गुफा है। उसके निकट एक पीपल के वृक्ष के नीचे अंबाजी की एक खंडित मूर्त्ति है। उसके पास के रास्ते से ज़रा ऊँचाई पर चार देहरियाँ हैं। इस रास्ते से सीधे हाथ की तरफ कार्यालय का एक मकान है। इन चार देहरियों में से तीन में जैन मूर्त्तियाँ हैं और एक में अम्बिका की मूर्त्ति है। ये चार देहरियाँ 'गिरनार की चार टूंक' के नाम से प्रसिद्ध है।

यूरोपियन्स और राजा-महाराजा इन मन्दिरों के दर्शन करने आते हैं। उनके विश्राम के लिये मुख्य पूर्वीय दरवाज़े के बाहर जैन श्वेताम्बर कार्यालय की तरफ से एक वेटिंगरूम (विश्रांतिगृह) बना हुआ है। इस स्थान पर चमड़े के जूते उतार कर कार्यालय की तरफ से रखे हुए कपड़े के बूट पहिनाये जाते हैं। कई साल पहिले यूरोपियन विज़ीटर्स चमड़े के बूट पहिन कर मन्दिरों में प्रवेश करते थे, जिससे जैन समाज को अत्यन्त दुःख होता था। असीम परिश्रम करने पर भी वह कष्ट दूर नहीं हुआ था। यह बात जगत्पूज्य स्वर्गस्थ गुरुदेव श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी को बहुत ही अनुचित प्रतीत होने से उन्होंने उस समय के राजपूताना के एजण्ट टू दी

गवर्नर जनरल मि० कालविन साहब से मिल कर उनको अच्छी तरह से समझाया। तत्पश्चात् लण्डन के इण्डिया ऑफिस के चीफ़ लायब्रेरीयन डा० थॉमस साहब की सिफ़ारिश पहुंचा कर, "चमड़े के बूट पहिन कर कोई भी व्यक्ति मन्दिर में दाख़िल नहीं हो सकेगा" ऐसा एक हुक्म गवर्नमेण्ट से प्राप्त करके करीब विक्रम सं० १९७० से सदा के लिये यह आशातना दूर करादी।

पूर्वीय दरवाज़े के बाहर वेटिङ्गरूम के पास सामने की ओर कारीगरों के रहने के लिये और दरवाज़े के अन्दर कार्यालय के मकान हैं, जिनमें हाल नौकर और पुजारी रहते हैं। मन्दिरों में जाने के मुख्य द्वार के पास बांई ओर जैन श्वेताम्बर कार्यालय है। पेढी का नाम सेठ कल्याणजी परमानन्दजी है। बिस्तरे आदि वस्तुओं का गोदाम है। रास्ते के दोनों तरफ़ कार्यालय के छोटे तथा बड़े मकान हैं। ऊपर के एक मकान में जैन श्वेताम्बर पुस्तकालय है।

यहां पर जैन यात्रियों को ठहरने के लिये दो बड़ी धर्मशालाएँ हैं। उनमें से एक, दो मंज़िल की बड़ी धर्मशाला श्री संघ की ओर से बनी है, और दूसरी अहमदाबाद निवासी सेठ हठीभाई हेमाभाई की बनवाई

हुई है। यात्रियों के लिये सब प्रकार की व्यवस्था है। यात्रियों के वाहनादि का प्रबन्ध तथा अन्य किसी भी कार्य के लिये कार्यालय में सूचना देने से मैनेजर प्रबन्ध करा देता है। यात्रियों की सुगमता के लिये यहां पर एक पुस्तकालय है, जिसमें अभी थोड़ी पुस्तकें हैं, और कुछ समाचारपत्र भी आते हैं। परन्तु यात्रीगण इस पुस्तकालय का लाभ अच्छी तरह से नहीं लेते। यहां के मन्दिरों तथा कार्यालय की देखरेख सिरोही संघ से नियत की हुई कमेटी करती है।*

---

* सेठ कल्याणजी परमानंद (देलवाड़ा जैन कार्यालय) की एक पुरानी बही मेरे देखने में आई। उस पर लगी हुई चिट्ठी से उसमें वि० सं० १८४६ का हिसाब मालूम हुआ। परन्तु उसका सं० १८४६ के हिसाब के साथ सामान्य रीति से वि० सं० १८३९ से १८६५ तक का हिसाब और दस्तावेज़ वगैरह भी थे।

उस बही के किसी २ लेख से मालूम होता है कि—उक्त समय में यहां के मन्दिरों की व्यवस्था सिरोही श्रीसंघ के हाथ में थी। वि० सं० १८५० के आसपास श्रीअचलगढ़ के जैन मन्दिरों की व्यवस्था भी देलवाड़े के अधीन थी। दोनों पर सिरोही के श्रीसंघ की देखरेख थी। उस समय देलवाड़े में यति लोग रहते थे। सिरोही के पंचों की सम्मति से, मन्दिर की व्यवस्था पर उनकी सीधी देखरेख रहती और वे मन्दिर के हित के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करते थे। उस समय बाहर से जो भी यति लोग यहां यात्रा के लिये आते, वे भी यथाशक्ति नकद रकम आदि भेंट रूप में जमा कराते थे।

अचलगढ़ की ओर जाने वाली सड़क के किनारे पर एक दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशाला है। धर्मशाला में दिगम्बर जैन यात्रियों के लिये सब प्रकार की व्यवस्था है। इस दिगम्बर जैन मन्दिर में वि० सं० १४६४ वैशाख शुक्ला १३ गुरुवार का एक लेख है, जिसमें लिखा है कि श्वेताम्बर तीर्थ—श्री आदिनाथ, श्री नेमिनाथ और श्री पित्तलहर; इन तीन मन्दिरों के बनने के पश्चात् श्री मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वती गच्छ के भट्टारक श्रीपद्मनन्दी के शिष्य भट्टारक शुभचन्द्र सहित संघवी गोविन्द, दोशी करणा और गांधी गोविन्द वगैरह समस्त दिगम्बर संघ ने आबू पर राज श्रीराजधर देवडा चूंडा के समय में यह दिगम्बर जैन मन्दिर बनवाया।

श्रीमाता (कन्याकुमारी) से थोड़े फ़ासले पर जैन श्वेताम्बर कार्यालय का एक उद्यान है.* जिसमें शाक-भाजी, फल, फूलादि उत्पन्न होते हैं।

---

* प्राप्त बही से यह भी मालूम होता है कि उक्त संवत् में (१८५० के आसपास) कुछ अरट (बड़े कुए के साथ बड़े खेत) और जोड़ (घास के लिये बीड़) वग़ैरह भी श्रीआदीश्वरजी के मन्दिरजी की मालिकी के थे। उन अरट वग़ैरह के नाम उक्त बही में लिखे हुए हैं। उन खेतों के खेडने का तथा बीड़ के घास को काटने का ठेका समय समय पर देने के दस्तावेज़ भी हैं।

यहां के मन्दिरों में जो चढ़ावा आता है उसमें से चावल, फल और मिठाई पुजारियों को दी जाती हैं; शेष द्रव्यादि सर्व वस्तुएँ भंडार में जमा होती हैं।

चैत्र कृष्णाष्टमी (गुजराती फाल्गुन कृष्णाष्टमी) के दिन, आदीश्वर भगवान् का जन्म तथा दीक्षा-कल्याणक होने से, यहां बड़ा मेला भरता है। उस मेले में जैनों के अतिरिक्त आस पास के ठाकुर, किसान, भील आदि बहुत लोग आते हैं। वे सब भक्ति पूर्वक भगवान् के मन्दिर में जाकर नमस्कार करते हैं; और यथाशक्ति भेट चढ़ाते हैं। उन लोगों को कार्यालय की तरफ से मक्का की घूघरी दी जाती है।*

---

* पहिले इस मेले में अजैन लोग आकर, ख़ास मन्दिर के चौक में गैर खेलते थे। (होली के निमित्त बीच में ढोली को रख कर सौ-पचास आदमी गोल में रहकर दंडे खेलते हैं, उसको 'गैर खेलना' कहते हैं)। इससे भगवान की आशातना होती थी। तथा सूक्ष्म नक्शी को भी नुक्सान होने का भय रहता था। इसलिये वि० सं० १८५२ में श्रीक्षमा-कल्याणजी ने आबू के देलवाड़ा, तोरणा, सोना, ढुंढाई, हेटमजी, आरणा, ओरीसा, उतरज, सेर और अचलगढ़ आदि बारह गांवों के मुखिया लोगों को इकट्ठा करके, उन सब को राज़ी ख़ुशी से मंदिरों में 'गैर' खेलना बंद कराया और भीमाशाह के मंदिर के पीछे (पूर्वीय दरवाज़े के बाहर) बड़ के आसपास के चौक में, जो चौक आदीश्वरजी के मन्दिर के आधीन

अचलगढ़ जाने वाले यात्रियों की बैलगाड़ियां यहां से नित्य लगभग आठ बजे रवाना होती हैं, और यात्रा पूजा-सेवादि क्रिया कराके सायंकाल में लगभग पांच बजे वापिस आती हैं। सिरोही स्टेट का एक सिपाही तो गाड़ियों के साथ नित्य जाता है।

जैन यात्रियों के अतिरिक्त अन्य विज़ीटर्स (अजैन यात्रियों) को हमेशा दिन के १२ से ६ बजे तक ही मन्दिर में जाने देने का रिवाज है जिसको स्थानीय सरकार ने भी मञ्जूर कर लिया है। अतएव अजैन यात्रियों को उपर्युक्त समय नोट कर लेना चाहिये। उक्त समय में सिरोही स्टेट पुलिस का आदमी यहां बैठता है, जो यात्रा टैक्स का पास देख कर मन्दिर में जाने देता है।

आबू पहाड़ और देलवाड़ा का संक्षिप्त वर्णन करने के पश्चात् देलवाड़े के जैन मन्दिरों का भी संक्षेप में वृत्तान्त देना आवश्यकीय समझता हूँ।

है, 'गैर' खेलना शुरू कराया और इस नियम का भंग करने वाले से सवा रुपया दंड आदीश्वरजी के भंडार में लेने का निश्चित किया यह रिवाज़ अभी तक इसी प्रकार से चला आता है। इस दस्तावेज़ में उपर्युक्त १० गांवों के नाम दिये हैं। नीचे हस्ताक्षर तथा गवाहियां हैं। भीमाशाह के मन्दिर के पीछे का बड़वाला चौक श्रीआदीश्वरजी के मन्दिर का है। ऐसा इस दस्तावेज़ में साफ साफ लिखा है।

विमल-वसहि

विमल मन्त्री के पूर्वज—मरुदेश (मारवाड़) में 'श्रीमाल' नामक एक नगर है। आज कल इसकी ख्याति भीनमाल के नाम से है। यह पहिले अत्यन्त समृद्धि-शाली तथा किसी समय गुजरात देश का मुख्यनगर राजधानी था। यहां पर 'प्राग्वाट्'—पोरवाल ज्ञाति का आभूषणरूप 'नीना' नामक एक करोड़पति सेठ निवास करता था, जो अत्यन्त सदाचारी और परम श्रावक था। काल के प्रभाव से अपना धन क्षय होने पर उसने 'भीनमाल' को छोड़कर गुर्जर-देशान्तर्गत 'गांभू' नामक ग्राम को अपना निवास-स्थान बनाया। वहां पर उनका पुनः अभ्युदय हुआ और ऋद्धि-सिद्धि आदि भी प्राप्त हुईं। उसका 'लहर' नामक एक बड़ा विद्वान एवं शूरवीर पुत्र था। वि० सं० ८०२ में 'अणहिल' नामक गडरिये के बताये हुए स्थान पर 'वनराज चावडा' ने 'अणहिलपुर पाटन' बसाया एवं जालिवृक्ष के समीप स्वकीय प्रासाद महल—निर्माण कराया। तत्पश्चात् 'वन राज चावड़ा' ने किसी समय 'नीना' सेठ एवं उसके

पुत्र 'लहर' के समाचार सुनकर उन दोनों को 'अणहिलपुर पाटन' में ले जाकर बसाया। वहां पर उन लोगों को वैभव सुख तथा कीर्त्ति आदि की विशेष प्राप्ति हुई। 'वनराज' 'नीना' सेठ को अपने पिता के तुल्य मानता था उसने 'लहर' को शूरवीर समझ कर अपनी सेना का सेनापति नियत किया। 'लहर' ने सेनपाति रह कर 'वनराज' की अच्छी तरह सेवा की। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर वनराज ने उसको 'संडस्थल' नामक ग्राम भेट में दिया।

मंत्री 'वीर' मन्त्री 'लहर' के वंश में उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नि का नाम 'वीरमति' था। वीर मंत्री 'अणहिलपुर' के शासक 'मूलराज' का मंत्री था, किन्तु धार्मिक होने के कारण राज्य-खटपट तथा सांसारिक उपाधियों से अत्यन्त उदासीन-विरक्त—रहता था। अन्त में उसने राज्य-सेवा तथा स्त्री, पुत्रादि के मोह-ममत्त्व को सर्वथा त्याग कर पवित्र गुरु महाराज के समीप चारित्र-दीक्षा अङ्गीकार कर के आत्मकल्याण किया। वि० * सं० १०८५ में उसका स्वर्गवास हुआ।

---

* इस पुस्तक में जहां पर वि० सं० या सं० का उपयोग किया हो वहां पर विक्रम संवत् ही जानना चाहिये।

विमल—'वीर मंत्री' के ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'नेढ' तथा छोटे का नाम 'विमल' था। ये दोनों भाई विद्वान एवं उदार वृत्ति वाले थे। 'नेढ' 'अणहिलपुर पाटन' के राज्य-सिंहासनाधिपति 'गुर्जर देश' के चौलुक्य महाराजा 'भीमदेव' (प्रथम) का मंत्री था। 'विमल' अत्यन्त कार्यदक्ष शूरवीर तथा उत्साही था। इसी कारण से महाराजा 'भीमदेव' ने उसको स्वकीय सेनाधिपति नियुक्त किया था। महाराजा 'भीमदेव' की आज्ञानुसार उसने अनेक संग्रामों में विजय-लक्ष्मी प्राप्त की थी। इसी कारण से महाराजा 'भीमदेव' उस पर सदैव प्रसन्न रहते तथा सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

उस समय 'आबू' की पूर्व दिशा की तलेटी के बिल्कुल समीप 'चन्द्रावती' नामक एक विशाल नगरी थी। उसमें परमार 'धंधुक' नाम का नृप, गुर्जरपति 'भीमदेव' के सामंत राजा के तौर पर, शासन करता था। वह आबू तथा उसके आसपास के प्रदेश का अधिकारी था। कुछ समय के बाद 'धंधुक' राजा गुर्जर-राष्ट्र-पति से स्वतंत्र होने की इच्छा अथवा अन्य किसी कारण से महाराजा 'भीम-देव' की आज्ञाएँ उल्लंघन करने लगा। इस कार्य से 'भीम-

देव' क्रुद्ध हुआ और उसने 'धंधुक' को स्वाधीन करने के लिये एक बड़ी सेना के साथ 'विमल' सेनापति को 'चंद्रावती' भेजा। महासैन्य के नेता, शूरवीर सेनापति 'विमल' के आगमन के समाचार सुनते ही, परमार 'धंधुक' वहां से भागकर मालवनाथ 'धार वाले परमार भोज' (जो उस समय चित्तौड़ में रहता था) के आश्रय में जाकर रहा। महाराजा 'भीमदेव' ने 'विमल मंत्री' को 'चन्द्रावती' प्रान्त का दंडनायक नियुक्त करके उसके रक्षण का कार्य सौंपा था। तत्पश्चात् 'विमल' मंत्री ने सज्जनता से वणिक् बुद्धि द्वारा 'धंधुक' को युक्ति पूर्वक समझा कर पीछा बुलाया और राजा 'भीमदेव' के साथ उसकी सन्धि करादी।

'विमल मंत्री' ने अपने पिछले जीवन में चंद्रावती और अचलगढ़ को ही अपना निवास-स्थान बनाया था। एक समय 'श्रीधर्मघोषसूरि' विहार करते हुए 'चन्द्रावती' पधारे। 'विमल मंत्री' ने विनती करके उनका वहां पर ही चातुर्मास कराया। 'विमल मंत्रीश्वर' पर उनके उपदेश का अपूर्व प्रभाव पड़ा। 'विमल' ने सूरिजी से प्रार्थना की कि "मैंने राज्य शासन-काल में तथा युद्धों में अनेक पाप कर्म किये हैं और अनेक प्राणियों का संहार किया है, इस कारण मैं पाप का भागी हूँ। अतएव मुझ को ऐसा प्रायश्चित

प्रदान करें कि जिससे मेरे समस्त पाप नष्ट होजावें"। सूरीश्वर ने उत्तर दिया कि—जान बूझ कर इरादापूर्वक किये हुए पापों का प्रायश्चित नहीं होता है, परन्तु तू शुद्धभाव से अत्यन्त पश्चाताप पूर्वक प्रायश्चित मांगता है, इससे मैं तेरे को प्रायश्चित देता हूँ कि "तू आबू तीर्थ का उद्धार कर"। विमल मंत्रीश्वर ने उपर्युक्त आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया।*

---

* 'विमल' मंत्री के पुत्र नहीं था। एक समय मंत्रीश्वर ने धर्मपत्नी के आग्रह से अट्ठम (तीन उपवास) करके श्री अंबिका देवी की आराधना की। देवी उसकी भक्ति और पुण्य के प्रभाव से तत्काल प्रसन्न हुई और तीसरे दिन की मध्य रात्रि में स्वयं आकर 'विमल' मंत्री को कहा कि—"मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, कह! किस लिये मुझे याद किया?" मंत्री ने उत्तर दिया कि, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो मुझे एक पुत्र का और दूसरा आबू पर एक मन्दिर बनाने के वरदान दो"। देवी ने कहा कि, "तुम्हारा इतना पुण्य नहीं है कि दो वरदान मिलें अतएव दो में से एक इच्छित वरदान माँग"। मंत्री ने विचार कर उत्तर दिया कि "मेरी अर्धांगिनी से पूछ कर कल वर मांगूंगा"। देवी—"ठीक" ऐसा कहकर अदृश्य हो गई।

प्रातःकाल में 'विमल' ने अपनी स्त्री से सब बात कही, जिस पर उसने विचार कर कहा, "स्वामिन्! पुत्र से चिरकाल तक नाम अमर नहीं रह सकता, क्योंकि पुत्र कभी सपूत और कभी कपूत निकलते हैं, यदि कपूत निकले तो सात पीढ़ी का प्राप्त यश नाश होजाता है। अतएव

विमल-वसही, ऊपरी हिस्से का दृश्य.

D. J. Press, Ajmer.

विमलवसहि—विमल महाराजा 'भीमदेव', नृप धंधुक तथा अपने ज्येष्ठ भ्राता 'नेढ़' की आज्ञा प्राप्त करके चैत्य मन्दिर—निर्माण कराने के लिये आबू पर्वत पर गये। स्थान पसन्द किया, किन्तु वहां के ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर कहा—"यह हिन्दुओं का तीर्थ है। अतएव यहां जैन मन्दिर बनाने नहीं देंगे। यदि 'पहिले यहां जैन मंदिर था' यह सिद्ध करदो तो खुशी से जैन मन्दिर बनने देंगे।" ब्राह्मणों के इस कथन को सुनकर विमल मंत्री ने अपने स्थान में जाकर अट्ठम—तीन उपवास कर अंबिका देवी की आराधना की। तीसरे दिन की मध्य रात्रि में अंबिकादेवी प्रसन्न होकर स्वप्न में विमल मंत्री को कहने लगी—'मुझे क्यों याद किया?' विमल ने सब हकीकत कही। पश्चात् अंबादेवी ने कहा—"प्रातः काल में चंपा के पेड़ के नीचे जहां कुंकुम का स्वस्तिक दीख पड़े वहां खुदवाना, तेरा कार्य सिद्ध होगा।" प्रातः काल में 'विमल' मंत्री स्नान कर

पुत्र के अतिरिक्त मन्दिर बनाने का वर मांगो कि जिससे अपन स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्राप्त कर सकें"।

अपनी अर्धांगिनी के मुखसे यह बात सुनकर मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ। फिर आधी रात को देवी साक्षात् आई. तिस पर मंत्री ने मन्दिर बनाने का वर मांगा। देवी यह वर देकर अपने स्थान पर गई। 'विमलप्रबन्ध' नामक ग्रन्थ में इसका वर्णन दिया गया है।

सबको साथ लेकर देवी के बतलाये हुए स्थान पर गया। वहां जाकर चंपा के पेड़ के नीचे कुंकुम के स्वस्तिक वाली जगह को खुदवाने से श्री तीर्थंकर भगवान की एक मूर्त्ति निकली। सबको आश्चर्य हुआ, और यहां पहिले जैनतीर्थ था, यह निश्चित हुआ।*

अब फिर ब्राह्मणों ने कहा कि—'यह ज़मीन हमारी है। यहां पर आपको मन्दिर नहीं बनवाने देंगे। यदि 'विमल' मंत्री चाहते तो अपनी शक्ति एवं महाराजा 'भीमदेव'—की आज्ञा होने से जमीन तो क्या? लेकिन सारा आबू पर्वत स्वाधीन कर सकते थे। परन्तु उन्होंने विचार किया कि "धार्मिक कार्य में शक्ति अथवा अनुचित व्यवहार का उपयोग करना अयोग्य है।" इसलिये उन्होंने ब्राह्मणों को एकत्रित करके समझाया और कहा

---

* दंत कथा है कि—यह मूर्ति 'विमल' मंत्री ने मन्दिर बनवाने के पहिले एक सामान्य गम्भारे में विराजमान की थी। यह गम्भारा इस समय विमलवसहि की भमती में बीसवीं देरी के रूप में गिना जाता है। यह मूर्ति श्रीऋषभदेव की है, किन्तु लोग इनको २० वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी की बतलाते हैं। इस मूर्त्ति की यहां पर शुभ मुहूर्त में स्थापना होने तथा 'विमल' मंत्री ने मूलनायकजी के स्थान में स्थापन करने के लिये धातु की नई सुंदर मूर्ति कराई, इन दो कारणों से यह मूर्ति यहीं रही।

कि 'तुम इच्छानुसार द्रव्य लेकर जमीन दो।' ब्राह्मणों ने (यह समझ कर कि—अगर यह मुंह मांगी क़ीमत नहीं देगा तो यहाँ पर जैन मंदिर भी नहीं बनेगा) उत्तर दिया कि "सुवर्ण-मुद्रिका (अशर्फी) से नाप कर आवश्यक ज़मीन ले सकते हो।" विमल ने यह बात स्वीकार की और विचारा कि 'गोल सुवर्ण-मुद्रिका से नापने में बीच में जगह खाली रह जावेगी।' इसलिये उसने नवीन चौकोनी सुवर्ण-मुद्रिकाएँ बनवाई और ज़मीन पर बिछाकर मन्दिर के लिये आवश्यक पृथ्वी ख़रीदी। ज़मीन की क़ीमत में बहुत द्रव्य मिलने से ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

'विमल' मंत्रीश्वर ने उस स्थान पर अपूर्व शिल्पकला-नक्काशी-युक्त; संगमरमर पत्थर का; मूल गम्भारा, गूढ मंडप, नवचौकियां, रंगमंडप तथा बावन जिनालयादि से सुशोभित; करोड़ों रुपये[1] के व्यय से "विमल-वसही" नामक

---

१ जैनों की मान्यता है कि इस मन्दिर के निर्माण कार्य में १८,५३,००,०००) अट्ठारह करोड़ तिरपन लाख रुपये लगे।

यदि एक चौरस इँच चतुर्कोण-चौकोनी सुवर्ण-मुद्रिका का मूल्य पच्चीस रुपये माना जावे तो विमल-वसही मन्दिर में अभी जितनी भूमि रुकी है उसमें चतुर्कोण सुवर्ण-मुद्रिकाएँ बिछाकर ज़मीन खरीदने में केवल भूमि की लागत ४,५३,६०,०००) चार करोड़ तिरपन लाख साठ हजार

जिन-मंदिर निर्माण कराया और इस में मूलनायकजी के स्थान पर श्रीऋषभदेव भगवान् की धातु की बड़ी व मनोहर मूर्त्ति बनवा कर स्थापित की। इस मंदिर की प्रतिष्ठा 'विमल मंत्री' ने 'वर्धमान सूरि' के कर कमलों द्वारा सं० १०८८ में कराई। [१]

रुपया होती है। तब इस श्रेष्ठ और अभूतपूर्व कलापूर्ण मंदिर के बनवाने में १८,५३,००,०००) अट्ठारह करोड़ तिरपन लाख रुपयों का व्यय होना असम्भव नहीं है।

१ विमल-प्रबंधादि ग्रंथों में वर्णन है कि 'सेनापति विमल' ने देवालय बनवाना आरम्भ किया, परन्तु व्यंतरदेव 'वालिनाह' दिन भर के काम को रात्रि में नष्ट कर देता। छः महीने तक काम चला, परन्तु प्रतिदिन का काम रात्रि में नष्ट हो जाता। मन्त्री विमल ने कार्य में होती स्खलना को देखकर अम्बिका देवी की आराधना की। देवी ने मध्य रात्रि में प्रकट होकर कहा कि "इस भूमि का अधिष्ठायक-क्षेत्रपाल 'वालिनाह' मन्दिर के कार्य में विघ्न डालता है। यदि तू कल मध्य रात्रि में उसको नैवेद्यादि से संतुष्ट करेगा तो तेरा काम निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त होगा"। दूसरे दिन मन्त्री नैवेद्यादि सामग्री लेकर मन्दिर की भूमि में गया। उसकी प्रतीक्षा में मध्य रात्रि तक वहां अकेला बैठा रहा। ठीक समय पर 'वालिनाह' भयावह रूप धारण करके आया और बलिदान मांगा। मंत्री ने प्रस्तुत सामग्री उसके सम्मुख धर दी। देव ने कहा कि 'मैं इससे संतुष्ट नहीं हूँ। मुझे मद्य, माँस दे अन्यथा मैं मन्दिर बनना अशक्य कर दूँगा।' धैर्य-शाली मंत्री ने उत्तर दिया कि 'श्रावक होने के कारण मैं मद्य माँस का बलिदान कदापि नहीं दूँगा। इच्छा हो तो नैवेद्यादि ले, नहीं तो युद्ध

विमलवसहि, मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान्.

D. J. Press, Ajmer.

नेढ़ के वंशज—'विमल मंत्री' के ज्येष्ठ भ्राता 'नेढ' के 'धवल' तथा 'लालिग' नामक दो प्रतापी एवं यशस्वी पुत्र थे। वे चौलुक्य महाराजा 'भीमदेव' (प्रथम) के पुत्र महाराजा 'करणराज' के मंत्री थे। 'धवल' का पुत्र 'आणन्द' और 'लालिग' का पुत्र 'महिन्दु' अपने अपने पिताओं की भांति गुणवान् थे। ये दोनों महाराजा 'सिद्धराज जयसिंह' के मंत्री थे। मंत्री 'आणन्द' अत्यन्त प्रभाववान् था। उसकी पत्नी का नाम 'पद्मावती' था। 'पद्मावती' शीलवती, समस्त गुणों की खान तथा धर्म-कार्य में तत्पर रहने वाली परम श्राविका थी। 'आणन्द–पद्मावती' के 'पृथ्वीपाल' और 'महिन्दु' के 'हेमरथ' और 'दशरथ' नामक दो पुत्र थे। 'हेमरथ' व 'दशरथ' ने वि० सं० १२०१ में विमलवसही की दसवें नम्बर की देहरी का जीर्णोद्धार कराया और उसमें श्रीनेमिनाथ भगवान् की नूतन प्रतिमा बनवा कर

के लिये तैयार हो जा।' मंत्री ने इतना कह कर तुरंत ही म्यान से तलवार निकाली और भारी गर्जना पूर्वक 'वालिनाह' पर टूट पड़ा। 'वालिनाह' मंत्री के असह्य तपस्तेज और पुण्य-प्रभाव से प्रभावित हुआ और मंत्री के दिये हुवे नैवेद्य से तुष्ट होकर चला गया। मन्दिर का कार्य निर्विघ्नता पूर्वक लगा और थोड़े समय में बनकर तैयार हो गया"।

मूलनायकजी के स्थान पर विराजमान की। साथ ही अपने पूर्वज 'नीना' से लेकर अपने दोनों भाइयों तक आठ व्यक्तियों की आठ मूर्त्तियाँ एक ही पाषाण में बनवा कर स्थापित कीं। उसी देहरी में हाथी सवार और घुड़सवार मूर्त्ति का १ पट्ट है। परन्तु उस पर नामादि के अभाव से यह किस की मूर्त्ति है, यह जानना कठिन[1] है। उस देहरी के बाहर दरवाज़े पर वि० सं० १२०१ का एक बड़ा लेख खुदा हुआ है। इस लेख से 'विमल' मंत्री के वंश सम्बन्धी बहुत कुछ उपयोगी एवं जानने योग्य वृत्तान्त उपलब्ध होता है।

'पृथ्वीपाल' अत्यन्त प्रतापी, उदार और अपने पूर्वजों के नाम को देदीप्यमान करने वाले नरपुङ्गव थे। वे चौलुक्य महाराजा सिद्धराज 'जयसिंह' तथा 'कुमारपाल' के प्रधान थे। इन्होंने इन दोनों महाराजाओं की पूर्ण कृपा प्राप्त की थी। ये प्रजा-सेवा, तीर्थयात्रा, संघ-

१ उपर्युक्त आठ व्यक्तियों की मूर्त्तियों के निर्माता और इस देव कुलिका-देहरी का जीर्णोद्धार कराने वाले 'हेमरथ व दशरथ' ने इस अपूर्व मंदिर के निर्माता 'विमल' मंत्रीश्वर की मूर्त्ति न बनवाई हो यह असंभव मालूम होता है। इससे यह अनुमान होता है कि हाथी पर बैठी हुई मूर्त्ति 'विमलमंत्रीश्वर' की और अश्वारूढ मूर्त्ति 'दशरथ' की है।)

भक्ति इत्यादि धार्मिक कृत्यों में हमेशा तत्पर रहते थे। वे पूर्ण नीतिमान् और दीन-दुखियों के दुःख दूर करने वाले थे।

'पृथ्वीपाल' ने सं० १२०४ से १२०६ तक 'विमल-वसही' नामक मन्दिर की अनेक देहरियाँ आदि का जीर्णोद्धार कराया था। उस ही समय, अपने पूर्वजों की कीर्ति को शाश्वत-अमर करने के लिये, 'विमल-वसही' मन्दिर के बाहर, सामने ही एक सुन्दर 'हस्तिशाला' बनवाई। हस्तिशाला के द्वार के मुख्य भाग में 'विमल मंत्री' की घुड़सवार मूर्त्ति स्थापित की। इस मूर्त्ति के दोनों तरफ तथा पीछे मिलकर कुल १० हाथी हैं। अन्तिम तीन हाथियों के अतिरिक्त शेष सात हाथी मंत्री 'पृथ्वीपाल' ने अपने पूर्वजों के नाम के वि० सं० १२०४ में बनवाये (जिन में एक हाथी खुद के नाम का भी है)। अन्तिम तीन हाथियों में के दो हाथी वि० सं० १२३७ में मंत्री 'पृथ्वीपाल' के पुत्र मंत्री 'धनपाल' ने अपने ज्येष्ठ भ्राता 'जगदेव' तथा अपने नाम के बनवाये। तीसरे हस्ति का लेख खंडित हो गया है, परन्तु वह भी मंत्री 'धनपाल' का ही बनवाया हुआ मालूम

होता है। 'धनपाल' ने भी अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करके सं० १२४५ में 'विमल-वसही' मन्दिर की कतिपय देहरियों का जीर्णोद्धार कराया। 'धनपाल' के बड़े भाई का नाम 'जगदेव' और पत्नी का नाम 'रुपिणी' (पिणाई) था। (हस्तिशाला विषयक विशेष विवरण जानने के लिये आगे हस्तिशाला का वर्णन देखें)।

यहां पर 'विमल-वसही' मन्दिर की अपूर्व शिल्पकला तथा अवर्णनीय संगमरमर की नक्काशी (बारीक खुदाई) का वर्णन करना व्यर्थ है। क्योंकि मूल गम्भारा और गूढ मंडप के अतिरिक्त अन्य सब भाग लगभग उस ही स्थिति में विद्यमान हैं। इसलिये वाचक तथा प्रेक्षक वहां जाकर साक्षात् देखकर विश्वास के अतिरिक्त अपूर्व आनन्द भी उठा सकते हैं।

यहाँ के दोनों मुख्य मन्दिरों के दर्शन करने वाले मनुष्य को अवश्य ही यह शंका होगी कि जिन मन्दिरों के बाहरी भाग अर्थात् नवचौकियाँ, रंगमंडप तथा भमती की देहरियों में इस प्रकार की अपूर्व कारीगरी का प्रदर्शन है, उन मन्दिरों के अन्दरूनी हिस्से (खास तौर पर मूल गम्भारा और गूढ़मंडप) बिलकुल सादे क्यों ? शिखर
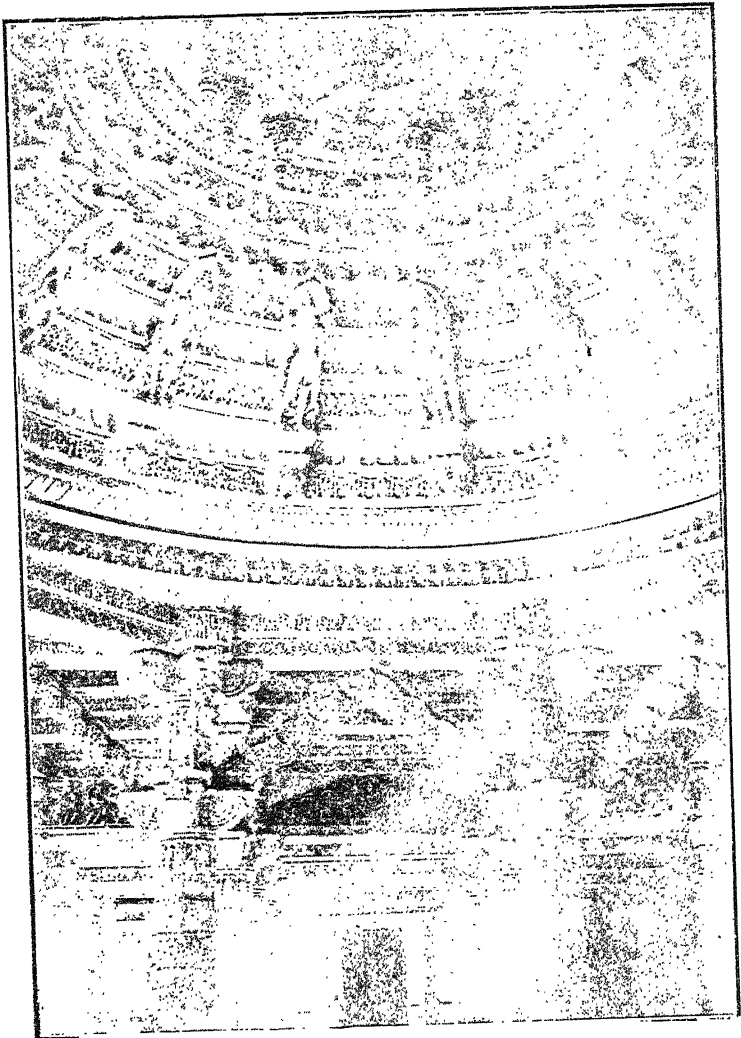
विमल-वसही, मूल गंभारा और सभा मंडप आदि.

भी बिलकुल नीचा तथा बैठे आकार का क्यों बना? उपर्युक्त शंका वास्तव में सत्य है। परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि उन दोनों मन्दिरों के निर्माता मंत्रिवरों ने बाहर के भाग की अपेक्षा अन्दर के भाग अधिक सुंदर, नक्शीदार व सुशोभित बनवाये होंगें। किन्तु वि० संवत् १३६८ में मुसलमान बादशाह[1] ने इन दोनों मन्दिरों का भङ्ग किया, तब दोनों मन्दिरों के मूल गम्भारे, गूढ़ मंडप, दोनों हस्तिशालाओं की कतिपय मूर्त्तियाँ तथा तीर्थंकरों की समग्र प्रतिमाँए बिलकुल नष्ट कर दी हों और बाहरी सुंदर नक्काशी में भी थोड़ी बहुत हानि पहुँचाई हो। इस प्रकार इन दोनों मन्दिरों की हानि होने पर जीर्णोद्धार कराने वाले ने अन्दर का भाग सादा बनवाया होगा।

जीर्णोद्धार—'मांडव्यपुर' (मंडोर) निवासी 'गोसल' के पुत्र 'धनसिंह' के पुत्र 'वीजड़' आदि छः भाइयों तथा 'गोसल' का भाई 'भीमा' के पुत्र 'महणसिंह' के पुत्र 'लालिगसिंह' (लल्ल) आदि तीन भाई अर्थात् 'वीजड़' व 'लालिग' आदि नव भाइयों ने 'विमल-वसही' मन्दिर

---

१ अल्लाउद्दीन खूनी के सैन्य ने वि० सं० १३६८ में जालोर पर चढ़ाई की थी। वहां से जय प्राप्त कर वापिस आते हुए आबू पर चढ़कर उस सैन्य ने इन मन्दिरों का भंग किया होगा।

का जीर्णोद्धार कराकर इसकी, वि० सं० १३७८ के ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के शुभदिन धर्मघोषसूरि की परम्परागत 'ज्ञानचन्द्रसूरि' से प्रतिष्ठा करवाई। संभव है कि जीर्णोद्धार कराने वाले ने मन्दिर के बिलकुल नष्ट भ्रष्ट भाग को अपनी शक्ति के अनुसार सादा तथा नवीन बनवाया हो। यहां के लेखों से प्रकट होता है कि इस जीर्णोद्धार के वक्त कतिपय देहरियों में मूर्त्तियाँ फिर से स्थापित की गई हैं। जीर्णोद्धारक 'बीजड़' के दादा-दादी 'गोसल' 'गुणदेवी' की, तथा 'लालिग' के पिता-माता 'महणसिंह' और 'मीणलदेवी' की मूर्त्तियाँ आजकल भी इस मन्दिर के गूढ़मंडप में विद्यमान हैं[1]।

आबू पर्वत स्थित मन्दिरों के शिखर नीचे होने का मुख्य कारण यह है कि यहां पर लगभग छः छः महीने में भूकम्प हुआ करता है। इससे ऊँचे शिखर जल्दी गिर जाते हैं। मालूम होता है कि इस ही कारण से शिखर नीचे बनवाये जाते हैं। यहाँ के हिन्दू मन्दिरों के शिखर भी प्रायः जैन मन्दिरों की भांति नीचे ही दृष्टिगत होते हैं।

१—"मूर्त्ति संख्या तथा विशेष विवरण" में गूढ़मंडप का विवरण देखो।
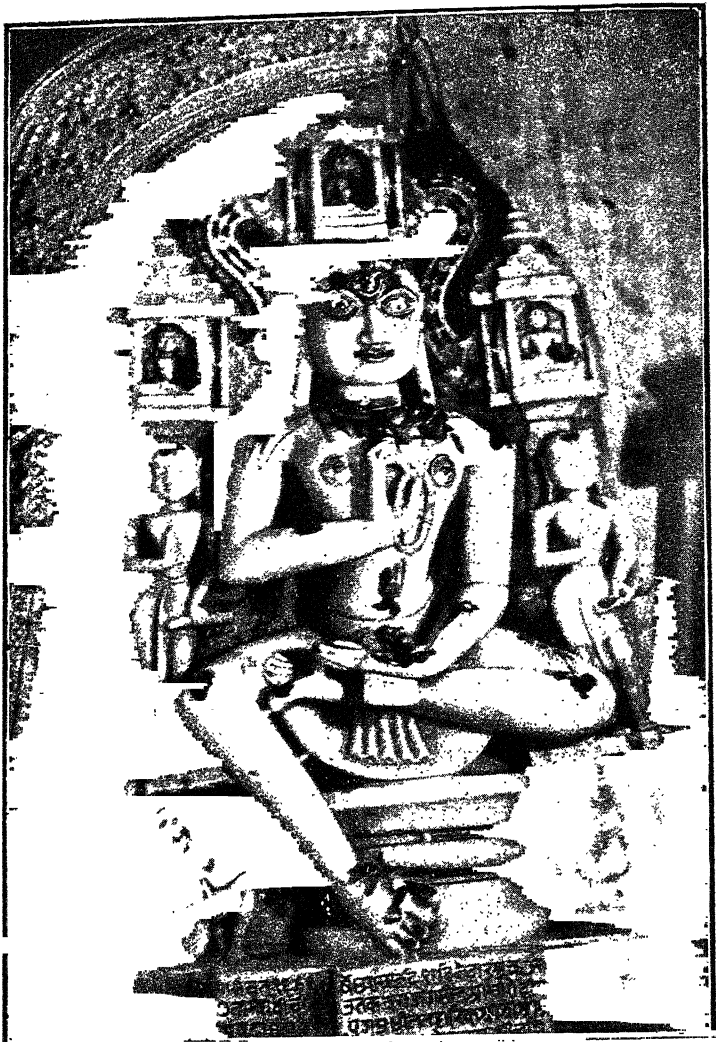
विमल-वसही, गर्भागारस्थित जगत्पूज्य-श्रीहीरविजयसूरीश्वरजी महाराज.

D. J. Press, Ajmer.
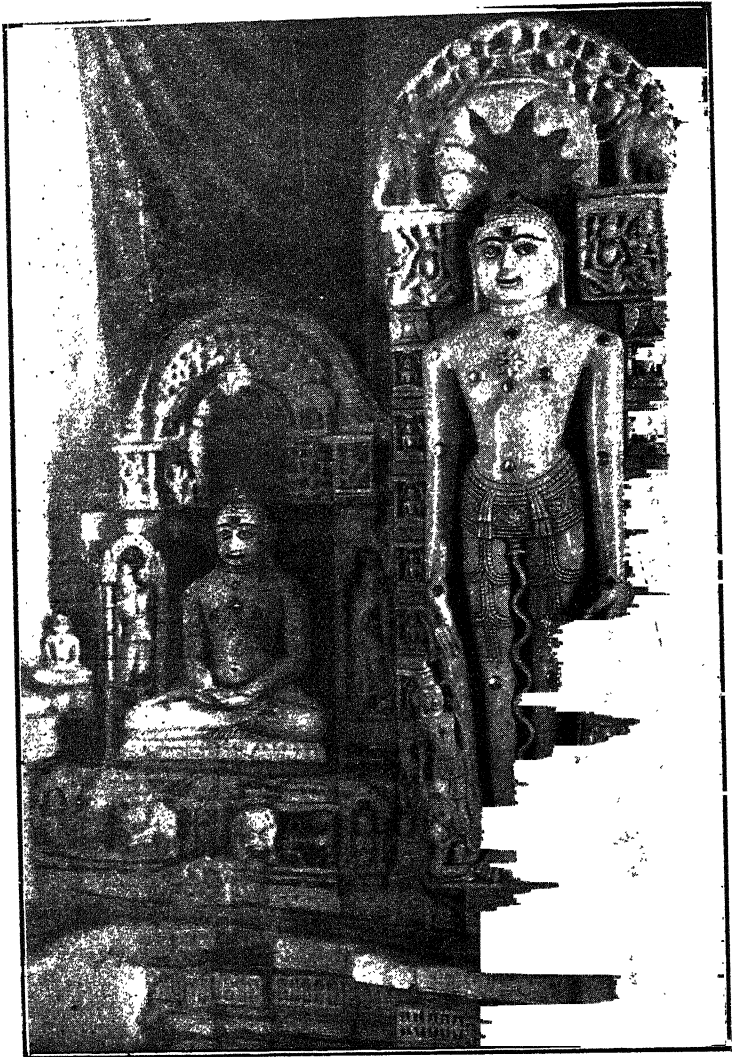
विमल-वसही, गूढमण्डपस्थित बाँये ओर की श्रीपार्श्वनाथ भगवान

मूर्त्ति संख्या तथा विशेष विवरण—

इस मन्दिर के मूल गम्भारे[1] में मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली भव्य एवं मनोहर मूर्त्ति विराजमान है। इसही मूल गम्भारे में बाँई ओर 'श्रीहीरविजय सूरीश्वर' महाराज की मनोहर मूर्त्ति है[2] †। इस मूर्त्तिपट्ट के मध्य में सूरीश्वरजी की प्रतिकृति है। उनके दोनों तरफ दो साधुओं की खड़ी, नीचे दो श्रावकों की बैठी हुई व ऊपरी भाग में भगवान् की बैठी हुई तीन मूर्त्तियाँ हैं। इनकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६६१ में महामहोपाध्याय श्री 'लब्धिसागरजी' ने कराई है। मूर्त्ति पर लेख है।

गूढ़ मंडप में पार्श्वनाथ भगवान् की काउसग्ग (कायोत्सर्ग) ध्यान में खड़ी दो अति मनोहर मूर्त्तियाँ हैं †। प्रत्येक मूर्त्ति पर दोनों तरफ मिलाकर कुल चौबीस जिन-मूर्त्तियाँ, दो इन्द्र, दो श्रावक और दो श्राविकाओं की मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। दोनों के नीचे वि० सं० १४०८ के लेख हैं। धातु की बड़ी एकल मूर्त्तियाँ २, पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्तियाँ ३, सामान्य परिकर वाली

---

१ जैन पारिभाषिक शब्दों के अर्थों के लिये प्रथम परिशिष्ट देखें।

२ सांकेतिक चिह्नों का स्पष्टीकरण द्वितीय परिशिष्ट में देखें।

मूर्त्तियाँ ४, परिकर रहित मूर्त्तियाँ २१ और संगमरमर का चौबीसीजी का १ पट्ट है। इस पट्ट में मूलनायकजी परिकर सहित हैं और नीचे 'धर्म-चक्र' व लेख है। श्रावक की २ तथा श्राविका की ३ मूर्त्तियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) 'सा० गोसल', (२) 'सहू० सुहाग देवि', (३) 'सहू० गुणदेवि', (४) 'सा० मुहणसिंह', (५) 'सहू० मीणलदेवि ‡ (इनमें की नं० १ व ३ की मूर्त्तियाँ, इस मन्दिर का वि० सं० १३७८ में उद्धार कराने वाले श्रावक 'वीजड' ने अपने दादा-दादी 'गोसल' तथा 'गुणदेवी' की सं० १३६८ में करवाई। नम्बर ४ व ५ की सा० 'मुहणसिंह' तथा सहू० 'मीणलदेवी' की मूर्तियाँ, 'वीजड़' के साथ रहकर जीर्णोद्धार कराने वाले 'वीजड़' के काका के लड़के भाई 'लालिगसिंह' ने अपने पिता-माता की संवत् १३६८ में बनवाई)। अंबाजी की छोटी मूर्त्ति १, धातु की चौबीसी १, धातु की पंचतीर्थी २ और धातु की एकल छोटी मूर्त्तियाँ २ हैं, (अर्थात् गूढ मंडप में कुल जिन बिंब ३५, काउसग्गीआ २, चौबीसी का पट्ट १, अम्बाजी की मूर्त्ति १, श्रावक की २ और श्राविका की ३ मूर्त्तियाँ हैं)।

---

‡ ३९ व ४० वां पृष्ठ देखो।
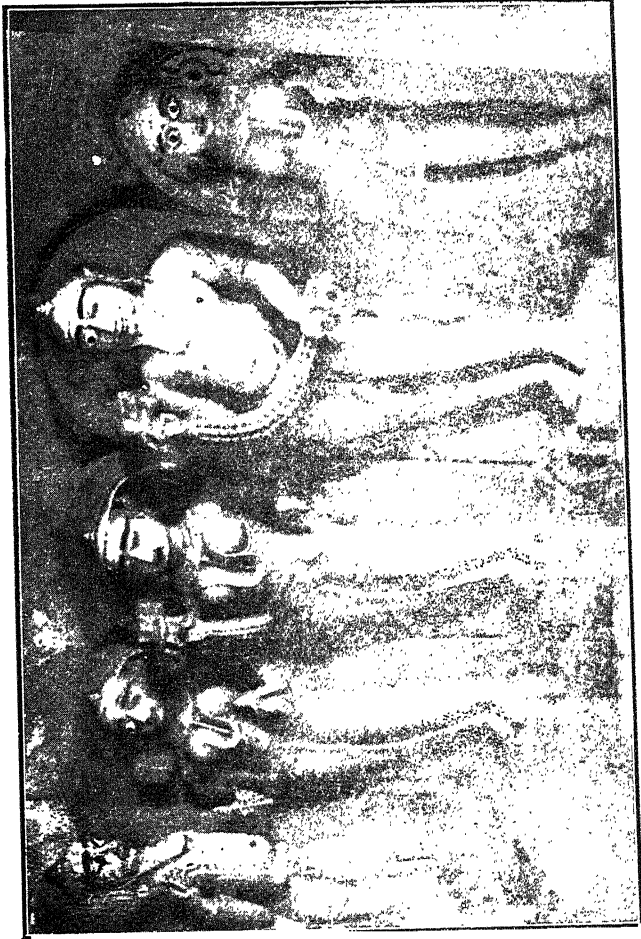
विमल वसहि के गूढमंडप में, (१) गोसल, (२) सुहागदेवी, (३) गुणदेवी,
(४) [illegible] (५) पीगलदेवी ।

विमल-वसही, नव चौकी में दाहिनी ओर का गवाक्ष (आला).

D. J. Press, Ajmer.

गूढ मंडप के बाहर नव चौकियों में बाँई ओर के ताख़ में मूलनायक श्रीआदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, परिकर रहित मूर्त्ति १, एक ही पाषाण में श्रावक-श्राविका का युगल १ (इस युगल के नीचे अक्षर लिखे हैं, परन्तु पढ़े नहीं जाते), और एक पाषाण पट्ट है जिसके मध्य में श्राविका की मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के नीचे दोनों तरफ़ एक २ श्राविका की छोटी मूर्त्ति बनी है। बीच की मूर्त्ति के नीचे 'वारा० जासल' इतने अक्षर लिखे हैं। (कुल दो जिनबिंब तथा श्रावक-श्राविकाओं की मूर्त्तियों के दो पट्ट हैं)।

दाहिनी ओर के ताख़ में मूलनायक श्री (महावीर स्वामी) आदिनाथजी की परिकर वाली मूर्त्ति १, सादी मूर्त्ति १ और पाषाण में खुदा हुआ १ यंत्र है।

मूल गम्भारे के बाहर (पिछले भाग में) तीनों दिशाओं के तीनों आलों में तीर्थंकर भगवान् की परिकर वाली एक २ मूर्त्ति है।

* देहरी नं० १—में मूलनायक श्री [धर्मनाथ] आदीश्वर भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा परिकर वाली एक दूसरी मूर्त्ति है (कुल दो मूर्त्तियाँ हैं)।

* देहरी नं० २—में मूलनायक श्री (पार्श्वनाथ) अजितनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, सादी मूर्त्ति १ और संगमरमर का २४ जिन-माताओं का सपुत्र पट्ट १ है। इस पट्ट के ऊपरी भाग में भगवान् की ३ मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। (कुल २ मूर्त्तियाँ और १ पट्ट है)।

* देहरी नं० ३—में मूलनायक श्री (शान्तिनाथ) (शान्तिनाथ) शान्तिनाथ भगवान् की मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा भगवान् की चौबीसी का पट्ट १ (कुल २ मूर्त्तियाँ और १ पट्ट) है ।

देहरी नं० ४—में मूलनायक श्रीनमिनाथजी की फणायुक्त सपरिकर मूर्त्ति १, सादी मूर्त्ति १ और १ काउसग्गीआ है। (कुल ३ मूर्त्तियाँ हैं)।

देहरी नं० ५—में मूलनायक श्री [कुंथुनाथ] अजित-

नोट—देहरियों की गणना मन्दिर के द्वार में प्रवेश करते बांई ओर से की गई है। देहरियों पर नम्बर भी खुदे हुए हैं ।

नाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्ति १ है। (कुल २ मूर्त्तियाँ हैं)।

*देहरी नं० ६—में मूलनायक श्री (मुनिसुव्रत) संभवनाथ भगवान् की परिकर युक्त मूर्त्ति १ तथा परिकर रहित मूर्त्ति १ है। (कुल २ मूर्त्तियाँ हैं)।

* देहरी नं० ७—में मूलनायक श्री (महावीर स्वामी) शान्तिनाथजी आदि की ४ मूर्त्तियाँ हैं।

देहरी नं० ८—में मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ भगवान् आदि के परिकर रहित ३ जिन बिंब और बाजू में तीनतीर्थी के परिकर वाली १ मूर्त्ति है। (कुल ४ मूर्त्तियाँ हैं)।

देहरी नं० ९—में मूलनायक श्री [आदिनाथ] (नेमिनाथ) (पार्श्वनाथ) महावीर स्वामी आदि की ३ मूर्त्तियाँ हैं।

देहरी नं० १०—में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) सुमतिनाथजी की परिकर वाली मूर्त्ति १, श्री 'सीमंधर' 'युगंधर' 'बाहू' एवं 'सुबाहू', इन चार विहरमान भगवान् की परिकर युक्त चार मूर्त्तियों का पट्ट * १, तीन (अतीत, वर्त्तमान,

---

* इस पट्ट की एक बगल में इसी पत्थर में ऊपरा ऊपरी श्राविका की

अनागत) चौबीसियों का संगमरमर का १ बहुत लम्बा पट्ट [१] है। संगमरमर पाषाण के एक मूर्ति पट्ट में हाथी पर हौदे में बैठे हुए श्रावक की एक मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के नीचे इस ही पट्ट में घुड़सवार श्रावक की एक छोटी मूर्त्ति बनी हुई है। दोनों के सिर पर छत्र है। इस मूर्त्ति पट्ट पर लेख तथा नाम का अभाव होने से यह मूर्त्ति किस व्यक्ति की है यह पता लगाना दुःशक्य है ‡। इसके पास ही संगमरमर के एक लम्बे पत्थर में आठ श्रावकों की मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक मूर्त्ति के नीचे मात्र नाम ही लिखे हुए हैं। वे इस प्रकार हैं।

१—महं० श्रीनीनामूर्त्तिः ॥ ('विमल' मन्त्री और उनके भाई मंत्री 'नेढ़' के वंश के पूर्वजों के मुख्य पुरुष)।

दो मूर्त्तियाँ बनी हैं। वे दोनों हाथ जोड़कर बैठी हैं, मानो चैत्यवंदन करती हों। उनके पास फूलदानी वगैरः पूजा की सामग्री है। इस पट्ट में इस प्रकार नाम लिखे हैं, ऊपर से बाएँ हाथ की तरफ—

(१) समिंधर सामि ॥ (२) जुगंधर सामि ॥

(३) बाहु तीर्थंगर ॥ (४) महाबाहु तीर्थंगर ॥

ऊपर की श्राविका पर— सोहिणि ॥

नीचे की श्राविका पर— अभयसिरि॥

१ इन तीनों चौबीसियों के प्रत्येक भगवान् की मूर्त्ति के नीचे उन २ भगवानों के नाम लिखे हैं।

‡ देखो पृष्ठ ३६ और उसके नीचे का नोट।
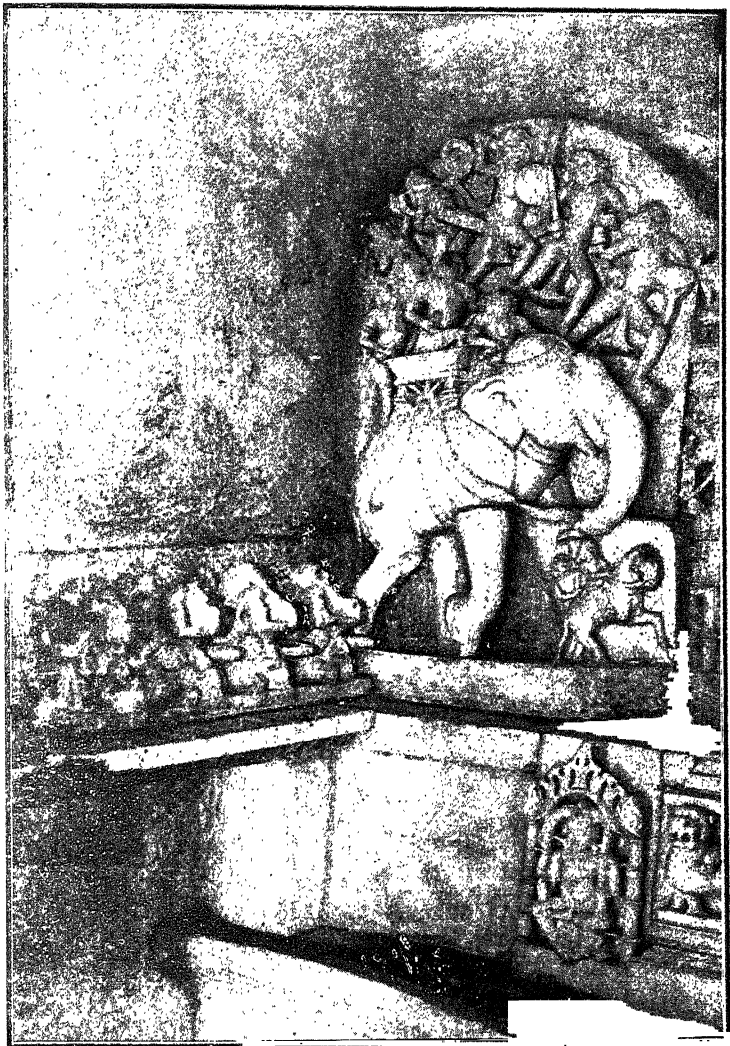
विमल-वसही, देहरी १० – विमल मन्त्री और उनके पूर्वज आदि.

२–महं० श्रीलहरमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'नीना' (नीनक) का पुत्र) ।

३–महं० श्रीवीरमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'लहर' के वंश में लगभग २०० वर्ष बाद का मन्त्री) ।

४–महं० श्रीनेट (ढ) मूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'वीर' का पुत्र और 'विमल' मन्त्री का बड़ा भाई) ।

५–महं० श्रीलालिगमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'नेढ' का पुत्र) ।

६–महं० श्रीमहिंदुय (क) मूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'लालिग' का पुत्र) ।

७–हेमरथमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'महिंदुक' का पुत्र) ।

८–दशरथमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'महिंदुक' का पुत्र और 'हेमरथ' का छोटा भाई) ।

(श्रीप्राग्वाट ज्ञातीय 'हेमरथ' तथा 'दशरथ' नामक दो भाइयों ने दसवें नम्बर की देहरी का जीर्णोद्धार कराया । देहरी के द्वार पर वि० संवत् १२०१ का बड़ा लेख है । विशेष वर्णन के लिये देखो पृष्ठ ३५-३६) । इस देवकुलिका में कुल १ मूर्त्ति और उपर्युक्त ४ मूर्त्ति-पट्ट हैं ।

* देहरी नं० ११—में मूलनायक श्री (मुनिसुव्रत) शांतिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के परिकर युक्त मूर्त्तियाँ २, सादी मूर्त्तियाँ ३ (कुल ६ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० १२—में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) (शांतिनाथ) महावीरस्वामी की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्तियाँ) हैं।

देहरी नं० १३—में मूलनायक श्री (वासुपूज्य) चन्द्र-प्रभ भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १, सादे परिकर वाली मूर्त्ति १, परिकर रहित मूर्त्तियाँ ४ और श्री आदिनाथ भगवान् के चरण-पादुका जोड़ १ (कुल ६ जिन मूर्त्तियाँ और १ जोड़ चरण-पादुका) है।

देहरी नं० १४—मूलनायक श्री (आदीश्वरजी) आदिनाथ भगवानादि के जिनबिंब ६ और हाथी पर बैठे हुए श्रावक की १ मूर्त्ति है [1]।

---

[1] श्रावक की यह मूर्त्ति देहरी में सीधे हाथ की दीवार में लगी है, और संगमरमर पाषाण में बैठे हाथी पर बैठी हुई खुदी है। एक हाथ में फल और दूसरे में फूल की माला है। शरीर पर अंगरखा का चिह्न है। मूर्त्ति पर लेख नहीं है। परन्तु देहरी पर लेख है। इस लेख से मालूम होता है कि—यह मूर्त्ति इस देहरी का जीर्णोद्धार कराने वाले जयता अथवा उसके काका रामा की होनी चाहिये।

देहरी नं० १५—में मूलनायक श्री (शांतिनाथ) (शांतिनाथ)........ भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १, सादे परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्तियाँ २ हैं, (कुल ४ जिन मूर्त्तियाँ हैं)।

देहरी नं० १६—में मूलनायक श्रीशांतिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, परिकर रहित मूर्त्तियाँ ४ और संगमरमर में बने हुए एक वृक्ष के नीचे कमल पर बैठी हुई पद्मासन वाली १ मूर्त्ति बनी हुई है; जिसपर लेख नहीं है। मूर्त्ति के एक तरफ श्रावक तथा दूसरी तरफ श्राविका हाथ में पूजा का सामान लेकर खड़ी है। सम्भव है कि यह बिम्ब पुण्डरीक स्वामी का हो। (कुल जिनबिम्ब ६ और उक्त रचना का पट्ट १ है)।

देहरी नं० १७—में समवसरण की सुंदर रचना, नक्काशी युक्त संगमरमर की बनी है; जिसमें मूलनायक चौमुखजी–(१) महावीर, (२)........, (३) आदिनाथ और (४) चंद्रप्रभ स्वामी हैं, (कुल चार मूर्त्तियाँ हैं)।

इस देहरी के बाहर भी एक छोटे समवसरण की रचना है। इसमें पहिले तीन गढ हैं, इसके ऊपर चौमुखी स्वरूप चार मूर्त्तियाँ और ऊपर शिखर युक्त देहरी का आकार संगमरमर के एक ही पत्थर में बना हुआ है।

देहरी नं० १८—में मूलनायक श्री श्रेयांसनाथ भगवानादि के तीन जिनबिम्ब हैं। इस देहरी का बाहरी गुम्बज और द्वार आदि सब नये बने हुए हैं।

इस देहरी के बाद दो खाली कोठड़ियाँ हैं; जिनमें मन्दिर का फुटकर सामान रहता है।

देहरी नं० १६—में परिकर रहित मूलनायक श्री आदिनाथ भगवानादि के जिनबिम्ब ७ और सादे परिकर वाले २, कुल ६ जिनबिम्ब हैं।

इसी देहरी के बाहर दीवार में एक आला है; जिसमें तीनतीर्थी और सर्प फन के परिकर वाली एक प्रतिमा है।

देहरी नं० २०—के स्थान में श्री ऋषभदेव भगवान् का बड़ा गम्भारा है; जिसमें मूलनायक श्रीऋषभदेव[1]

---

१ इस मूर्त्ति के दोनों कंधों पर चोटी का चिह्न होने से दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि यह प्रतिमा श्री मुनिसुव्रतस्वामी की नहीं किन्तु श्री ऋषभदेव भगवान् की है। बैठक पर लंछन के अभाव, श्यामवर्ण, और कंधे पर रहे हुए चोटी के चिह्न की तरफ ध्यान नहीं पहुंचने आदि कारणों से लोग, इस मूर्त्ति को 'श्रीमुनिसुव्रत स्वामी की मूर्त्ति' मानते हैं। वास्तव में यह भ्रमणा है। अब से इस मूर्त्ति को श्री 'ऋषभदेव भगवान्' ही की मूर्त्ति मानना चाहिये। दंत कथा है कि—'अंबिका देवी' ने 'विमल' मंत्री को स्वप्न

भगवान् की श्याम वर्ण की बड़ी और प्राचीन प्रतिमा १, तीन गढ की सुंदर रचना वाले [1] समवसरण में परिकर वाले चौमुखी स्वरूप जिन बिम्ब ४, उत्कृष्टकालीन १७० तीर्थंकरों का पट्ट १, एक एक चौबीसी के पट्ट २, पंचतीर्थी के परिकर वाली प्रतिमा १, सादे परिकर वाले जिनबिम्ब ४, बिना परिकर के जिनबिम्ब १५, चौबीसी के पट्ट से जुदे हुए छोटे जिनबिम्ब ६, पाट पर बैठे हुए आचार्य की बड़ी मूर्त्ति १ (इस मूर्त्ति के दोनों कानों के पीछे ओघा, दाहिने कंधे पर मुँहपात्ति, एक हाथ में माला और शरीर पर कपड़े के चिह्न बने हैं। इस पट्ट में दोनों तरफ हाथ जोड़े हुए श्रावक की एक २ खड़ी मूर्त्ति बनी है; जिनके

देकर यह मूर्त्ति लगभग वि० सं० १०८० में भूमि से प्रकट करवाई। इस मूर्त्ति का निर्माण काल चतुर्थ आरा (करीब २४६० वर्ष पूर्व) कहा जाता है। 'विमलशाह' ने मंदिर निर्माण कराते समय सब से पहिले इस ही गम्भारे को बनवाया; जिसमें इस मूर्त्ति को विराजमान किया। तत्पश्चात् 'विमल' ने मूलनायकजी के स्थान में स्थापित करने के उद्देश से धातु की एक अति रमणीय और बड़ी मूर्त्ति बनवाई जिससे वह मूर्त्ति इस ही गम्भारे में रही।

१ इस समवसरण में नियमानुसार प्रथम गढ (क़िला) में वाहन (सवारियाँ), दूसरे गढ में उपदेश सुनने के लिये आये हुए पशुओं, तीसरे गढ में देव व मनुष्यों की बारह पर्षदा, बारह दरवाज़े, गढ के कांगड़े और ऊपर देहरी की आकृति आदि की रचना बहुत सुंदर रीति से बनाई है।

नीचे—'सा० सूरा। सा० बाला' नाम खुदे हैं। आचार्य की इस मूर्त्ति के लेख से प्रकट होता है कि उपर्युक्त दोनों श्रावकों ने, धर्मघोष सूरि के शिष्य आनंद सूरि—अमर प्रभ-सूरि के शिष्य ज्ञानचंद्रसूरि के शिष्य 'श्री मुनिशेखर सूरि' की यह मूर्त्ति वि० सं० १३९६ में बनवाई), आचार्य की बिना नाम की हाथ जोड़े बैठी हुई छोटी मूर्त्ति १ (इस मूर्त्ति में भी ऊपर की तरह कानों के पीछे ओघा, शरीर पर कपड़े का देखाव और हाथ में मुँहपत्ति है), श्रावक-श्राविका के बिना नाम के बड़े युगल २, हाथ जोड़े हुए श्रावक की खड़ी छोटी मूर्त्ति १, हाथ जोड़े बैठी हुई श्राविका की छोटी मूर्त्ति १, अंबिका देवी की छोटी मूर्त्ति १, भूमिगृह—तलघर से निकली हुई अंबिका देवी की धातु की सुन्दर मूर्त्ति १, यक्ष की मूर्त्तियाँ २, भैरव-क्षेत्रपाल की मूर्त्ति १ और परिकर से पृथक् हुई इन्द्र की मूर्त्ति १ है। [इस गम्भारे में कुल पंचतीर्थी के परिकर युक्त मूर्त्ति १, सादे परिकर युक्त मूर्त्तियाँ ४, मूलनायकजी सहित बिना परिकर के जिनबिंब १६, बिलकुल छोटी जिन-मूर्त्तियाँ ६, चार जिनबिंब युक्त समवसरण १, १७० जिनपट्ट १, चौबीसी जिनपट्ट ३, आचार्य मूर्त्ति २, श्रावक-श्राविका

विमलवसहि, श्री अम्बिका देवी

D. J. Press, Ajmer.

के युगल २, श्रावक मूर्त्ति १, श्राविका मूर्त्ति १, अंबिका देवी की मूर्त्ति २ (संगमरमर की १ और धातु की १), इन्द्रमूर्त्ति १. यक्षमूर्त्ति २ और भैरवजी (क्षेत्रपाल) की मूर्त्ति १ है]।

देहरी नं० २१—(उपर्युक्त गम्भारे के पास की देहरी) में अंबिका देवी की चार मूर्त्तियाँ हैं, जिनमें की मूल मूर्त्ति † बड़ी और मनोहर है। इसके नीचे लेख है। इस मूर्त्ति को वि० सं० १३९४ में 'विमल' मंत्री के वंशगत 'मंडण (माणक)' ने बनवाई. इस मूर्त्ति और बाँई ओर की अंबिका देवी की छोटी मूर्त्ति के मस्तक पर भगवान् की एक एक मूर्त्ति बनी है।

देहरी नं० २२—में मूलनायक श्री [आदिनाथ] आदिनाथजी की तीनतीर्थी के परिकरवाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं। इस देहरी का सारा बाहरी भाग नया बना हुआ है।

*देहरी नं० २३—में मूलनायक श्री [आदिनाथ] (पद्मप्रभ) नेमिनाथ भगवान् सहित सादे परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ और पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

* देहरी नं० २४—में मूलनायक श्री (शांतिनाथ) सुमतिनाथ अथवा अनंतनाथ भगवान् सहित सादे परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ और बिना परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

* देहरी नं० २५—में मूलनायक श्री (संभवनाथ) पार्श्वनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, बिना परिकर की मूर्त्ति १ और चौवीसी का पट्ट १ (कुल २ मूर्त्तियाँ और १ पट्ट) है।

* देहरी नं० २६—में मूलनायक श्रीचंद्रप्रभ भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० २७—में मूलनायक श्री (सुमतिनाथ) (सुमतिनाथ)........भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्तियाँ ३ (कुल ४ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० २८—में मूलनायक श्री (पद्मप्रभ) नेमिनाथ भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० २९—में मूलनायक श्री (सुपार्श्वनाथ) आदिनाथ भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ३०—में मूलनायक श्री (शांतिनाथ) सीमंधरस्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ३१—में मूलनायक श्री (मुनिसुव्रत) सुविधिनाथ भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्तियां २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ३२—में मूलनायक श्री [ऋषभदेव] (शान्तिनाथ) (महावीर) आदिनाथ भगवान् सहित परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ और बिना परिकर की मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

देहरी नं० ३३—में मूलनायक श्री (अनंतनाथ) कुंथुनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ३४—में मूलनायक श्री (अरनाथ) (मल्लिनाथ) पद्मप्रभ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

*देहरी नं० ३५—में मूलनायक श्री (शान्तिनाथ) धर्मनाथ भगवान् सहित परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ तथा तीन-तीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियां) है।

* देहरी नं० ३६—में मूलनायक श्री (धर्मनाथ) शांतिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियां २ (कुल ३ मूर्त्तियां) हैं।

देहरी नं० ३७—में मूलनायक श्री (शीतलनाथ) पार्श्वनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० ३८—में मूलनायक श्री (शांतिनाथ) आदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० ३९—में मूलनायक श्री (कुंथुनाथ) कुंथुनाथ भगवान् सहित परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ और तीन-तीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

* देहरी नं० ४०—में मूलनायक श्री (मल्लिनाथ) (सुमतिनाथ) विमलनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० ४१—में मूलनायक श्री (वासुपूज्य) शाश्वता वारिषेणजी की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल मूर्त्तियाँ ३) हैं।
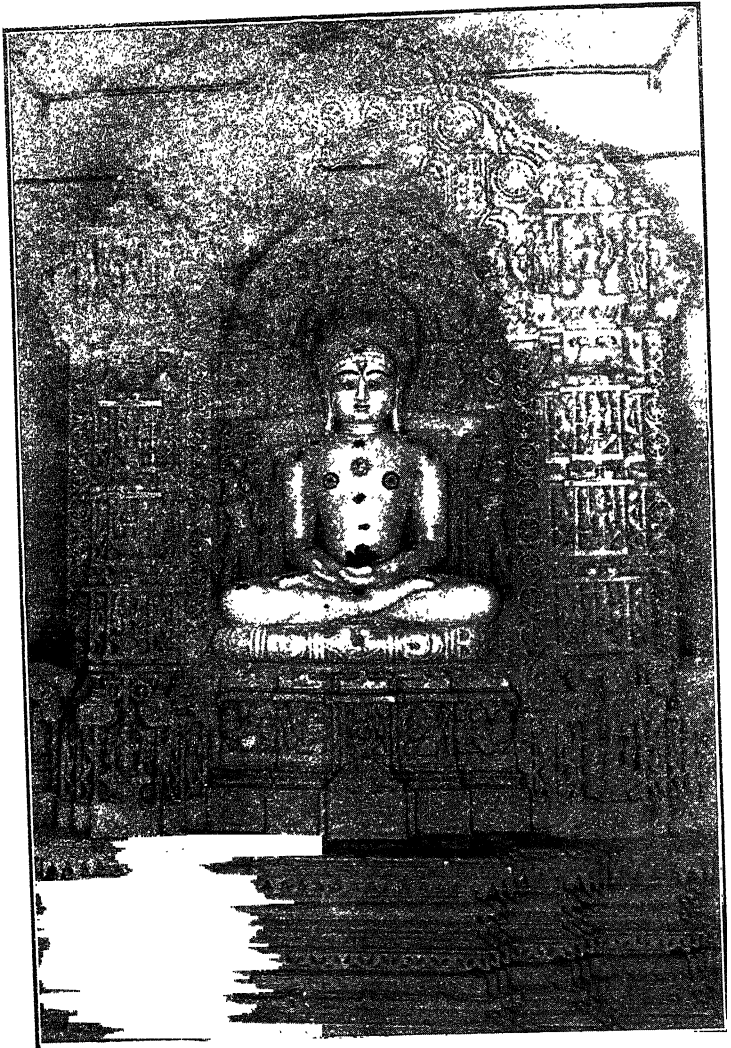
विमल-वसही देहरी ४४—सपरिकर श्रीपार्श्वनाथ भगवान.

* **देहरी नं० ४२**—में मूलनायक श्री [अजितनाथ] (आदिनाथ) आदिनाथ भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ एवं सादी मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* **देहरी नं० ४३**—में मूलनायक श्री [नेमिनाथ] ....भगवान् सहित सादे परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ एवं पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* **देहरी नं० ४४**—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] पार्श्वनाथ भगवान् की अति सुन्दर नक़्काशीदार तोरण † और परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा सादे परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल २ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ४५—में मूलनायक श्री (नमिनाथ) (शांतिनाथ) आदिनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक़्काशी-दार तोरण † एवं परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४६—में मूलनायक श्री [मुनिसुव्रत] (अजितनाथ) धर्मनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित प्रतिमाएँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ४७—में मूलनायक श्री [महावीर] (शांतिनाथ) अनंतनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक़्काशी-दार तोरण † और पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

*देहरी नं० ४८—में मूलनायक श्री [अजितनाथ] सुमतिनाथ भगवान् सहित परिकर वाली प्रतिमाएँ २ तथा परिकर रहित मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

*देहरी नं० ४९—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] अजितनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। बाँई ओर परिकर वाली एक दूसरी मूर्त्ति है; जिसके परिकर में सुंदररीत्या भगवान् की २३ मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। इस-लिये इसको चौबीसी का पट्ट कह सकते हैं। परन्तु इस पट्ट के मूलनायकजी की मूर्त्ति बड़ी और परिकर से भिन्न है (कुल मूर्त्ति १ और उपर्युक्त पट्ट १ है)।

देहरी नं० ५०—में मूलनायक श्री [विमलनाथ] महावीरस्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ५१—में मूलनायक श्री [आदिनाथ].... भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्ति १ (कुल २ मूर्त्तियाँ) है।

*देहरी नं० ५२—में मूलनायक श्री [महावीर] महावीरस्वामी की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्ति १ (कुल २ मूर्त्तियाँ) है।
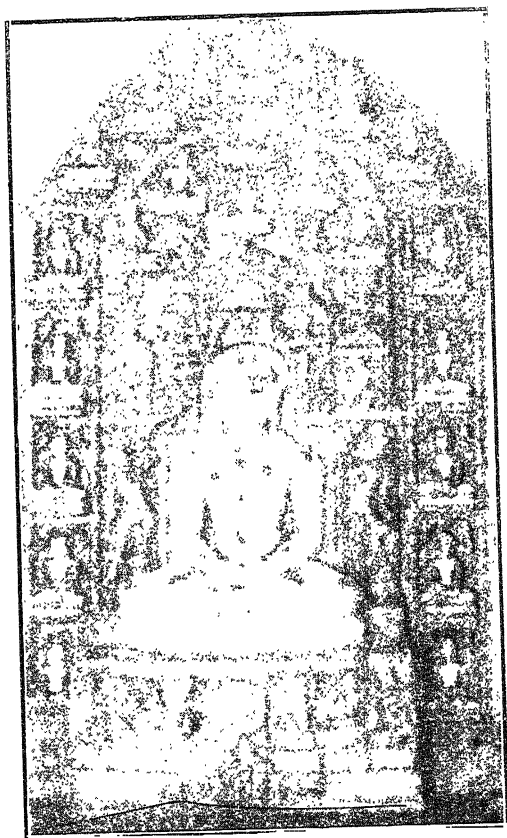
विमल-वसही, देहरी ४९—चतुर्विंशति जिन पट्ट,
(जिन चौवीशी).

*देहरी नं० ५३—में मूलनायक श्री शीतलनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियां) हैं।

*देहरी नं० ५४—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] आदिनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक़्काशीदार तोरण के स्थंभ † (ऊपर का तोरण नहीं है) और तीनतीर्थी के परिकर सहित मूर्त्ति १ है।

इस मंदिर में कुल मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैं:—

१७ पंचतीर्थी के परिकर सहित मूर्त्तियाँ।
११ त्रितीर्थी ,, ,, ,, ,,
६० सादे ,, ,, ,,
१३६ परिकर रहित मूर्त्तियाँ।
२ धातु की बड़ी एकल प्रतिमा।
२ बड़े काउसग्गिये।
१ छोटा काउसग्गिया, परिकर से जुदा हुआ।
१ एक सौ सत्तर जिन का पट्ट।
१ तीन चौबीसी का पट्ट।
७ एक चौबीसी के पट्ट।
१ जिन-माता चौबीसी का पट्ट।

*देहरी नं० ५३—में मूलनायक श्री शीतलनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियां) हैं।

*देहरी नं० ५४—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] आदिनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक्काशीदार तोरण के स्थंभ † (ऊपर का तोरण नहीं है) और तीनतीर्थी के परिकर सहित मूर्त्ति १ है।

इस मंदिर में कुल मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैं:—

१७ पंचतीर्थी के परिकर सहित मूर्त्तियाँ।

११ त्रितीर्थी ,, ,, ,, ,,

६० सादे ,, ,, ,,

१३६ परिकर रहित मूर्त्तियाँ।

२ धातु की बड़ी एकल प्रतिमा।

२ बड़े काउसग्गिये।

१ छोटा काउसग्गिया, परिकर से जुदा हुआ।

१ एक सौ सत्तर जिन का पट्ट।

१ तीन चौवीसी का पट्ट।

७ एक चौवीसी के पट्ट।

१ जिन-माता चौवीसी का पट्ट।

१ धातु की चौबीसी।
१ धातु की पंचतीर्थी।
१ धातु की एकतीर्थी।
२ धातु की बिल्कुल छोटी एकल प्रतिमा।
१ आदीश्वर भगवान् के पादुका की जोड़।
१ पाषाण में खुदा हुआ यंत्र।
६ चौबीसी में से छुटी हुई छोटी जिन मूर्त्तियाँ।
३ आचार्यों की मूर्त्तियाँ (१ मूल गम्भारे में और २ देहरी नं० २० में हैं)।
४ श्रावक-श्राविका के युगल, (१ नवचौकी में, २ देहरी नं० २० में और एक युगल हस्तिशाला के पास वाले बड़े रंगमंडप में है)।
४ श्रावकों की मूर्त्तियाँ (२ मूर्त्तियाँ गूढ मंडप में, १ देहरी नं० १४ में और १ देहरी नं० २० में है)।
२ पट्ट, देहरी नं० १० में हैं, एक पट्ट में हस्ती तथा घोड़े पर बैठे हुए श्रावक की दो मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं, और दूसरे पट्ट में 'नीना' आदि श्रावकों की आठ मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं।
४ श्राविका की मूर्त्तियाँ (३ गढमंडप में और १ देहरी नं० २० में है)।

१ श्राविका पट्ट नवचौकी के आले में है; जिस में श्राविकाओं की तीन मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं।

२ यक्ष की मूर्त्तियाँ (देहरी नं० २० में) हैं।

७ अंबिका देवी की मूर्त्तियाँ (देहरी नं० २० में २ देहरी नं० २१ में ४ तथा गूढमंडप में १) हैं।

१ भैरवजी की खड़ी मूर्त्ति (देहरी नं० २० में) है।

१ इन्द्र की मूर्त्ति।

१ लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति (हस्तिशाला में) है।

११ हाथी १० और घोड़ा १, कुल ११ (हस्तिशाला में) हैं।

१ अश्वारूढ मूर्त्ति 'विमल' शाह की (हस्तिशाला में) है।

१ 'विमल' शाह के मस्तक पर छत्रधारक की खड़ी मूर्त्ति (हस्तिशाला में) है।

८ हाथी पर बैठे हुए श्रावकों की मूर्त्तियाँ ३ और महावतों की मूर्त्तियाँ ५, कुल ८ मूर्त्तियाँ (हस्तिशाला में) हैं।

दृश्यों की रचना—

(१) विमलवसही के गूढ़मंडप के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर, दरवाज़े और बाँए ताक़ के बीच की दीवार की नक़्क़ाशी के सर्वोच्च भाग में (प्रथम खण्ड में), एक श्रावक भगवान् की ओर बैठकर चैत्यवंदन कर रहा है। पास ही में एक श्राविका हाथ जोड़कर खड़ी है, जिसके पास एक अन्य श्राविका खड़ी है। दूसरे खण्ड में दो श्रावक हैं; जिनके हाथ में पुष्पमालाएँ हैं। तीसरे खण्ड में आचार्य महाराज आसन पर बैठकर उपदेश दे रहे हैं। पास में ठवणी (स्थापना) रक्खी है। इसके नीचे के चारों खण्डों में यथाक्रम तीन साधु, तीन साध्वियाँ, तीन श्रावक और तीन श्राविकाएँ खड़ी हैं।

(२) वहीं मुख्य द्वार और दाहिने ताक़ के बीच की दीवार में सबसे ऊपर (प्रथम खण्ड में) एक श्राविका हाथ जोड़कर खड़ी है। उसके पास ही एक श्रावक खड़ा है। दूसरे खण्ड में पुष्पमाला युक्त दो श्रावक और एक अन्य श्रावक हाथ जोड़कर खड़ा है। तीसरे खण्ड में गुरु महाराज दो शिष्यों को क्रिया कराते हुए मस्तक पर वासक्षेप डाल रहे हैं। दोनों शिष्य नम्र

विमल वसहि. दृश्य-१

विमल-वसही दृश्य-१
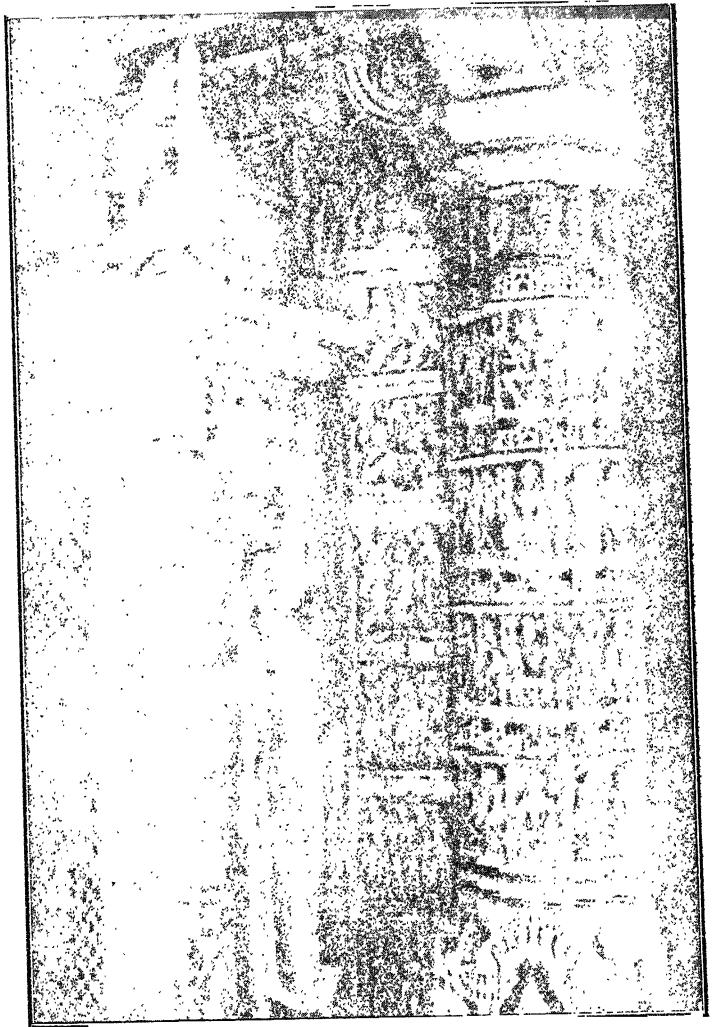
भाव से, मस्तक झुकाकर वासक्षेप डलवा रहे हैं। गुरु महाराज उच्च आसन पर बैठे हैं, सामने उनके मुख्य शिष्य छोटे आसन पर बैठे हैं। बीच में पट्टे पर ठवणी (स्थापनाचार्य्य) है। इसके नीचे के चारों खण्डों में पूर्ववत् ही तीन साधु, तीन साध्वियाँ, तीन श्रावक और तीन श्राविकाएँ खड़ी हैं।

(३) नवचौकी के पहिले खण्ड के मध्यवर्ती (मुख्य दरवाज़े के निकट के) गुम्बज़ की छत के नीचे की गोल पंक्ति में एक ओर भगवान् काउसग्ग ध्यान में स्थित हैं। आस पास श्रावक कुंभ, पुष्पमाला आदि पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। दूसरी ओर आचार्य महाराज आसन पर विराजमान हैं। एक शिष्य साष्टांग नमस्कार कर रहा है। अन्य श्रावक हाथ जोड़कर उपस्थित हैं। अवशिष्ट भाग में गीत, नृत्य, वादित्र आदि के पात्र खुदे हैं।

(४) नवचौकी में दाहिनी ओर के तीसरे गुम्बज़ की छत के एक कोने में अभिषेक सहित लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति बनी हुई है। उसी गुम्बज़ के दूसरे कोने में दो हाथियों के युद्ध का दृश्य बना है।

(५) नवचौकी के पास के बड़े रंगमंडप में बीच के बड़े गोल गुम्बज़ में प्रत्येक स्थम्भ पर भिन्न २

आयुध-शस्त्र और नाना प्रकार के वाहनों से सुशोभित षोडश (सोलह) विद्यादेवियों* की अत्यन्त रमणीय १६ खड़ी मूर्त्तियाँ हैं।

(५ Aए) रंगमंडप और दाहिने हाथ की (उत्तर दिशा की) भमती के बीच के गुम्बजों में से रंगमंडप के पास के बीच के गुम्बज़ में सरस्वती देवी की सुन्दर मूर्त्ति खुदी है।

(५ Bबी) उसके सामने ही-रंगमंडप और दक्षिण दिशा की भमती के बीच के गुम्बजों में से रंगमंडप के पास के बीच के गुम्बज़ में लक्ष्मी देवी की सुन्दर मूर्त्ति खुदी है।

(५ Cसी) मध्यवर्ती बड़े रंगमंडप के नैऋत्य कोण के बीच में अंबिकादेवी की सुन्दर मूर्त्ति बनी है। शेष तीन कोने में भी बीच में अन्य देव-देवियों की सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हैं।

(६) मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार और रंगमंडप के बीच के, नीचे के मध्य गुम्बज़ के बड़े खण्ड में भरत बाहुबली के

---

* १ रोहिणी, २ प्रज्ञप्ति, ३ वज्रश्रृंखला, ४ वज्रांकुशी, ५ अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी), ६ पुरुषदत्ता, ७ काली, ८ महाकाली, ९ गौरी, १० गांधारी, ११ सर्वास्त्रा महाज्वाला, १२ मानवी, १३ वैरोट्या, १४ अच्छुप्ता, १५ मानसी और १६ महामानसी, ये सोलह विद्या देवियाँ हैं।
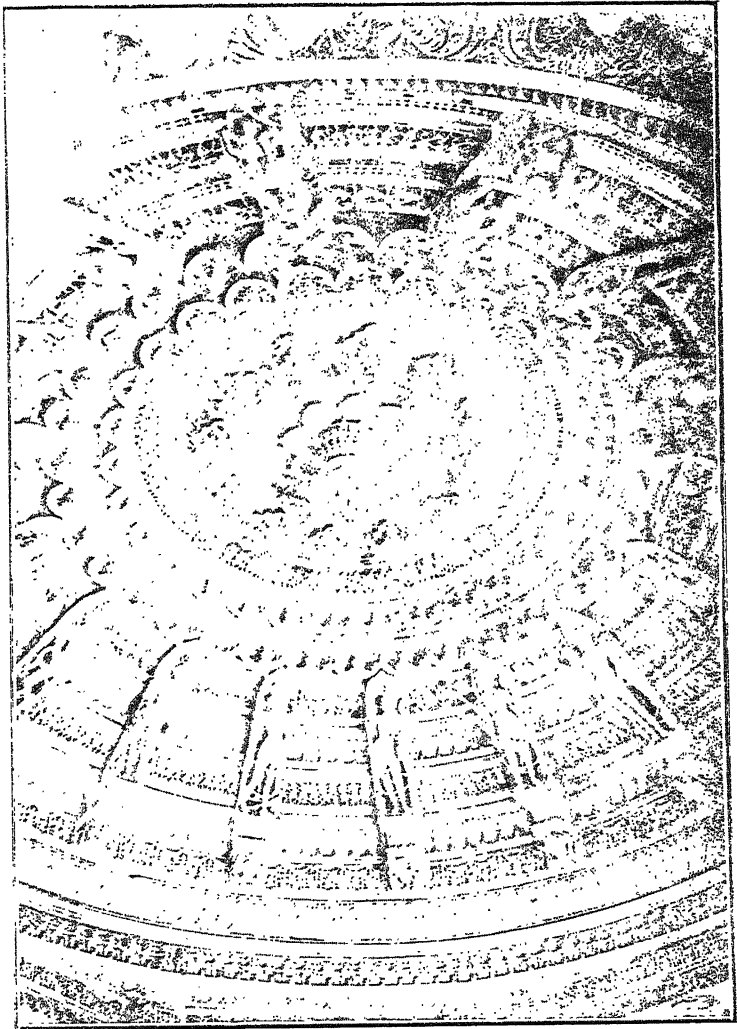
विमल-वसही का बड़ा सभा मंडप, १६ विद्या-देवियाँ—दृश्य ५.

D. J. Press, Ajmer.

युद्ध का दृश्य ‡ है। उस दृश्य के प्रारंभ में एक ओर अयोध्या और दूसरी ओर तक्षशिला नगरी है। दोनों के बीच में वेल का दिखाव बनाकर दोनों को जुदा जुदा प्रदर्शित किया है। उसमें इस प्रकार नाम वगैरह लिखे हैं:—

---

‡ प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् के भरत—बाहुबलि आदि एकसौ पुत्र और ब्राह्मी तथा सुन्दरी ये दो पुत्रियाँ थीं। दीक्षा अङ्गीकार करते समय भगवान् ने भरत को अयोध्या, बाहुबलि को तक्षशिला और शेष पुत्रों को भिन्न-भिन्न देशों के शासक नियुक्त किये। आदिनाथ भगवान् के चारित्र—दीक्षा ग्रहण करने के बाद भगवान् के ९८ लघु पुत्र तथा ब्राह्मी एवं सुन्दरी ने भी सर्व विरति चारित्र स्वीकार किया था। तत्पश्चात् किसी प्रधान कारण से भरत और बाहुबलि इन दोनों में परस्पर महा युद्ध प्रारम्भ हुआ। लोगों—सैनिकों का संहार न हो, इस वस्तु तत्व को ध्यान में लेकर उन दोनों भाइयों ने सैन्यों की लड़ाई बन्द करदी। और दोनों ने स्वयं परस्पर छः प्रकार के द्वन्द युद्ध किये। भरत, चक्रवर्ति होते हुए भी, बाहुबलि के शरीर का बल विशेष होने से बाहुबलि ने सब युद्धों में विजय प्राप्त की। तो भी भरत चक्रवर्ति ने विशेष युद्ध करने की इच्छा से पुनः बाहुबलि पर एक वार मुष्टि प्रहार किया। इस पर बाहुबलि ने भी भरत को मारने के लिये मुट्ठी ऊँची की। परन्तु विचार हुआ कि—"मैं यह क्या अनर्थ कर रहा हूँ? ज्येष्ठ भ्राता का बध करने को उद्यत हुआ हूँ?।" इस प्रकार वैराग्य उत्पन्न होने से उन्होंने उसी समय दीक्षा अङ्गीकार की। अर्थात् उठाई हुई मुट्ठी द्वारा अपने मस्तक के केशों का लुञ्चन कर लिया। भरत राजा ने, उनको नमस्कार कर प्रशंसा की और उनके—बाहुबलि के बड़े लड़के को गादी पर बैठा कर आप अयोध्या पधारे। अब

(६ A ए) पहिले अयोध्या नगरी की तरफ 'श्रीभरथेश्वरसत्का विनीताभिधाना राजधानी' (श्रीभरत चक्रवर्त्ति की अयोध्या नाम की राजधानी)। 'भग्गी वांभी' (बहिन ब्राह्मी)। 'माता सुमंगला' (सुमंगला माता)। पालकी में बैठी हुई स्त्रियों पर 'समस्त अंतःपुर' (सारा जनानखाना)। पालकी में बैठी हुई स्त्री पर 'सुन्दरी स्त्रीरत्न' (स्त्रीरत्न सुन्दरी)। दरवाजे पर 'प्रतोली' (दरवाजा)। पश्चात् लड़ाई के लिये अयोध्या से सेना रवाना होती है।

बाहुबलि को विचार आया कि छोटे ६८ भ्राताओं ने पहिले दीक्षा ग्रहण की है। इसलिये उनको वंदन करना होगा। अत: केवल ज्ञान प्राप्त करके ही भगवान् के समीप जाऊँ, जिससे छोटे भाइयों को वंदन करना न पड़े। इस विचार से बाहुबलि मुनि ने उसी स्थान पर एक वर्ष तक कायोत्सर्ग किया। हमेशा उपवास के साथ ही साथ नाना प्रकार के कष्ट सहन किये। परन्तु केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। तत्पश्चात् उनकी सांसारिक भगिनियाँ साध्वी–ब्राह्मी और सुन्दरी आकर उपदेश देने लगीं कि—"हे भाई ! हाथी पर सवार होने से केवल ज्ञान नहीं होता है।" बाहुबलि तुरन्त ही समझ गये और छोटे भाइयों को बन्दना करने के लिये, अभिमान स्वरूप हाथी का त्याग करके ज्योंही पैर आगे बढ़ाया, कि उसी समय केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। फिर वे भगवान् के समवसरण में गये और वहां पर केवलियों की पर्षदा में बैठे। तत्पश्चात् भगवान् के साथ ही शिवमन्दिर–मोक्ष में गये।

बहुत वर्षों तक भरत चक्रवर्ति के राज्य को भोगने के बाद एक दिन भरत राजा समग्र वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आरीसाभवन में पधारे।
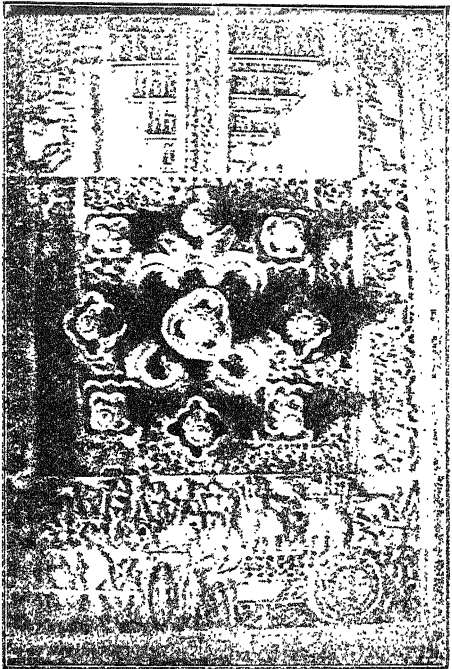
विमलवसहि, भरत बाहुबलि युद्ध-दृश्य ६.

D. J. Press, Ajmer.

इस दृश्य में एक हाथी के ऊपर 'पाटहस्ति विजयगिरि' (पट्ट-हस्ति विजयगिरि) इसके ऊपर लड़ाई के वेष में सज्ज होकर बैठे हुए मनुष्य पर 'महामात्य मतिसागर' (महामंत्री मतिसागर)। लड़ाई के वस्त्र धारण करके हाथी पर बैठे हुए पुरुष पर 'सेनापति सुसेन' (सुषेण सेनापति) और युद्ध की पोशाक पहन कर रथ में बैठे हुए मनुष्य पर 'श्रीभरथेश्वरस्य' (श्रीभरत चक्रवर्ती) वगैरह नाम लिखे हुवे हैं। तत्पश्चात् हाथी, घोड़े और सैन्य की पंक्तियां खुदी हुई हैं।

(६ B बी) तक्षशिला नगरी की ओर 'बाहुबलिसत्का तक्षशिलाभिधाना राजधानी' (बाहुबलि की तक्षशिला नाम की राजधानी), और 'पुत्री जसोमती' (यशोमती पुत्री) लिखा है। इसके बाद तक्षशिला नगरी में से सैन्य युद्ध करने के लिये बाहर निकलने का दृश्य है। उसमें 'सिंहरथ सेनापति'

उस भवन में अपना रूप देखते समय उनके हाथ की उँगली में से अँगुठी (बींटी) के गिरजाने से उंगली शोभाहीन प्रतीत हुई। क्रमानुसार सर्व आभूषणों के उतारने पर शरीर की शोभा में न्यूनता प्राप्त हुई। उसी समय वैराग्य रंगमें तल्लीन होकर 'यह सब बाह्य शोभा है' इस प्रकार शुभ भावना करते २ केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। शासनदेवी ने आकर साधु का वेष दिया। भरत राजर्षि ने उस वेष को ग्रहण कर के वर्षों तक विचरण किया और अनेक प्राणियों को प्रतिबोध करके, आयुष्य पूर्ण होने पर मोक्ष में गये। उनके अन्य ९८ बन्धु व दोनों भगनियाँ भी मोक्ष में गईं।

(सेनापति सिंहरथ)। लड़ाई के वस्त्र पहन कर हाथी पर बैठे हुए मनुष्य पर 'कुमर सोमजस' (कुमार सोमयश)। युद्धके कपड़े पहन कर हाथी पर बैठे हुए आदमी पर 'मंत्री बहुलमति' (मंत्री बहुलमति)। पालकी में बैठी हुई स्त्रियों पर 'अन्तःपुर' (जनान खाना)। पालकी में बैठी हुई स्त्री पर 'सुभद्रा स्त्रीरत्न' (स्त्री रत्न सुभद्रा)। इसके बाद हाथी घोड़ादि सैन्य की पङ्क्तियाँ खुदी हुई हैं। कोई आदमी लड़ाई के वेष में सुसज्जित होकर रथ में बैठा है, उसपर लिखा हुवा नाम पढ़ा नहीं जाता है। परन्तु वह शायद बाहुबलि स्वयं बैठे हों, ऐसा मालूम होता है।

(६ C सी) पश्चात् रणक्षेत्र में एक मृत मनुष्य पर 'अनिलवेगः'। लड़ाई के वेष में घोड़े पर बैठा हुआ मनुष्य पर 'सेनापति सीहरथ'। युद्ध की पोशाक में रथ में बैठे हुए मनुष्य पर 'रथारूढो भरथेश्वरस्य विद्याधर अनिलवेग' (भरत राजा का रथ में बैठा हुआ अनिलवेग विद्याधर) विमान में बैठे हुए आदमी पर 'अनिलवेगः'। हाथी पर 'पाटहस्ति विजयगिरि'। उस हाथी पर बैठे हुए मनुष्य पर 'आदित्यजशः'। घोड़े पर बैठे हुए मनुष्य पर 'सुवेग दूतः'। इत्यादि लिखा है।

(६ D डी) उसके बादकी दो पंक्तियों में भरत-बाहुबलि का छः प्रकार का द्वन्द युद्ध खुदा हुआ है। उसमें इस प्रकार लिखा है:—

"भरथेश्वर बाहुबलि दृष्टियुद्ध। भरथेश्वर बाहुबलि वाकयुद्ध।
भरथेश्वर बाहुबलि बाहुयुद्ध। भरथेश्वर बाहुबलि मुष्टियुद्ध।
भरथेश्वर बाहुबलि दंडयुद्ध। भरथेश्वर बाहुबलि चक्रयुद्ध।"

(६ E ई) पश्चात् काउसग्ग-ध्यान में स्थित और वेल से लिपटी हुई बाहुबलि की मूर्त्ति पर 'काउसग्गे स्थितश्च बाहुबलि' (कायोत्सर्ग किये हुए बाहुबलि)। ब्राह्मी-सुंदरी के समझाने से मान का त्याग करके छोटे भाइयों को वंदनार्थ जाते हुए पैर उठाते ही बाहुबलि को केवल ज्ञान होता है। उस दृश्य की मूर्त्ति पर 'संजात केवलज्ञाने बाहुबलि' और उसके पास ही ब्राह्मी तथा सुन्दरी की मूर्त्ति है, जिस पर 'व्रतिनी बांभी तथा सुंदरी' लिखा है।

(६ F एफ) एक ओर के कोने में तीन गढ और चौमुखजी सहित भगवान् ऋषभदेव के समवसरण की रचना है। भगवान् की पर्षदा में जानवरों की मूर्त्तियों पर 'मंजारी मूखक' (बिल्ली और चूहा), 'सर्प्प नकुल' (सांप और नौला), 'सवच्छगावि सिंह' (अपने बच्छड़े के सहित गाय और सिंह), तथा श्राविकाओं की पर्षदापर 'सुनंदा॥सुमंगला॥ समस्त श्राव(वि)कानी परिखधाः॥' पुरुषों की पर्षदा-

पर 'इयं हि समस्तश्रावकानां परिखधाः ॥' खड़े खड़े विनय पूर्वक नम्र होकर विनति करने वाली ब्राह्मी और सुन्दरी पर 'विज्ञप्तिक्रियमाणा बांभी सुंदरी ॥...........' हाथ जोड़ कर प्रदक्षिणा करते हुए भरत महाराज की मूर्त्ति पर 'प्रदक्षणादीयमानभरथेश्वरस्य ॥' इस प्रकार लिखा है।

एक ओर भरत चक्रवर्त्ति को केवल ज्ञानोत्पत्ति संबंधी दृश्य है। उसमें अंगुठी रहित हाथ की उंगली की ओर दृष्टिपात करती हुई भरत महाराज की मूर्त्ति पर 'अंगुलिक-स्थाननिरीक्षमाणा भरथेश्वरस्य संजातकेवलज्ञानं ॥ अयं भरथेश्वरः ॥' भरत चक्रवर्त्ती को रजोहरण (जैन साधुओं का जंतुरक्षक उपकरण) प्रदान करती हुई देवी की मूर्त्ति पर 'भरथेश्वरस्य संजातकेवलज्ञाने रजोहरणसमर्पणे सानिध्य-देवता समायाता ॥........रजोहरण........सानिध्यदेवता ॥' इत्यादि लिखा हुआ है।

इस गुम्बज के नीचे वाले रंग मंडप के तोरण में दोनों ओर बीच में भगवान् की एक एक मूर्त्ति खुदी है।

(७) उपर्युक्त भरत—बाहुबलि के दृश्य के पास के (मंदिर में प्रवेश करते समय अपने बांयें हाथ की ओर के) गुम्बज के नीचे की चारों दिशाओं की चार पंक्तियों में से

विमल-वसही, दृश्य- ९.

D. J. Press, Ajmer.
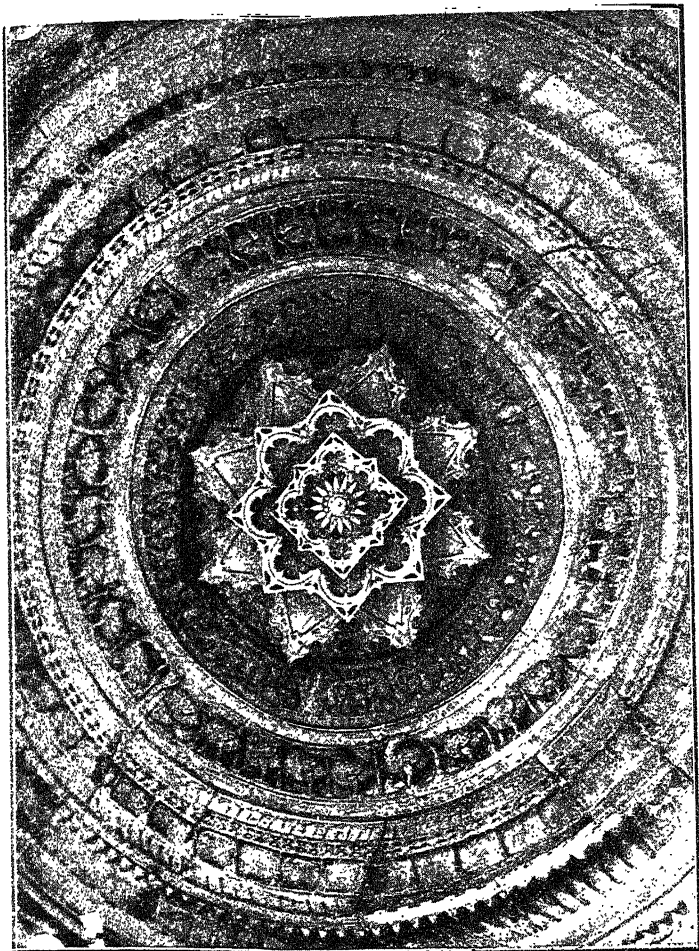
पूर्व दिशा तरफ की लाइन के बीच में भगवान् की मूर्त्ति और दोनों कोनों में सिंहासन पर विराजित आचार्यों की मूर्त्तियां खुदी हुई हैं। और उनके आस पास श्रावकों पूजा की सामग्री हाथ में लेकर उपस्थित हैं। उत्तर दिशा की ओर की पंक्ति के बीच में भी भगवान् की मूर्त्ति है। दक्षिण दिशा की पंक्ति में तीन जगह सिंहासन पर नृपति अथवा कोई उच्च पदाधिकारी बैठे हैं और उनके आस पास सैनिक आदि हैं। तथा पश्चिम की ओर की पंक्तिमें मल्लयुद्ध आदि हैं।

(८) भरत-बाहुबलि के दृश्य वाले गुम्बज के पास के, दाहिने हाथ की ओर के गुम्बज के नीचे की चारों दिशाओं की चार लाईनों में राजा, सैनिक आदि की रचना है। किन्तु उत्तर तरफ की पंक्ति में एक कोने में आचार्य महाराज सिंहासन पर बैठे हैं। निकट में दो श्रावक खड़े हैं, फिर ठवणी है, पश्चात् श्रावक लोग बैठे हैं।

(९) इस मन्दिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही दरवाजे के पास के पहिले गुम्बज के झुमर (झाड़) के पास की पहिली लाइन में भी आचार्य महाराज सिंहासन पर बैठे हुए हैं। पास में ठवणी है, और श्रावकों की पर्षदा भी निकट में ही बैठी है।

(१०) उपर्युक्त दृश्य के पास के द्वितीय गुम्बज में वाम (बांयें) हाथ की ओर हाथीयों की पंक्ति के ऊपर की पंक्ति में आर्द्रकुमार-हस्ति प्रतिबोध का दृश्य है‡। एक हाथी सूंड और अगले दोनों पांव झुका कर साधु महाराज

---

‡ आर्द्रकुमार ने पूर्व भव में अपनी स्त्री सहित दीक्षा-व्रत अङ्गीकार किया था। दीक्षा ग्रहण करने के बाद पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से किसी समय अपनी साध्वी-स्त्री को देखकर उसके प्रति उसका अनुराग-प्रेम उत्पन्न हुआ। जिससे मन द्वारा चारित्र की विराधना हुई। उसका प्रायश्चित किये बगैरं ही मृत्यु पाकर वह देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां का आयुष्य पूर्ण करके आर्द्रक नामक अनार्य प्रदेश में आर्द्रक राजा का आर्द्रकुमार नामक पुत्र हुआ। किसी समय मगध प्रदेश के राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के साथ उसकी पत्र व्यवहार होने से मित्रता हुई। मित्रता होने पर अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को तीर्थंकर भगवान् की मूर्त्ति भेजी। उस मूर्त्ति के दर्शन से आर्द्रकुमार को जाति स्मरण ज्ञान (पूर्वभव स्मारक ज्ञान) उत्पन्न हुआ। निज पूर्वभव के दर्शन से वैराग्य की प्राप्ति हुई। जिससे वह अपने अनार्यदेश को छोड़कर आर्यदेश में आया और स्वयं दीक्षा लेली। भगवान् महावीर को वंदन करने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में ५०० चोर मिले। उनको उपदेश देकर दीक्षा दी। वहां से आगे जाते हुए मार्ग में तापसों का एक आश्रम मिला। इस आश्रम-वासी तापसों का ऐसा मत था कि—अनाज, फल, शाक, भाजी वगैरह खाने में बहुत से जीवों की विराधना (हिंसा) करनी पड़ती है। इसलिये इन सबकी अपेक्षा हाथी जैसे एक ही महान् प्राणी को मारने से
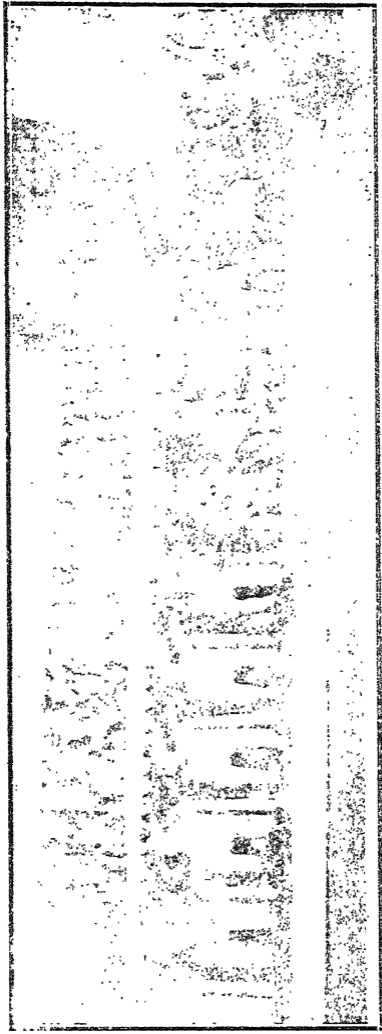
विमल-वसही—आर्द्रकुमार-हस्ति प्रतिबोधक, दृश्य-१०.

D. J. Press, Ajmer.

को नमस्कार कर रहा है। साधु उसको उपदेश दे रहे हैं, उनके पीछे दो अन्य निर्ग्रंथ-साधु हैं। और कोने में भगवान् श्री महावीर स्वामी कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हैं। हाथी की बाजु में एक मनुष्य सिंह के साथ मल्ल कुश्ती करता है।

उसके मांस से बहुत लोगों को बहुत दिनों तक भोजन चल सकता है और इससे असंख्य प्राणियों की हिंसा से विमुक्त हो सकते हैं। (इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'हस्तितापसाश्रम' पड़ा था।) उस हेतु से वे लोग जंगल में से एक हाथी को मारने के उद्देश्य से पकड़ कर लाये थे और उसको अपने आश्रम के पास बांधा था।

उस मार्ग से गमन करनेवाले आर्द्रकुमारादि मुनियों को देखकर उनको नमस्कार करने की उस हाथी की इच्छा हुई। बस, इस शुभ भावना से और महर्षि के प्रभाव से उस हाथी के बंधन खंडित हो गये। निरंकुश हाथी मुनिराजों को वंदन करने के लिये एकदम दौड़ा। सब लोग भय से भागकर दूर जा खड़े हुए और विचारने लगे कि—हाथी अभी हाल ही आर्द्रकुमार मुनि की जीवनयात्रा का नाश कर देगा। परन्तु आर्द्र-कुमार मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए। और उसी स्थान में काउसग्ग ध्यान में खड़े रहे। हाथी, धीरे से उनके निकट आया और उसने अगले दोनों पैर तथा सूंड झुकाकर अपना कुम्भस्थल नवाकर नमस्कार किया। एवं अपनी सूंड से मुनिराज के पवित्र चरणों का स्पर्श किया। मुनि पुङ्गव ने ध्यान पूरा किया और 'यह कोई उत्तम जीव है' ऐसा जानकर उसको खूब उपदेश दिया। हाथी धर्मोपदेश सुन शान्त हुआ और मुनिराज को नमस्कार कर जंगल में चला गया। तत्पश्चात् आर्द्रकुमार मुनि ने तमाम

(११) देहरी नं० २, ३, ११, २४, २६, २८, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४, ५२, ५३ और ५४ के द्वार के बाहर दोनों ओर के दृश्यों में श्रावक-श्राविका हाथ में पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। ४४, ५२, ५३ और ५४ इन चार देहरियों में इस माफिक विशेष दृश्य है। देहरी नं० ४४ के दरवाज़े के बाहर दाहिनी तरफ की ऊपरी पंक्ति के बीच में एक साधु खड़ा है। ५२वीं देहरी के दरवाजे के बाहर बांई तरफ प्रथम त्रिक (तीन आदमी) बाएँ घुटने खड़े करके बैठे हुए चैत्यवंदन कर रहा है। और दाहिने हाथ की तरफ का प्रथम त्रिक घुटने भर बैठ कर वाजित्र बजा रहा है। ५३ वीं देहरी के दरवाजे के बाहर भी दोनों तरफ का प्रथम प्रथम युग्म (दो आदमी) एक एक घुटना खड़ा करके बैठा है। और ५४ वीं देहरी के दरवाजे के बाहर बांयें हाथ की तरफ का प्रथम त्रिक (तीन व्यक्तियों)

तापसों को उपदेश दिया, जिससे सब लोगों ने प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली। यहां से सब साधुओं को लेकर आर्द्रकुमार आगे जा रहे थे। उस समय उपर्युक्त बात की खबर वीरवर मगधाधिपति राजा श्रेणिक व अभयकुमार को मिली। यह समाचार सुनकर वे बड़े हर्षित हुए और आर्द्रकुमार मुनि को वन्दन करने के लिये गये। पश्चात् आर्द्रकुमार मुनि ने भगवान् महावीर की शरण स्वीकार की। वहां आजीवन निर्मल चारित्र पालकर केवल ज्ञान प्राप्त किया और अन्त में मोक्ष के अतिथि हुए।

विमल-वसहि, दृश्य—११, देहरी—२४.

D. J. Press, Ajmer.

विमल-वसही, दृश्य-१२ ख.

D. J. Press, Ajmer.
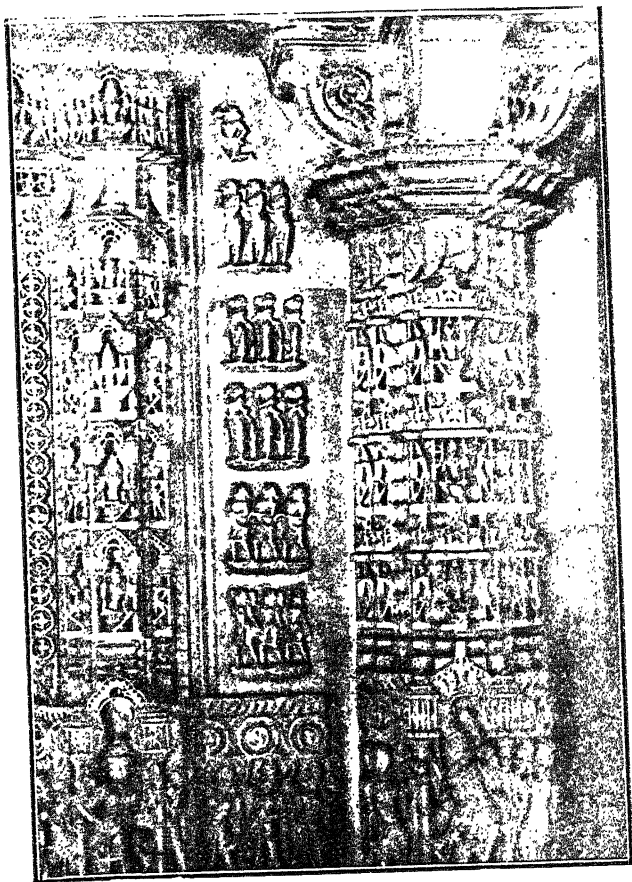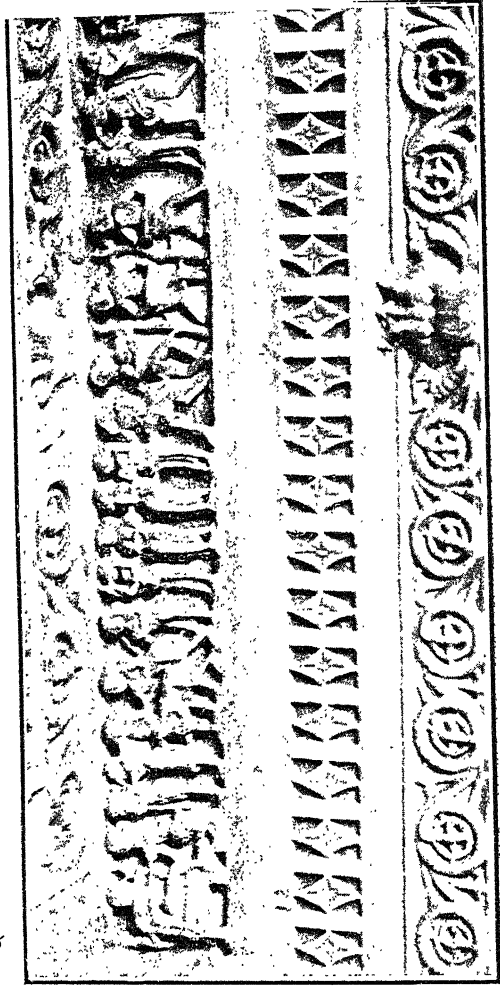
........का, द्वितीय त्रिक साधुओं का, तीसरा त्रिक साधुओं का, चतुर्थ त्रिक श्रावकों का और पाँचवां त्रिक श्राविकाओं का है। इसी प्रकार दाहिने हाथ की तरफ भी पाँचों त्रिक हैं[1]।

(१२) सातवीं देहरी के दूसरे गुम्बज की नीचे की लाईनों की नकासी में (क) एक ओर की लाइन के एक कोने में दो साधु खड़े हैं। उनको एक श्रावक पंचाङ्ग नमस्कार करता है। अन्य तीन श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। दूसरी ओर एक काउसग्गिया है। (ख) तीसरी तरफ की पंक्ति के एक कोने में सिंहासन पर आचार्य महाराज बैठे हैं। एक शिष्य उनके पैर दाबता है। एक नमस्कार करता है और अन्य श्रावक व मुनिराज खड़े हैं।

---

१ आज कल जैन लोग वाम घुटना खड़ा रख कर बैठे २ जिस प्रकार चैत्यवन्दन करते हैं, इसी प्रकार इस भाव की नकशी में चैत्यवन्दन करने वाले लोग बैठे हैं। साम्प्रतिक क्रिश्चियन लोग, जो कि घुटने के आधार पर खड़े रह कर प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार वाजित्र बजाने वाले घुटने के बल पर रह कर वाजित्र बजा रहे हैं।

२४ वीं देहरी के बाहर दोनों तरफ के सब से ऊँचे त्रिकों में रहा हुआ भाव बराबर समझ में नहीं आया। सम्भव है कि वे सब जिनकल्पी साधु हों। दोनों ओर के दूसरे व तीसरे त्रिकों में स्थविरकल्पी जैन साधु हैं। उन लोगों ने दाहिना हाथ खुला रख कर आधुनिक प्रथा के अनुसार पिंडली तक नीचे कपड़े पहिने हैं। उनके सबके बगल में रजोहरण, एक हाथ में मुँहपत्ति और दूसरे हाथ में डंडा है।

(१३) देहरी आठवीं के प्रथम गुम्बज के दृश्य के मध्य में समवसरण व चौमुखजी की रचना है। द्वितीय एवं तृतीय वलय में एक एक व्यक्ति सिंहासनारूढ है। अवशेष भाग में घोड़े और मनुष्यादि का समावेश है। पूर्व तरफ की सीधी लाइन में एक तरफ भगवान् की एक बैठी मूर्त्ति और दूसरी तरफ एक काउसग्गिया खुदा है। और पश्चिम तरफ की सीधी पंक्ति में एक कोने में दो साधु हैं। पश्चात् एक आचार्य आसनारूढ होकर देशना दे रहे हैं। उनके पास स्थापनाचार्यजी हैं और श्रोता लोग उपदेश श्रवण कर रहे हैं।

(१४) आठवीं देहरी के दूसरे गुम्बज के नीचे की (क) पश्चिम ओर की पंक्ति के मध्य भाग में तीन साधु खड़े हैं। एक श्रावक अपना हाथ नीचे रख कर (लकड़ी की तरह सीधा हाथ रख कर) उनको अब्भुट्ठिओ खमा रहा है (वंदन कर रहा है), और अन्य श्रावक हाथ जोड़े खड़े हैं, (ख) पूर्व दिशा की पंक्ति के बीच में दो मुनिराज खड़े हैं, उनको एक साधु धरती से मस्तक लगा कर पञ्चाङ्ग नमस्कार पूर्वक अब्भुट्ठिओ खमा रहा है। दूसरे श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। इस दृश्य के पास ही एक तरफ एक ऐसा दृश्य दिखलाया गया है, जिसमें एक हाथी मनुष्यों का पीछा कर रहा है, और लोग भाग रहे हैं।
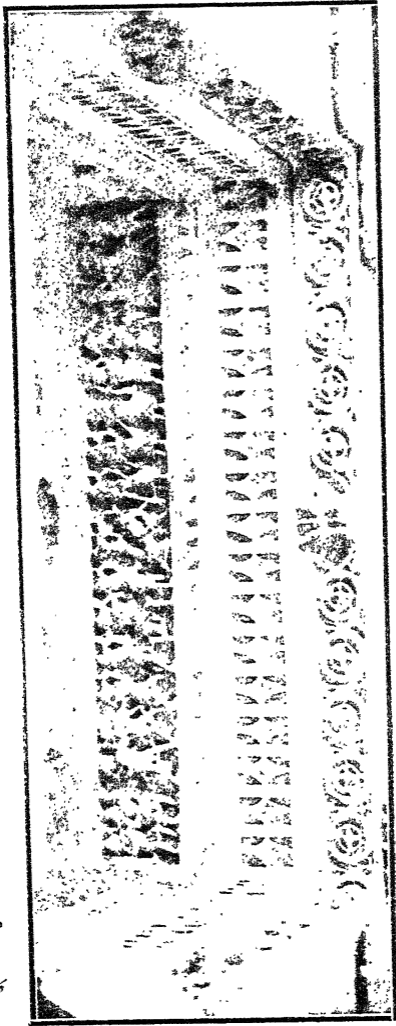
विमल-वसही, दृश्य-१४ क.

D. J. Press, Ajmer.
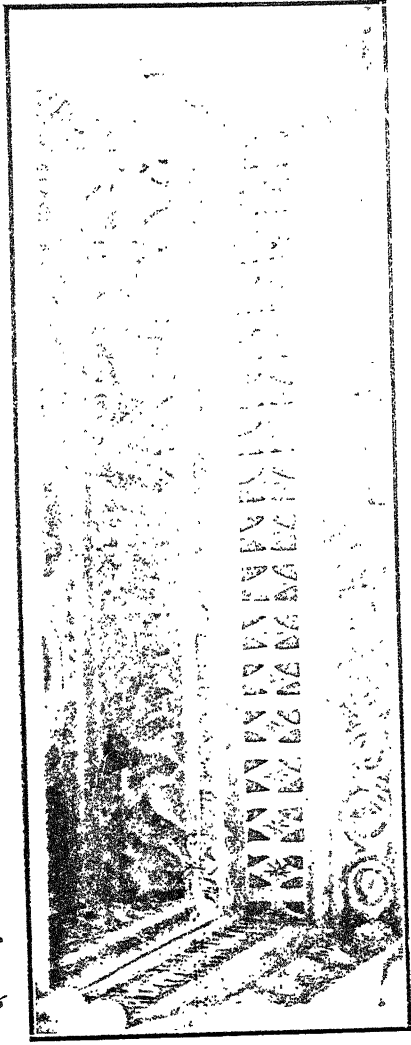
विमल-वसही, दृश्य-१४ ख.

D. J. Press, Ajmer.
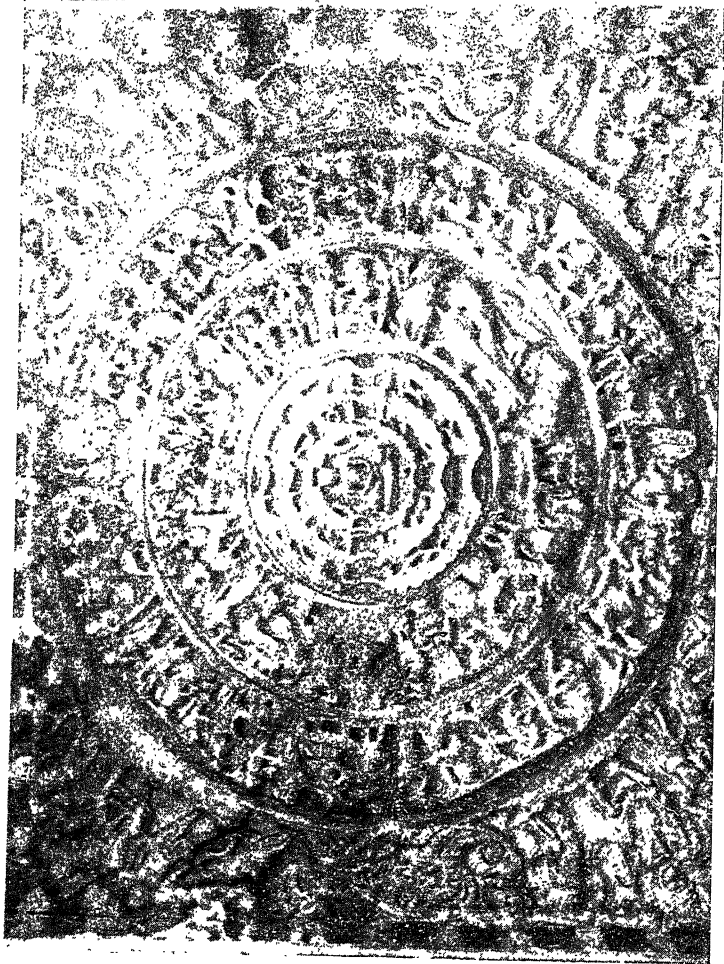
विमल-वसही, पाँच कल्याणक-दृश्य १५.

D. J. Press, Ajmer.

(१५) ६ वीं देहरी (मूलनायकजी श्री नेमिनाथजी) के पहिले गुम्बज में पांच कल्याणक आदि दृश्य की रचना है [१]। उसके बीच में तीन गढ वाले समवसरण में भगवान् की एक मूर्त्ति है। दूसरे वलय में (च्यवन कल्याणक में) भगवान् की माता पलंग पर सोते हुए १४ स्वप्न देखती हैं। (जन्म कल्याणक में) इन्द्र महाराज भगवान् को गोद में बैठा कर जन्माभिषेक—जन्म-स्नात्र महोत्सव कराते हैं। (दीक्षा कल्याणक में) भगवान् खड़े २ लोच कर रहे हैं। (केवल ज्ञान कल्याणक में) बीच में बने हुए समवसरण में बैठ कर भगवान् धर्मोपदेश दे रहे हैं। (निर्वाण कल्याणक में) दूसरे वलय में भगवान् काउसग्ग ध्यान में खड़े हैं, यानि मोक्ष गये हैं। तीसरे वलय में राजा, हाथी, घोड़ा, रथ और मनुष्यादि हैं।

---

१ समस्त प्राणियों के लिये तीर्थंकरों के पांच कल्याणक, सुखदायक अथवा मांगलिक प्रसङ्ग माने जाते हैं। ये पांच कल्याणक इस प्रकार हैं— १ च्यवन कल्याणक (गर्भ में आना), २ जन्म कल्याणक, ३ दीक्षा कल्याणक, ४ केवल ज्ञान कल्याणक (सर्वज्ञावस्था) और ५ निर्वाण कल्याणक (मोक्ष-गमन)। इनमें से प्रथम च्यवन कल्याणक के दृश्य में माता के पलंग पर सोते सोते ही (१) हाथी, (२) वृषभ, (३) केशरी सिंह, (४) लक्ष्मी देवी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य, (८) महाध्वज, (९) पूर्ण कलश, (१०) पद्म सरोवर, (११) रत्नाकर (समुद्र), (१२) देव विमान,

(१६) देहरी १० वीं (मूलनायक श्री नेमिनाथजी) के पहिले गुम्बज में श्री नेमिनाथ चरित्र का दृश्य है ‡। इसके पहिले वलय में श्री नेमिनाथ के साथ श्री कृष्ण और

---

(१३) रत्न राशि और (१४) निर्धूम अग्नि (धूँआँ रहित आग।) इन १४ स्वप्नों के देखने का दृश्य दिखाया जाता है । द्वितीय जन्म कल्याणक में इन्द्र महाराज, जिस दिन भगवान् का जन्म हुआ हो, उसी दिन भगवान् को मेरु पर्वत पर लेजाकर अपनी गोद में लेकर जन्म स्नात्र (स्नान) अभिषेक महोत्सव करते हैं; इसकी, अथवा ५६ दिग् कुमारियाँ बालक सहित माता का स्नान मर्दनादि सूतिकर्म करती हैं; उसकी रचना होती है। तीसरे दीक्षा कल्याणक में दीक्षा का जुलूस और भगवान् का अपने हाथों से केश लुञ्चन करने के दृश्य की रचना होती है । चतुर्थ केवल ज्ञान कल्याणक में भगवान् के केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त होने पर समवसरण (दिव्य व्याख्यान शाला) में बैठ कर देशना देते हैं, इसकी रचनां होती है। पांचवें निर्वाण कल्याणक में समस्त कर्मों के क्षय होने से शरीर को त्याग कर मोक्ष गमन के दृश्य में भगवान् कायोत्सर्ग (काउसग्ग) में खड़े हों अथवा बैठे हों ऐसी आकृति की रचना होती है । उपर्युक्त कथनानुसार अथवा उसमें कुछ ज्यादा कम रचना होती है। इसे पंच कल्याणक का दृश्य कहते हैं ।

‡ प्राचीनकाल में यमुना नदी के किनारे पर बसे हुए शौरीपुर नामक नगर में यादवकुल में अंधकवृष्णि नामक राजा हो गया । उसके दस पुत्र थे। वे दसों पुत्र दशार्ह कहलाते थे। उनमें सबसे बड़ा समुद्रविजय और कनिष्ठ वसुदेव था। काल क्रमानुसार समुद्रविजय शौरीपुर का शासक नियुक्त हुआ। समुद्रविजय १६ लड़कों का पिता था। उन
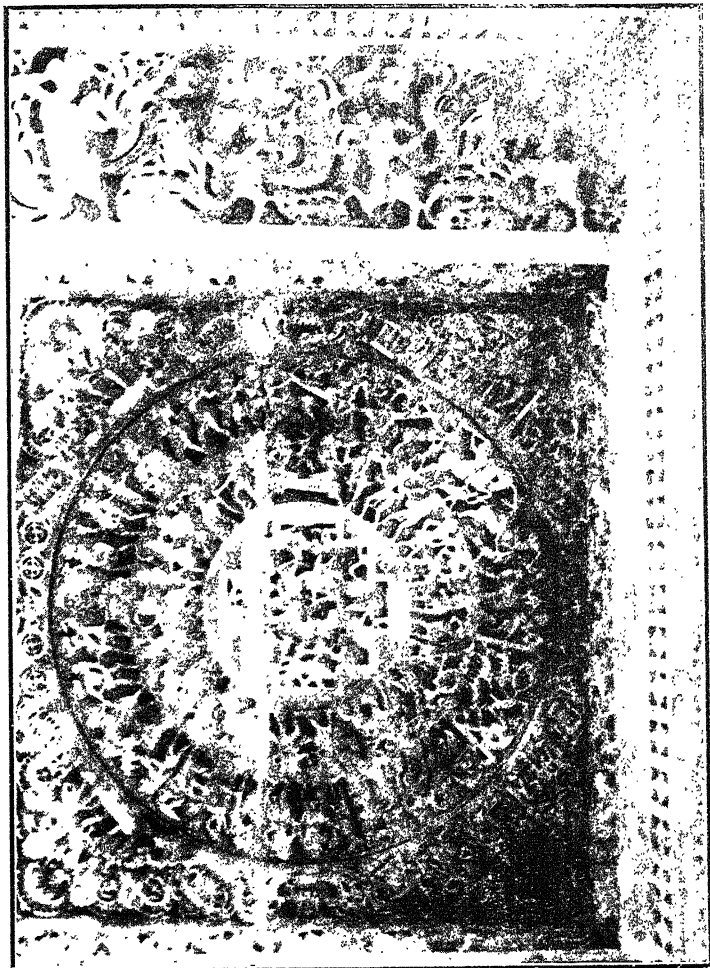
विमल-वसही, श्रीनेमिनाथ चरित्र-दृश्य १६.

D. J. Press, Ajmer.

उनकी स्त्रियों की जल क्रीड़ा का दृश्य, दूसरे वलय में श्री नेमिनाथ भगवान् का कृष्ण की आयुधशाला में जाना, शंख बजाना और श्री नेमिनाथ एवं श्री कृष्ण की बल

लड़कों में एक अरिष्टनेमि नामक पुत्र था, जो कि पीछे से नेमिनाथ नामक २२ वें तीर्थंकर हुए। वसुदेव के राम तथा कृष्णादि पुत्र थे। जो दोनों बलदेव तथा वासुदेव हुए। श्रीकृष्ण, अवस्था में नेमिकुमार से करीब बारह वर्ष बड़े थे। वासुदेव होने के कारण श्रीकृष्ण, प्रति वासुदेव जरासंध को यमराज का अतिथि बनाकर तीन खंड के स्वामी हुए और द्वारिका को राजधानी नियुक्त की। वैराग्य भाव से भूषित होने के कारण नेमिकुमार ने पाणिग्रहण नहीं किया था और राज्य से भी विमुख थे। एक दिन मित्रों की प्रेरणा से नेमिकुमार भ्रमण करते करते श्रीकृष्ण की आयुधशाला में गये। वहां पर उन्होंने अपने मित्रों के मनोरंजन के लिये श्रीकृष्ण की कौमुदी नामक गदा उठाई। शारंग धनुष को चढ़ाया। सुदर्शन चक्र को फिराया और पांचजन्य शंख को बलपूर्वक खूब ताकत से बजाया। शंख ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण को विचार हुआ कि–कोई मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है क्या? (क्योंकि उस शंख को बजाने के लिये श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं था)। शीघ्र ही श्रीकृष्ण आयुधशाला में आकर देखने लगे, तो वहां नेमिकुमार को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्ण के मन में इस भाव का संचार हुआ कि –श्रीनेमिकुमार बहुत बलशाली है। तथापि उनके बल की परीक्षा तो करनी ही चाहिये। इस प्रकार का विचार करके उन्होंने नेमिकुमार को कहा कि—'चलो, अपने अखाड़े में जाकर द्वन्द युद्ध करके बल की परीक्षा करें।' श्रीनेमिकुमार ने उत्तर दिया कि–'अपने को इस प्रकार भूमि पर आलोटन करना उचित

परीक्षा का दृश्य दिखलाया है। तीसरे वलय में उग्रसेन राजा, राजीमती, चौरी, पशुओं का निवास-स्थान (बाड़ा), श्री नेमिनाथ की बरात, श्री नेमिनाथ का पाणिग्रहण किये

नहीं है। यदि शक्ति की परीक्षा ही करनी है तो अपने दोनों में से किसी एक को अपना एक हाथ लम्बा करना चाहिये और उस हाथ को दूसरे से झुकवाना चाहिये। जिसका हाथ झुक जाय वह हार गया और जिसका हाथ न झुके उसकी विजय है।' इस प्रस्ताव को दोनों ने ही मंजूर किया और नियमानुसार बल-परीक्षा की। नेमिकुमार ने श्रीकृष्ण का हाथ बहुत ही आसानी से झुका दिया। परन्तु नेमिकुमार का हाथ श्रीकृष्ण के लटक जाने पर भी टस से मस नहीं हो सका। श्रीकृष्ण, नेमिकुमार के बल से परिचित हुए और उनको 'नेमिकुमार मेरे राज्य के स्वामी आसानी से बन जायंगे' ऐसी चिंता होने लगी। श्रीनेमिकुमार को तो प्रारम्भ से ही संसार पर अत्यन्त अरुचि थी। इसी कारण से वे अपने माता-पितादि का अत्यन्त आग्रह होने पर भी पाणिग्रहण नहीं करते थे।

एक समय राजा समुद्रविजय ने श्रीकृष्ण को कहा कि-'नेमिकुमार को पाणिग्रहण के लिये मनाया जावे।' इस कारण से श्रीकृष्ण, अपनी समस्त स्त्रियां और नेमिकुमार को साथ लेकर जल क्रीडा के लिये गये। वहां एक बड़े जलकुंड के अन्दर नेमिकुमार, श्रीकृष्ण और उनकी समस्त स्त्रियां स्नान करने व परस्पर एक दूसरे पर सुगंधी जल और पुष्पादि फेंकने लगीं। स्नान करके कुंड के बाहर आने के बाद श्रीकृष्ण की समस्त स्त्रियां, प्रेमपूर्वक नेमिकुमार को उपालंभ देकर पाणिग्रहण करने के लिये प्रेरणा करने लगीं। नेमि कुछ मुस्कराये। इस स्मितहास्य पर से उन भोजाइयों ने जाहिर किया कि-नेमिकुमार विवाह करने को राजी हो गये।

बगैर ही लोट जाना, श्री नेमिनाथ की दीक्षा का जुलूस, दीक्षा, एवं केवल ज्ञानादि की रचना युक्त दृश्य दिखलाया है।

(१७) दसवीं देहरी के द्वार के बाहर बाँई ओर दीवार में, वर्त्तमान चौबीसी के १२० कल्याणक की तिथियाँ, चौबीस तीर्थंकरों के वर्ण, दीक्षा तप, केवल ज्ञान तप तथा

श्रीकृष्ण ने तत्काल ही उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती के साथ लग्न करने का निश्चय किया और समीप में ही दिन निकलवाया। दोनों ओर से विवाह की तैयारियां होने लगीं। लग्न के दिन श्रीनेमिकुमार बरात लेकर श्वसुर के भवन को पहुंचे। परन्तु उन्होंने वहां पर देखा कि लग्न प्रसंग के भोजन के निमित्त एक स्थान में हजारों पशु एकत्रित किये गये हैं। उस दृश्य को देखने से नेमिकुमार के हृदय में दया-भाव का संचार हुआ। परिणाम स्वरूप उन समस्त जीवों को वहां से मुक्त कराकर, अपना रथ पीछा लौटा लिया और विवाह नहीं किया। घर आकर माता-पिता को युक्ति-प्रयुक्ति से समझाये और नेमिकुमार ने बड़े आडम्बर के साथ जुलूस पूर्वक घर से निकल कर गिरिनार पर्वत पर जाकर दीक्षा ली। अपने ही हाथ से केशों का लुंचन करके शुद्ध चारित्र अंगीकार किया। थोड़े समय बाद ही समस्त कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और प्राणियों को उपदेश देने के लिये विचरने लगे। काल क्रम से आयुष्य पूर्ण होने पर श्रीनेमिनाथ भगवान् नश्वर शरीर को छोड़कर मुक्त हो गये।

विस्तार के साथ जानने की अभिलाषा रखने वाले, 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' का आठवां पर्व अथवा 'श्रीयशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर' से प्रकाशित 'श्रीनेमिनाथ चरित्र महा काव्य' आदि ग्रन्थ देखें।

निर्वाण तप खुदा हुआ है। इस देहरी के दरवाजे के ऊपर वि० सं० १२०१ का, इसके जीर्णोद्धार कराने वाले हेमरथ व दशरथ का खुदवाया हुआ बड़ा लेख है। इस लेख से विमल मंत्री के कुटुम्ब सम्बन्धी बहुत जानने को मिलता है।

(१८) देहरी नं० ११ के पहिले गुम्बज में १४ हाथ वाली देवी की एक मनोहर मूर्त्ति खुदी है।

(१९) देहरी नं० १२ वीं के पहिले गुम्बज में श्री शान्तिनाथ भगवान् के पूर्व भव के मेघरथ राजा के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले एक प्रसङ्ग का एवं पंच-कल्याणक आदि का दृश्य है ‡। उसमें मेघरथ राजा का

---

‡ सोलवें तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ भगवान् अपने अन्तिम भव (शान्तिनाथ) के पहिले के तीसरे भव में मेघरथ नामक अवधि ज्ञानी राजा थे। एक समय इशानेन्द्र ने अपनी सभा में मेघरथ राजा की प्रशंसा करते हुए कहा कि-"राजा मेघरथ को उसके धर्म से चलायमान करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं है"। सुरूप नामक देव से यह प्रशंसा सहन नहीं हुई। वह मेघरथ की परीक्षा करने के लिये आ रहा था कि मार्ग में उसने बाज पक्षी और कबूतर को परस्पर लड़ते देखकर उनमें अधिष्ठित हो गया। मेघरथ राजा पौषधशाला-उपाश्रय में पौषधव्रत (एक दिन के लिये साधुव्रत) धारण करके बैठे थे। इतने ही में वह कबूतर मनुष्य की भाषा में यह बोलता हुआ कि—'मेरी रक्षा करो, मेरा शत्रु मेरा पीछा कर रहा है' आया और मेघरथ राजा की गोद में बैठ गया। मेघरथ

विमल-वसहि, दृश्य—१६.

D. J. Press, Ajmer.
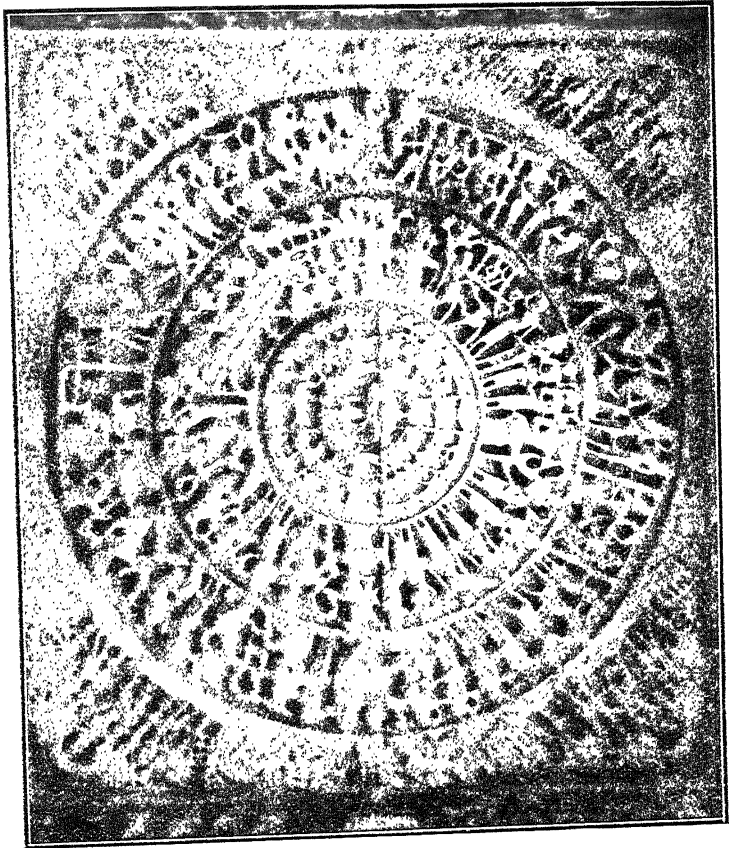
कबूतर के साथ तराजू में बैठ कर तोल कराने का दृश्य है, तथा साथ ही साथ १४ स्वप्नादि पंच कल्याणक का भी देहरी नं० ६ के गुम्बज के अनुसार दृश्य खुदा है। उसी गुम्बज के नीचे की चारों तरफ की लाइनों के बीच २ में भगवान् की

राजा ने उत्तर दिया कि—'तू डरना नहीं, मैं तेरी रक्षा करने को तत्पर हूँ।' इतने में वह बाज पक्षी आया और कहा कि—'हे राजन्! यह मेरा भक्ष्य है, मैं बहुत क्षुधार्त हूँ, भूख से मर रहा हूं, इसलिये इसको मुझे दो।' राजा ने उत्तर दिया—'तुझे चाहिये उतना अन्य खाद्य पदार्थ देने को तय्यार हूँ, तू इसको तो छोड़ दे।' उसने उत्तर दिया—'मैं मांसाहारी प्राणी हूँ। इसलिये इसी को खाना चाहता हूँ। फिर भी यदि आप दूसरा ही माँस देना चाहते हैं तो उसी के वजन प्रमाण (जितना) मनुष्य का माँस दीजिये।' राजा ने यह बात स्वीकार करली और तुरन्त तोलने का काँटा (तराजू) मंगवाया। एक पलड़े में कबूतर को रक्खा, दूसरे में मनुष्य का माँस रखने का था, परन्तु मनुष्य का माँस, मनुष्य की हिंसा किये बगैर नहीं मिल सकेगा, और मनुष्य की हिंसा करना महापाप है, ऐसा विचार उत्पन्न हुआ। राजा जीवदया का पोषक था और आज तो पौषधव्रत में था, इसलिये ऐसा विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक था। दूसरी ओर वह कबूतर को बचाने का वचन दे चुका था। इसलिये दुविधा में पड़ गया कि क्या करना चाहिये। अन्त में उसने अपने शरीर पर के मोह को सर्वथा हटाकर अपने हाथ से ही अपनी पिंडालियों–जांघों का माँस काटकर दूसरे पलड़े में रखने लगा। जैसे जैसे राजा मेघरथ पलड़े में माँस रखता है, वैसे ही वैसे वह देवाधिष्ठित कबूतर अपना वजन बढ़ाने लगा। इतना इतना माँस रखने पर भी तराजू के पलड़े बराबर नहीं होते हैं। यह देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। अन्त

एक २ मूर्त्ति खुदी हुई है, और इसके आस पास पूरी चारों पंक्तियों में श्रावक हाथ में पुष्पमाला, कलश, फल, चामर आदि पूजा का सामान लिये खड़े हैं।

(२०) १६ वीं देहरी के पहिले गुम्बज में भी उपर्युक्त अनुसार पंच कल्याणक का भाव है। जिन-माता सोते सोते १४ स्वप्न देखती है। जन्माभिषेक, दीक्षा का वर-घोड़ा, भगवान् का लोच करना और काउसग्ग ध्यान में

में राजा ने विचारा कि "मैंने इसके बचाने के लिये प्रतिज्ञा की है, मुझ को अपना वचन अवश्य पालना चाहिये और कैसे भी हो सके, शरणागत कबूतर को बचाना चाहिये। बस, ऐसा विचार करके राजा तुरन्त ही अपने शरीर का बलिदान देने के लिये पलड़े में बैठ गया। इस घटना से सारे नगर व राज दरबार में हाहाकार होगया। राजा जरा भी चलायमान नहीं हुआ और शांतिपूर्वक बाजपक्षी को कहने लगा कि—" मेरे शरीर के सारे माँस को खाकर तू अपनी क्षुधा को शान्त कर और इस कबूतर को छोड़ दे।"

सुरूपदेव समझ गया कि—यह राजा, सचमुच ही इन्द्र की प्रशंसा के योग्य ही है। सुरूप देव ने अपना असली रूप धारण करके राजा के कटे हुए अंगों को अच्छा किया। राजा पर पुष्पवृष्टि की। एवं स्तुति करके स्वस्थान की ओर चला गया। तब मेघरथ राजा का जय जयकार हुआ।

इस कथा को विस्तृत रूप से देखने की इच्छा रखने वालों को 'त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र' के ५ वें पर्व के चतुर्थ सर्ग को अथवा शान्तिनाथ भगवान् का कोई भी चरित्र देखना चाहिये।

खड़े रहने आदि की रचना है। पहिले वलय में एक सम-वसरण है, जिसमें भगवान् की एक मूर्त्ति है।

(२० Aए) १६ वीं देहरी के दूसरे गुम्बज के नीचे वाली गोल पंक्ति में बीच बीच में भगवान् की पांच मूर्त्तियाँ खुदी हैं। इन मूर्त्तियों के आसपास के थोड़े भाग के सिवाय सारी लाईन में चैत्यवंदन करते हुए श्रावक हाथों में कलश, फल, पुष्पमाला और चामरादि पूजा की सामग्री तथा नाना प्रकार के वाजिंत्र लेकर बैठे हैं।

(२० Bबी) २३वीं देहरी के पहिले गुम्बज में अंतिम गोल लाईन के नीचे उत्तर और दक्षिण की दोनों सीधी लाईनों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति खुदी हुई है। उन मूर्त्तियों के आसपास श्रावक पुष्पमालादि लेकर खड़े हैं। अवशेष भाग में नाटक और वाजिंत्रादि हैं।

(२१) २६ वीं देहरी के पहिले गुम्बज में श्री कृष्ण–कालिय अहि दमन का दृश्य है ‡। बीच के वलय

---

‡ जैन ग्रन्थानुसार कंस यादवकुल में उत्पन्न हुआ था और मथुरा नगरी के राजा उग्रसेन का पुत्र, मृत्तिकावती नगरी के देवक राजा का भतीजा, 'देवक' राजा की पुत्री देवकी का काका का लड़का भाई होने के कारण श्रीकृष्ण का मामा और तीन खंड भरतक्षेत्र (आधे हिन्दुस्थान) के स्वामी राजगृह नगर के राजा जरासंध प्रति वासुदेव का जमाई होता था। कंस अपने पिता उग्रसेन को कैद करके मथुरा का राजा

में नीचे कालिय नामक भयंकर सर्प फन फैला कर खड़ा है। श्रीकृष्ण ने उस सर्प के कंधे पर बैठ कर उसके मुँह में नाथ डाल कर यमुना नदी में उसका दमन किया। थक

हुआ था। कंस की श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के साथ बहुत मित्रता थी। इसी कारण से राजा 'वसुदेव', कंस के आग्रह से अधिकतर मथुरा में ही रहते थे। कंस ने अपने काका देवक राजा की पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव से कराया था। इसकी खुशी में कंस ने मथुरा में महोत्सव प्रारंभ किया। उस समय कंस के भाई अतिमुक्त कुमार, जो कि साधु होगये थे, कंस के वहां गोचरी (भिक्षा) के लिये पधारे। कंस की स्त्री जीवयशा उस समय मदिरा के नशे में थी। उसने उस मुनि की कदर्थना (आशातना) की। मुनि यह कह कर चल दिये कि—'जिस वसुदेव देवकी के विवाह के आनन्द में तू खुशी मना रही है, उसी का सप्तम गर्भ तेरे पति और पिता का बध करेगा।' यह सुनते ही जीवयशा के कान खुल गये, नशा उतर गया। उसने तुरंत ही कंस को इस बात की सूचना दी। कंस ने यह सुनकर अपनी पत्नि से कहा—"साधु का वचन कदापि मिथ्या नहीं हो सकता"। भयभीत कंस वसुदेव के पास गया और देवकी के सात गर्भों की याचना की। मुनि वचन से अज्ञात वसुदेव ने भोलपन से यह बात स्वीकार करली। देवकी ने भी, कंस अपना भाई होने के कारण, उपर्युक्त कथन पर बगैर विचारे ही स्वीकृति देदी। पश्चात् देवकी को जब कभी भी गर्भ रहता, तब कंस उसके मकान पर अपना चौकी पहरा नियुक्त करता था, और देवकी से उत्पन्न हुई सन्तान को स्वयं पत्थर पर पछाड़ कर मार डालता था। इस प्रकार उसने देवकी के छः पुत्रों के प्राणों का अपहरण किया। वसुदेव अत्यन्त दुःखी रहते थे। लेकिन प्रतिज्ञा पालक होने के कारण, वे अपने वचन का पालन
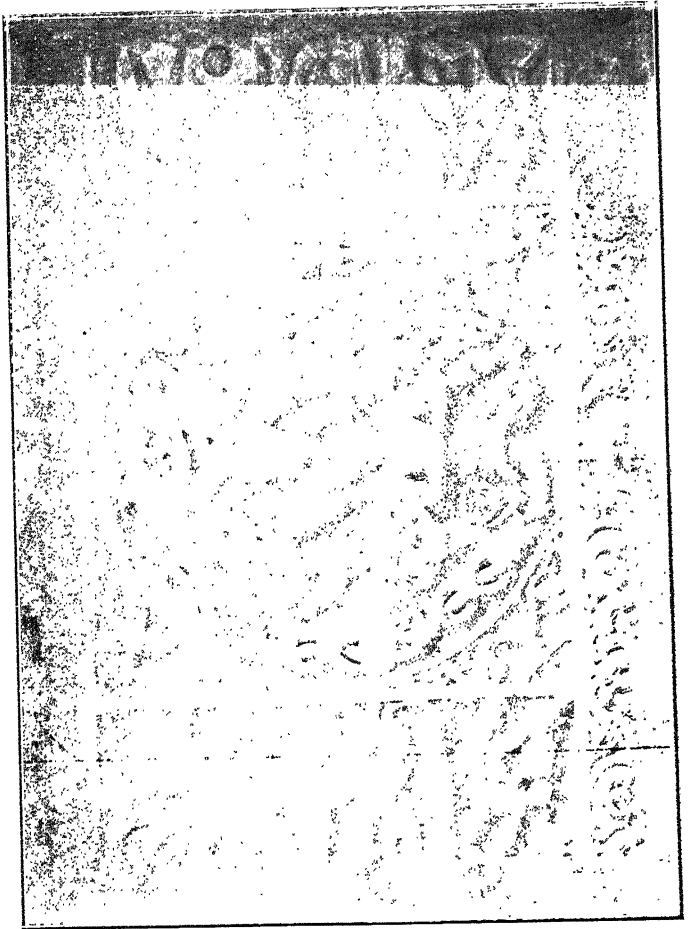
विमल-वसहि, दृश्य—२१.

श्रीकृष्ण-कालिय अहि दमन.

जाने से वह हाथ जोड़ कर खड़ा रहा है। उसके आस पास उसकी सात नागिनें हाथ जोड़ कर खड़ी हैं। बाजू

करते हुए उस दुख को सहन करते थे। सातवें गर्भ के जन्म के समय देवकी के आग्रह से वसुदेव नवजात शिशु (श्रीकृष्ण) को लेकर, रातों रात गोकुल में 'नंद' और उसकी स्त्री यशोदा के पास पुत्र के तौर पर छोड़ आये और यशोदा की पुत्री, जो उसी समय उत्पन्न हुई थी, उसको लाकर देवकी के पास छोड़ दिया। कंस ने देखा कि—इस गर्भ से तो कन्या उत्पन्न हुई है, वह मुझे कैसे मारेगी? ऐसा विचार करके कंस ने उस कन्या की एक तरफ की नासिका काट कर देवकी को वापिस देदी।

गौकुल में श्रीकृष्ण आनन्द से बढ़ रहे हैं। तथापि उसकी रक्षा के लिये वसुदेव ने अपने पुत्र राम (बलभद्र) को गोकुल में भेजा। वे दोनों भाई वहां पर आनन्द पूर्वक निवास करते हैं। योग्य अवस्था होते ही श्रीकृष्ण ने बलभद्र से धनुर्विद्या आदि समस्त विद्याओं का ज्ञान संपादन किया, इस प्रकार करीब बारह वर्ष व्यतीत हुए।

इसी अंतर में कंस ने किसी नैमित्तिक से पूछा कि—'मुनि के कथनानुसार देवकी का सातवां गर्भ मेरा बध करेगा क्या?' उसने उत्तर दिया 'मुनि का वचन अवश्य सिद्ध होगा' यह सुनकर कंस ने नैमित्तिक से पूछा 'मुझे ऐसे चिह्न दिखलाइए जिससे मैं अपने घातक को पहचान सकूं।' उसने कहा—"तुम्हारे उत्तम रत्न सदृश जातिवंत अरिष्ट बैल को, केशी अश्वको, गर्दभ को, मेष (बकरा) को, पद्मोत्तर तथा चंपक नामक दो हाथियों को और चाणूर नामक मल्ल को जो मारेगा तथा कालिय सर्प का जो दमन करेगा, वही तुमको मारेगा।"

कंस ने परीक्षा करने के लिये यथाक्रम बैल, घोड़ा, गर्दभ और मेष को गोकुल की ओर छूट कर दिये। वे मदोन्मत्त होने से गोकुल के गाय

के एक कोने में श्रीकृष्ण भगवान् पाताल लोक में शेष-
नाग की शय्या करके उस पर सो रहे हैं। श्री लक्ष्मी देवी

बछड़ों को पीड़ा पहुंचाने लगे। गवालों की फरियाद सुनकर श्रीकृष्ण ने
उन चारों पशुओं को यमद्वार में पहुंचा दिया। यह समाचार सुनने से
कंस को मालूम हुआ कि–मेरा बैरी नंद का पुत्र है, यह जानकर कृष्ण
को मारने के लिये कंस ने प्रपञ्च रचा। उसने सैन्यादि सामग्रियां तैयार
करके एक दरबार भरा, जिसका मुख्य हेतु मल्लयुद्ध था। इस दरबार में
अनेक राजा और राजकुमार आये। वसुदेव ने भी अपने समुद्रविजय आदि
समस्त भ्राताओं तथा पुत्र परिवार को भी इस प्रसंग पर बुलाया था।
गोकुल में बलभद्र को इस बात की खबर पड़ी। उसने इस प्रसंग को
एक अमूल्य अवसर जानकर 'अपने छः भाइयों को मारने वाला कंस
अपना शत्रु है' इत्यादि सारी बात कृष्ण को कही। यह सुनते ही श्रीकृष्ण
अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उसी समय दोनों भाई मथुरा की ओर चले। मार्ग
में यमुना नदी आने पर दोनों भाई–श्रीकृष्ण और बलभद्र उस
में स्नान करने के लिये कूदे। (महाभारतादि ग्रन्थों में लिखा है कि–श्रीकृष्ण
और बलभद्र अपने मित्रों सहित यमुना के किनारे गेंद-दंडा खेलते थे।
उनकी गेंद नदी में गिर गई। उसको निकालने के लिये श्रीकृष्ण यमुना
नदी में गिरे।) वहां कालिय नामक सर्प अपनी फण के ऊपर के मणि के
प्रकाश को श्रीकृष्ण पर डालकर कृष्ण को डराने लगा। श्रीकृष्ण, तुरंत
उसको पकड़ कर उसकी पीठ पर सवार होगये। पश्चात् उसके मुख में
हाथ डाला और कमलनाल से नाथ डालकर उसको 'यमुना' नदी में बैल
की भांति खूब फिराया। जिससे वह शक्तिहीन होगया और थककर
श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर खड़ा रह गया और आस पास में

पंखा डाल रही है। एक सेवक पैर दाब रहा है। इस रचना के पास ही श्री कृष्ण और चाणूर मल्ल का युद्ध दिखाया

उसकी सात नागनियाँ भी हाथ जोड़ खड़ी रहकर पतिभिक्षा मांगने लगीं, इससे कृष्ण ने उसको छोड़ दिया।

यहां से दोनों भाई मथुरा की ओर चले। मथुरा के प्रवेश द्वार पर कंस ने अपने पद्मोत्तर और चंपक नामक दोनों हाथी तैयार रक्खे थे और महावतों को आज्ञा दी थी कि—नंद के दोनों पुत्र आवें तो उन पर हाथियों को छोड़कर उन दोनों को मार डालना। जब ये दोनों भाई दरवाजे पर आये तो महावतों ने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया। दोनों हाथी मस्तक नवां कर दंत शूल से उनको मारना चाहते ही थे कि—श्रीकृष्ण और बलभद्र ने एक २ हाथी के दंतशूल निकाल लिये और मुष्टि प्रहार से उन दोनों को यमद्वार में पहुंचा दिये।

वहां से ये दोनों भाई मल्ल कुश्ती के दरबार में गये। दरबार में उच्चासन पर बैठे हुए किसी राजकुमार को उठाकर उनके आसन पर ये दोनों भाई बैठ गये। चाणूर और मुष्टिक नामक दो मल्लों ने मल्ल कुश्ती के लिये उन दोनों भाइयों को आह्वान किया। श्रीकृष्ण चाणूर के साथ व बलभद्र मुष्टिक के साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण और बलभद्र ने क्षणमात्र में ही चाणूर और मुष्टिक नामक दोनों मल्लों को मृत्यु के अधीन कर दिये। यह देख कंस अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि—इन दोनों भाइयों को मार डालो। यह सुनकर कृष्ण ने कंस को संबोधन करके कहा कि—'मेरे छः भाइयों को मारने वाला पापी! तेरे दो मल्ल रत्नों को मृत्यु के शरण किये, तो भी बेशरम! तू मुझे मारने की आज्ञा करता है? ले, पापी! मैं तुझे तेरे पाप का प्रायश्चित्त देता हूं. ऐसा कहकर एक छलांग मारकर, श्रीकृष्ण ने उसको चोटी से

गया है। दूसरी ओर श्रीकृष्ण वासुदेव व राम बलदेव और उनके साथी गेंद-दंडा खेल रहे हैं।

(२२-२३) ३४ वीं देहरी के पहिले गुम्बज के नीचे पूर्व दिशा की पंक्ति के मध्य में एक काउस्सग्गिया है, और द्वितीय गुम्बज के नीचे की चारों तरफ की पंक्तियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है। एवं उसके चारों ओर श्रावक पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं।

(२४-२५) ३५ वीं देहरी के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों ओर की कतारों के बीच २ में एक एक काउस्सग्गिया है। उनके आस पास लोग पूजा की सामग्री हाथ में लेकर खड़े हैं और दूसरे गुम्बज में १६ हाथ वाली देवी की सुंदर मूर्त्ति खुदी हुई है।

पकड़कर सिंहासन से घसीट कर नीचे गिरा कर मार डाला। कंस और जरासंध के सैनिक श्रीकृष्ण से लड़ने को आमादा हुए, लेकिन समुद्र-विजय ने उन सबको हटा दिया। समुद्रविजय वसुदेव आदि ने श्रीकृष्ण व बलभद्र को छाती से लगा लिया। सबकी अनुमति से कारागारस्थ राजा उग्रसेन को निकाल कर मथुरा के राज्य सिंहासन पर बैठाया और समुद्र-विजय, वसुदेव, बलदेव, वासुदेव आदि सब लोग शौरीपुर गये।

विशेष विवरण जानने के लिये 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' के पर्व ८ के सर्ग ५ को देखा जाय।

(२६-२७) देहरी नं० ३८ वीं के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों लाइनों के मध्य २ में भगवान की एक २ मूर्त्ति है। एक तरफ भगवान् की मूर्त्ति के दोनों ओर दो काउस्सग्गिये हैं। प्रत्येक भगवान् के आस पास श्रावक पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। इसके दूसरे गुम्बज में देव-देवियों की सुंदर मूर्त्तियां खुदी हैं।

(२८) देहरी नं० ३९ वीं के दूसरे गुम्बज में देवियों की मनोहर मूर्त्तियां बनी हैं। इन में हँसवाहनी सरस्वती देवी तथा गजवाहनी लक्ष्मी देवी की मूर्त्तियां मालूम होती हैं।

(२९) देहरी नं० ४० वीं के द्वितीय गुम्बज के मध्य में लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति है। उसके आसपास दूसरे देव-देवियों की मूर्त्तियां हैं। गुम्बज के नीचे चारों तरफ की कतारों के बीच २ में एक २ काउस्सग्गिया है। प्रत्येक काउस्सग्गिया के आस पास हँस अथवा मयूर पर बैठे हुए विद्याधर अथवा देव के हाथ में कलश या फल हैं। घोड़े पर बैठे हुए मनुष्य या देव के हाथ में चामर हैं।

(३०) देहरी नं० ४२ वीं के दूसरे गुम्बज के नीचे दोनों तरफ हाथियों के अभिषेक सहित लक्ष्मी देवी की सुंदर मूर्त्तियां खुदी हुई हैं।

(३१-३२-३३) देहरी नं० ४३, ४४ व ४५ वीं के दूसरे २ गुम्बजों में १६ हाथ वाली देवी की सुंदर एक २ मूर्त्ति खुदी हुई है।

(३४) देहरी नं० ४५ वीं के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों पंक्तियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है। पूर्व दिशा की श्रेणी में भगवान् के दोनों ओर एक २ काउस्सग्गिया है और प्रत्येक भगवान् के दोनों तरफ हँस तथा घोड़े पर बैठे हुए देव या मनुष्य के हाथ में फल अथवा कलश और चामर हैं।

(३५-३६) देहरी नं० ४६ के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों तरफ की श्रेणियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है, एवं उत्तर दिशा की पंक्ति में भगवान् के दोनों तरफ काउस्सग्गिये हैं, और प्रत्येक भगवान् के आस पास श्रावक पुष्पमाल हाथ में लेकर खड़े हैं। इसी देहरी के दूसरे गुम्बज में श्रीकृष्ण भगवान् ने नरसिंह अव-तार धारण करके हिरण्यकश्यप का बध किया था, उसका हूबहू चित्र आलेखित किया है।[1]

---

१ महाभारत में लिखा है कि—"हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने अति तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न कर वरदान मांगा था।" (हिन्दु धर्म के अन्य ग्रन्थों में ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि—हिरण्यकशिपु, शिवजी
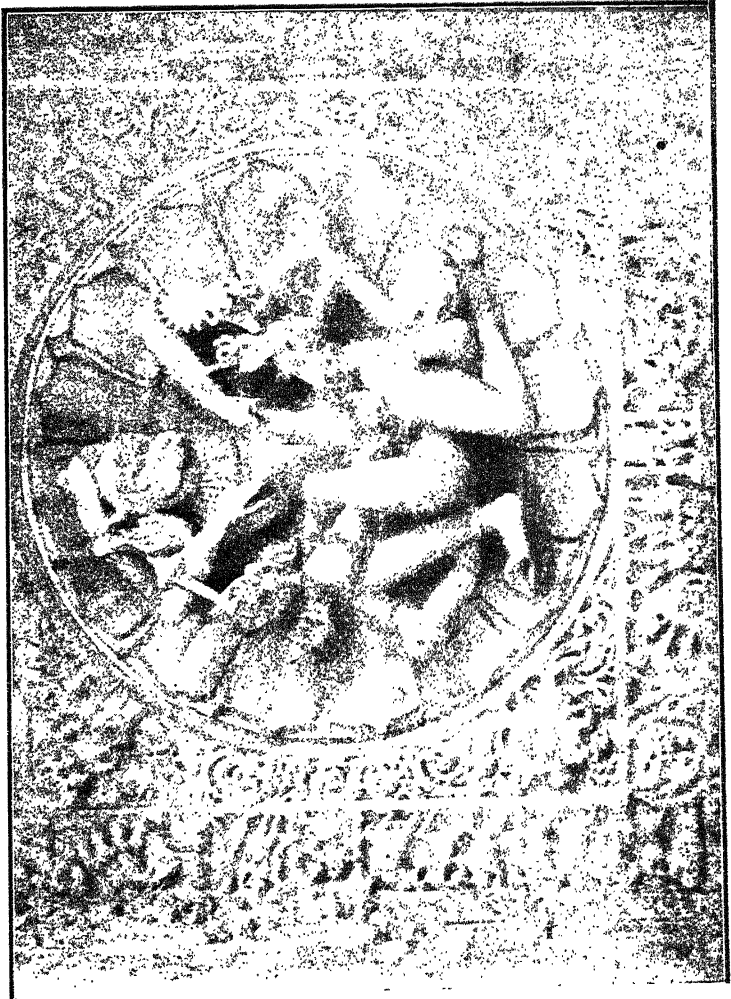
विमल-वसही, श्री कृष्ण—नरसिंहावतार, दृश्य-२६.

आबू

विमल-वसही, दृश्य-२७.

D. J. Press, Ajmer.

(३७) देहरी नं० ४७ वीं के प्रथम गुम्बज में ५६-दिग्कुमारियों—देवियों के किये हुए भगवान के जन्माभि-षेक का भाव है। प्रथम वलय में भगवान् की मूर्त्ति है। द्वितीय एवं तृतीय वलय में देवियाँ कलश, धूपदान, पंखा, दर्पणादि सामग्री हाथ में लेकर खड़ी हैं। तृतीय वलय में यह दिखलाया गया है कि—भगवान् की माता को अथवा

का भक्त था, इसलिये शिवजी से उसने वरदान प्राप्त किया था।) उसने यह वरदान मांगा था कि—'तुम्हारे निर्माण किये हुए किसी भी प्राणि से मेरी मृत्यु न हो। अर्थात् देव, दानव, मनुष्य, पशु आदि से मेरी मृत्यु न हो। मकान के बाहर व अंदर न हो। दिन में व रात में न हो। शस्त्र से व अस्त्र से न हो। पृथ्वी में न हो आकाश में न हो। प्राण रहित से न हो प्राण सहित से न हो।' इत्यादि। इस प्रकार वरदान देने की ब्रह्माजी की इच्छा नहीं थी, परन्तु दैत्य के आग्रह व तपस्या से वश होकर ब्रह्माजी ने वरदान दिया।

हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद नामक पुत्र विष्णु का भक्त हुआ। सारे दिन विष्णु के नाम की माला जपा करता था। उसके पिता ने शिव भक्त होने के लिये बहुत समझाया, परन्तु अनेकों प्रयत्न करने पर भी वह न माना। इसलिये हिरण्यकश्यप उसको खूब सताने लगा। विष्णु भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद को दुखी देखकर हिरण्यकश्यप को मारने के लिये नरसिंह अवतार धारण किया। ब्रह्माजी के वरदान में किसी प्रकार की स्खलना न आवे, इसलिये ऐसा विचित्र रूप धारण किया, जिसका आधा भाग तो मनुष्य का और मुखादि आधा शरीर सिंह का था। इस प्रकार का नरसिंह अवतार धारण कर विष्णु भगवान ने मकान के अंदर भी नहीं और

भगवान् को सिंहासन पर बैठा कर देवियाँ मर्दन कर रही हैं और दूसरी ओर सिंहासन में बैठा कर स्नान कराती हैं। इस गुम्बज के नीचे चारों ओर की श्रेणियों के बीच २ में एक एक काउस्सग्गिया है। पूर्व दिशा की पंक्ति में दोनों ओर दो काउस्सग्गिये अधिक हैं। कुल छः काउस्सग्गिये हैं और आस पास में कई लोग पुष्पमाला लेकर खड़े हैं।

(३८) देहरी नं० ४८ वीं के दूसरे गुम्बज में बीस खंड में सुन्दर नक्शी काम है। उन खंडों में के एक खंड में भगवान् की मूर्ति है। एक खंड में एक आचार्य्य महाराज पाटे पर पैर रख कर सिंहासन पर बैठे हैं। उन्होंने अपना एक हाथ, एक शिष्य जो कि पञ्चाङ्ग नमस्कार कर रहा

बाहर भी नहीं, अर्थात् दरवाजे की देहली में; खड़े रह कर; पृथ्वी पर नहीं और आकाश में नहीं, अर्थात् स्वयं पृथ्वी पर खड़े रह कर और हिरण्यकश्यप को अपने दोनों पैरों के बीच में दबा कर; शस्त्र से नहीं और अस्त्र से नहीं एवं सजीव से नहीं और निर्जीव से नहीं, अर्थात् अपने नाखूनों के द्वारा; दिन में नहीं और रात में नहीं, अर्थात् संध्या समय में मार डाला।

विष्णु भगवान् जिस समय नरसिंह अवतार में थे, उस समय वे देव, दानव, मनुष्य और पशु कोई भी नहीं थे। और उस नरसिंह रूप के उत्पादक ब्रह्माजी भी नहीं थे। इसलिये वे अस्खलित रीति से हिरण्यकशिपु को मार सके। इस अवस्था की उत्तम शिल्प कला से युक्त मूर्त्ति खुदी हुई है।

है, उसके सिर पर रक्खा है। दो शिष्य हाथ जोड़ कर पास में खड़े हैं। दूसरे खंडों में जुदी जुदी तर्ज की खुदाई है। गुम्बज के नीचे की एक तरफ की लाइन के मध्य भाग में एक काउस्सग्गिया है।

(३६) देहरी नं० ४६ के प्रथम गुम्बज में भी उपर्युक्तानुसार बीस खंडों में खुदाई है। एक खंड में भगवान् की मूर्त्ति है। एक खंड में काउस्सग्गिया है। एक खंड में देहरी नं० ४८ की तरह आचार्य्य महाराज की मूर्त्ति है। एक खंड में भगवान् की माता, भगवान् को गोद में लेकर बैठी है। शेष खंडो में भिन्न २ तर्ज की खुदाई है।

(४०) देहरी नं० ५३ के पहिले गुम्बज के नीचे की गोल लाइन में एक ओर भगवान् काउस्सग्ग ध्यान में स्थित हैं। उनके आस पास श्रावक खड़े हैं। दूसरी ओर आचार्य्य महाराज बैठे हैं, उनके पास में ठवणी (स्थापनाचार्य्य) है और श्रावक हाथ जोड़ कर पास में खड़े हुए हैं।

(४१) देहरी नं० ५४ के पहिले गुम्बज के नीचे वाली हाथियों की गोल लाइन के बाद उत्तर दिशा की लाइन के एक भाग में एक काउस्सग्गिया है, उसके आस पास श्रावक हाथ में कलश-पुष्पमाल आदि पूजा सामग्री लेकर खड़े हैं।

(४२) इस मंदिर के मूल गम्भारे के पीछे (बाहर की ओर) तीनों दिशा के प्रत्येक ताकों (आलों) में भगवान् की एक एक मूर्त्ति स्थापित है और प्रत्येक ताक के ऊपर भगवान् की तीन तीन मूर्त्तियां व छः छः काउस्सग्गिये हैं। तीनों दिशाओं में कुल २७ मूर्त्तियाँ पत्थर में खुदी हुई हैं।

विमल-वसहि की भमति (प्रदक्षिणा) में देहरियाँ ५२, ऋषभदेव भगवान् (मुनिसुव्रत स्वामी) का गम्भारा १ और अंबिकादेवी की देहरी १—इस प्रकार कुल ५४ देहरियां हैं। दो खाली कोठड़ियां हैं। जिसमें परचुरण सामान रक्खा जाता है। एक कोठड़ी में तलघर बना है। [1] जो आजकल बिलकुल खाली है। इसके अतिरिक्त विमल-वसही और लूण-वसहि में अन्य ३-४ तलघर हैं। परन्तु वे सब आजकल खाली हों, ऐसा मालूम होता है।

---

१ इस कोठरी में और तलघर की सीढियों पर बहुत कचरा कूड़ा पड़ा था, इसको साफ कराकर हम लोग अंदर गये थे। देखने से एक खड्डे में दबी हुई धातु की ११ प्रतिमाएं मिलीं। जिसमें एक मूर्त्ति अंबिका देवी की थी और शेष मूर्त्तियां भगवान् की थीं। वे लगभग ४०० से ६०० वर्ष की पुरानी मूर्त्तियां थीं। कई मूर्त्तियों पर लेख हैं। इस तलघर में संगमरमर की बड़ी खंडित मूर्त्तियों के थोड़े टुकड़े पड़े हैं।

विमल-वसहि में गूढ़ मंडप, नव चौकी, रंग मंडप और समस्त देहरियों के दो दो गुम्बजों का एक २ मण्डप गिनने से सारे मन्दिर में ७२ मण्डप होते हैं और गूढ़ मण्डप, नव चौकी, गूढ़ मण्डप के बाहर की दोनों तरफ की दो चौकियां, रंग मण्डप, प्रत्येक देहरी के दो २ मंडप और दो देहरियों के नये मण्डप वगैरा मिलाकर कुल ११७ मंडप होते हैं।

विमल-वसहि में संगमरमर के कुल १२१ स्थंभ हैं। उनमें से ३० अत्यन्त रमणीय नकशी वाले और बाकी के थोड़ी नकशी वाले हैं। इस मंदिर की लम्बाई १४० फीट और चौड़ाई ९० फीट है।

विमल-वसहि की हस्तिशाला

यह हस्ति-शाला विमल-वसहि मंदिर के मुख्य द्वार के सामने बनी हुई है। विमल मंत्री के बड़े भाई मंत्री नेढ, उनके पुत्र मंत्री धवल, उनके पुत्र मंत्री आनंद और आनंद के पुत्र मंत्री पृथ्वीपाल[1] ने विमल-वसहि की कतिपय देहरियों का जीर्णोद्धार कराने के समय स्वकीय कुटुम्ब के स्मरणार्थ सं० १२०४ में यह हस्ति-शाला बनाई है।

हस्तिशाला के पश्चिम द्वार में प्रवेश करते ही विमल-वसहि के मूलनायक भगवान् के सम्मुख एक बड़े घोड़े पर मंत्री विमल शाह बैठे हैं। उनके मस्तक पर मुकट है। दाहिने हाथ में कटोरी-रकाबी आदि पूजा का सामान है और बाँए हाथ में घोड़े की लगाम है। विमल मंत्री की घोड़े सहित मूर्त्ति पहिले सफेद संगमरमर की बनी थी, किन्तु आजकल तो मात्र मस्तक का भाग ही असली-संगमरमर का है। गले से

१—पृथ्वीपाल आदि के लिये देखिये इस पुस्तक का पिछला पृष्ठ ३५ से ३८।

नीचे का भाग और घोड़ा नकली मालूम होता है। अर्थात् या तो किसी ने इस मूर्त्ति को खंडित कर दी हो, जिससे फिर नई बनवा कर खड़ी की हो; या अन्य किसी हेतु से उस पर चूने का पलस्तर कर दिया हो, ऐसा मालूम होता है। मुखाकृति सुंदर है। घोड़े के पीछे के भाग में एक आदमी, पत्थर का सुदृढ़ छत्र विमल शाह के मस्तक पर धारण किये हुए खड़ा है।[1]

इसके पीछे तीन गढ की रचना वाला सुंदर समवसरण है। उसमें चौमुखजी के तौर पर तीन तरफ सादे परिकर वाली और एक तरफ तीनतीर्थी के परिकर वाली ऐसे कुल चार मूर्त्तियां हैं। यह समवसरण सं० १२१२ में कोरंटगच्छीय नन्नाचार्य संतान के ओसवाल धांधुक मंत्री ने बनवाया, ऐसा उस पर लेख है।

एक तरफ कोने में लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति है।

१—दन्तकथा है कि—छत्रधारक व्यक्ति विमल मंत्री का भानेज है। परन्तु इस कथन की पुष्टि करने वाला प्रमाण किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हुआ है। हीरविजयसूरि रास में लिखा है कि—छत्रधारक व्यक्ति विमल का भतीजा है। इससे अनुमान किया जाता है कि—शायद यह विमल के ज्येष्ठ भ्राता नेढ़ का दशरथ नामक पुत्र हो।

इस हस्तिशाला के भीतर तीन लाईनों में संगमरमर के सुंदर कारीगरी युक्त झूल, पालकी और अनेक प्रकार के आभूषणों की नक्काशी से सुशोभित १० हाथी हैं; इन सब पर एक २ सेठ तथा महावत बैठे थे। परन्तु इस समय इन में के दो हाथियों पर सेठ और महावत दोनों बैठे हैं। एक हाथी पर सेठ अकेला बैठा है। तीन हाथियों पर मात्र महावत ही बैठे हैं। शेष चार हाथी बिलकुल खाली हैं। उन हाथियों पर से ७ सेठों (श्रावकों) की और ५ महावतों की मूर्त्तियां नष्ट हो गई हैं। श्रावकों के हाथ में[1] पूजा की सामग्री है। श्रावकों के सिर पर मुकुट, पगड़ी अथवा अन्य ऐसा ही कोई आभूषण है।

प्रत्येक हाथी के होदे के पीछे छत्रधर अथवा चामर-धर की दो दो खड़ी मूर्त्तियां थीं, किन्तु वे सब खंडित हो गई हैं। उनके पाद चिह्न कहीं कहीं रह गये हैं।

मात्र एक ठक्कुर जगदेव के हाथी पर पालकी (होदा) नहीं थी और उसके पीछे उपर्युक्त दो मूर्त्तियां भी नहीं

१—हाथियों पर बैठे हुए श्रावकों की मूर्त्तियां चार चार भुजाओं वाली हैं। मेरी कल्पनानुसार चार चार भुजाएँ, हाथ में भिन्न भिन्न पूजा की सामग्री दिखलाने के हेतु से बनवाई गई होंगी। दूसरा कोई कारण नहीं होगा। क्योंकि—वे मूर्त्तियां मनुष्यों की अर्थात् विमलशाह के कुटुम्बियों की ही हैं।

थीं। सिर्फ भूल पर ही ठ० जगदेव की मूर्त्ति बैठाई गई थी (इसका कारण यह मालूम होता है कि—वे महा मंत्री नहीं थे)। इस हाथी की सूंड के नीचे घुड़सवार की एक खंडित छोटी मूर्त्ति खुदी हुई है।

इन हाथियों की रचना इस क्रम से है:—

हस्तिशाला में प्रवेश करते दाहिनी तरफ के क्रम से पहिले तीन हाथी, बांई ओर के क्रम से तीन हाथी और सातवां समवसरण के पीछे का पहिला एक हाथी, इन सात हाथियों को मंत्री पृथ्वीपाल ने वि० सं० १२०४ में बनवाया था। आठवां दाहिने हाथ की तरफ का अन्तिम, नववां समवसरण के पीछे का आखिरी और दसवां वाम हाथ की तरफ का अंतिम, ये तीन हाथी मंत्री पृथ्वीपाल के पुत्र मंत्री धनपाल ने वि० सं० १२३७ में बनवा कर स्थापित किये।

ये हाथी निम्न लिखित नामों से बनवाये गये हैं:—

हाथी का क्रम	किसके लिये बना	संवत्	परिचय
पहला	महामंत्री नीना	१२०४	(विमल मंत्री के कुल वृद्ध)
दूसरा	,, लहर	,,	(नीना का पुत्र)

हाथी का क्रम	किसके लिये बना	संवत्	परिचय
तीसरा	महामंत्री वीर	१२०४	(लहर का वंशज)
चौथा	,, नेढ	,,	(वीर का पुत्र और विमल का बड़ा भाई)
पांचवां	,, धवल	,,	(नेढ का पुत्र)
छठा	,, आनंद	,,	(धवल का पुत्र)
सातवां	,, पृथ्वी-पाल	,,	(आनंद का पुत्र)
आठवां	(पउंतार ?) जगदेव	१२३७	(मंत्री पृथ्वीपाल का बड़ा पुत्र और धनपाल का बड़ा भाई)
नववां	महामंत्री धन-पाल	,,	(पृथ्वीपाल का छोटा पुत्र और जगदेव का छोटा भाई)
दसवां	....	....	इस हाथी की लेख वाली पट्टी खंडित हो जाने से लेख नष्ट हो गया है। परन्तु यह हाथी भी सं० १२३७ में मंत्री धनपाल ने उसके छोटे भाई, पुत्र अथवा अन्य किसी निकट के सम्बन्धी के नाम से बनवाया होगा।
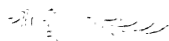
(१) हस्तिशाला की पूर्व दिशा के तरफ की खिड़की के बाहर की चौकी के दो स्थंभों पर भगवान् की १६ मूर्त्तियां बनी हुई हैं (एक २ स्थंभ में आठ २ मूर्त्तियां हैं)। इन स्थंभों के ऊपर के पत्थर के तोरण में रास्ते की तरफ (बाहरी तरफ) भगवान् की ७६ मूर्त्तियां बनी हुई हैं। इन ७६ के साथ दोनों स्थंभों की १६ मूर्त्तियां मिलाने पर कुल ९२ मूर्त्तियां हुईं। इनमें की ७२ मूर्त्तियां अतीत अनागत व वर्त्तमान चौबीसी की और अवशिष्ट बीस मूर्त्तियां, बीस विहरमान भगवान की होंगी, ऐसा प्रतीत होता है। इसी तोरण में अंदर के भाग में (हस्ति-शाला की तरफ) भगवान् की ७० मूर्त्तियां खुदी हैं। किन्तु असल में ७२ होंगी। संभव है दो मूर्त्तियां दीवाल में दब गई हों। अर्थात् यह तीन चौबीसी हैं, ऐसा समझना चाहिये।

(२) उपर्युक्त चौकी के छज्जे के ऊपर के पत्थर वाले तोरण में दोनों तरफ भगवान् की मूर्त्तियां व काउस्सग्गिये मिलकर एक चौबीसी बनी है।

(३) सारी हस्तिशाला के बाहर के चारों तरफ के छज्जे के ऊपर की पंक्ति में, भगवान् की मूर्त्ति व काउस्सग्गिये मिला कर एक चौबीसी बनी है।

विमल-वसही मन्दिर के मुख्य द्वार और हस्तिशाला के बीच में एक बड़ा सभा मंडप है, उसका निर्माण काल

और निर्माता के विषय में कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं हुई। यह सभा मंडप हस्तिशाला के साथ तो नहीं बना है, क्योंकि–हीर सौभाग्य महाकाव्य से ज्ञात होता है कि–वि. सं. १६३९ में जगत्पूज्य श्रीमान् हीरविजय सूरीश्वर जी यहां पर यात्रा करने को पधारे, उस समय विमल वसहि के मुख्य द्वार में प्रवेश करते हुए जङ्गले वाली सीढ़ी थी। परन्तु उपर्युक्त सभा मंडप नहीं था। उक्त महाकाव्य में मंदिर के अन्य विभागों के वर्णन के साथ ही साथ उपर्युक्त सीढ़ी का भी वर्णन है किन्तु इस सभा मंडप का वर्णन नहीं है। इससे यह मालूम होता है कि—इस सभा मंडप की रचना वि. सं. १६३९ के बाद हुई है।

हस्तिशाला के बाहर के उपर्युक्त सभामंडप में सुरभी (सुरही)–बछड़े सहित गायों के चित्र व शिलालेख वाले तीन पत्थर विद्यमान हैं। उनमें से दो पत्थरों पर वि. सं. १३७२ और एक के ऊपर १३७३ का लेख है। ये तीनों लेख सिरोही के वर्त्तमान महाराव के पूर्वज चौहाण महाराव लुंभाजी (लूंढाजी) के हैं। इनमें 'विमल-वसही व लूण-वसही मंदिरों, उनके पूजारियों व यात्रालुओं से किसी भी प्रकार का टेक्स-कर न लिया जाय' इस आशय के फर्मान लिखे हैं।

इसी रंग (सभा) मंडप के एक स्थंभ के पीछे पत्थर के एक छोटे स्थंभ में इस प्रकार का दृश्य बना है:—

एक तरफ एक पुरुष घोड़े पर बैठा है, एक छत्रधर उस पर छत्र धर रहा है। इस दृश्य के दूसरी तरफ वही मनुष्य हाथ जोड़ कर खड़ा है, इन पर छत्र रखकर एक छत्रधर खड़ा है। पास में स्त्री तथा पुत्र खड़े हैं। उसके नीचे संवत् रहित लेख खुदा है, जिसमें बारहवीं शताब्दि के सुप्रसिद्ध राज्यमान्य श्रावक श्रीपाल कवि के भाई शोभित का वर्णन है।

इस स्थंभ के पास ही दीवाल के नजदीक संगमरमर के एक मूर्त्तिपट्ट[1] में भगवान् के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए श्रावक-श्राविका की दो मूर्त्तियाँ बनी हैं। राज्य-मान्य सुप्रसिद्ध महामंत्री कवडि नामक श्रावक ने ये दोनों मूर्त्तियाँ अपने माता-पिता ठ० आमपसा तथा ठ० सीता देवी की बनवा कर आचार्य श्री धर्मघोषसूरिजी के पास उसकी प्रतिष्ठा कराई है। उसके नीचे वि० सं० १२२६ अक्षय तृतीया का लेख है।

---

१ यह मूर्त्तिपट्ट, खण्डित पत्थरों के गोदाम में पड़ा था। हमारी सूचना पर ध्यान देकर यहां के कार्य-वाहकों ने इस मूर्त्तिपट्ट को इस जगह स्थापित कराया। मालुम होता है कि—यह मूर्त्तिपट्ट कुछ वर्षों पहिले विमल-वसहि के श्री ऋषभदेव (श्री मुनिसुव्रत) स्वामि के गम्भारे में था। इसकी मरम्मत होनी चाहिये।

श्री महावीर स्वामी का मन्दिर

विमलवसहि के बाहर हस्तिशाला के पास श्री महावीर स्वामि का मंदिर है। यह मंदिर और हस्तिशाला के निकट का बड़ा सभा मंडप किसने और कब बनवाया ? यह ज्ञात नहीं हुआ। परन्तु इन दोनों की दीवारों पर वि० सं० १८२१ में यहाँ के मंदिरों में काम करने वाले कारीगरों के नाम, लाल रंग से लिखे हुये हैं। इस से ज्ञात होता है कि-ये दोनों स्थान सं० १८२१ से पहिले और सं० १६३६ के बाद बने हैं। क्योंकि-**श्रीहीर सौभाग्य महा काव्य** में इन दोनों का वर्णन नहीं है। श्री महावीर स्वामि के मंदिर में मूलनायकजी सहित १० जिन बिंब यह मंदिर छोटा और सादा है।

मंत्री वस्तुपाल–तेजपाल के पूर्वज—गुजरात की राजधानी अणहिलपुर पाटण में बारहवीं शताब्दि में प्राग्वाट (पोरवाल) ज्ञाति के आभूषण समान चण्डप नामक एक गृहस्थ, जिसकी पत्नी का नाम चांपलदेवी था, रहता था। वह गुजरात के चौलुक्य (सौलंकी) राजा का मंत्री था। राज्यकार्य में अत्यन्त चतुर होने के साथ ही प्रजावत्सल एवं धर्म कार्य में भी तत्पर था। उसका चंडप्रसाद नामक पुत्र था, जो अपने पिता का अनुगामी और सौलंकी राजा का मंत्री था। उसकी स्त्री का नाम चांपलदेवी (जयश्री) था। इसके दो लड़के थे, जिसमें बड़े का नाम शूर (सूर) और छोटे का नाम सोम (सोमसिंह) था। दोनों बुद्धिशाली, शूरवीर और धर्मात्मा थे। दूसरा जैनधर्म में अत्यन्त दृढ़ था और गुजरात के सोलंकी महाराजा सिद्धराज जयसिंह का मंत्री था। इसने यावज्जीवन देवों में तीर्थंकरदेव, गुरुओं

में नागेन्द्र गच्छ के श्रीमान् हरिभद्र सूरि तथा स्वामीस्वरूप महाराजा सिद्धराज को स्वीकार किया था। इसकी धर्मपत्नी का नाम सीतादेवी था, जो महासती सीता के जैसी पतिव्रता और धर्मकर्म में अत्यन्त निश्चल थी। सोमसिंह का आसराज (अश्वराज) नामक पुत्र था; जो बुद्धि-शाली, उदार और दाता था। परम मातृभक्त ही नहीं था; बल्कि जैनधर्म का कट्टर अनुयायी भी था। मातृभक्ति को उसने अपना जीवन ध्येय बना लिया था। उसने महा महोत्सवपूर्वक सात बार अथवा सात तीर्थों की यात्रा की थी। उसकी कुमारदेवी नामकी पतिव्रता भार्या थी। यह भी अपने पति के समान ही उदार व जैनधर्मानुयायिनी थी। कुछ समय के बाद आसराज किसी हेतु से अपने कुटुम्बी जन और राजा आदि की अनुमति लेकर अण-हिलपुर पाटन के समीपवर्ती सुंहालक नामक गांव में अपने पुत्र कलत्र के साथ सुखपूर्वक रह कर व्यापारादि कार्य करने लगा। वहां आसराज को कुमारदेवा की कुक्षि से लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल और तेजपाल नामक चार पुत्र तथा जाल्हू, माऊ, साऊ, धनदेवी, सोहगा, वयजु और परमलदेवी नामक सात पुत्रियाँ हुईं। ये

लूण-वसही की हस्तिशाला में,
महा मन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल के माता-पिता

D. J. Press, Ajmer.

सातों बहिनें, स्थूलिभद्र स्वामी की सात बहिनों की तरह बुद्धिशालिनी और धर्म कार्य में रत ऐसी श्राविकाएँ थीं।

मंत्री लूणिग राज्य कार्य पटु, शूरवीर व तेजस्वी युवक था। किन्तु आयुष्य कम होने के कारण युवावस्था के आरम्भ में ही वह काल कवलित हो गया। उसकी पत्नी का नाम लूणादेवी था। मंत्री मल्लदेव भी राज्य कार्य में निपुण, महाजन शिरोमणि और धार्मिक कार्यों में तत्पर रहने वाले लोगों में मुख्य था। उसके लीलादेवी और प्रतापदेवी नामक दो धर्मपत्नियाँ थीं। मल्लदेव लीलादेवी का पूर्णसिंह नामक पुत्र था। इसकी पहिली भार्या का नाम अल्हणादेवी था। पूर्णसिंह-अल्हणादेवी के पुत्र का नाम पेथड़ था। पेथड़ इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय विद्यमान था। पूर्णसिंह की दूसरी स्त्री का नाम महणादेवी था। पूर्णसिंह के दो बहिनें थीं, सहजलदे और सदमलदे; और वलालदे नामकी एक पुत्री भी थी।

महामात्य श्री वस्तुपाल-तेजपाल—महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल; शूरवीरता, धार्मिक कार्य परायणता, राज्यकार्य दक्षता, प्रजावत्सलता, सर्व धर्म पर समान दृष्टिता, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता और उदारता आदि अपने गुणों

से आबाल-वृद्ध में प्रसिद्ध हैं। अतः उनके विषय में विवेचन करना, सिर्फ पिष्टपेषण ही करना है। इसलिये उनके गुणों का वर्णन न करके, मात्र उनके कुटुंबादि का परिचय संक्षेप में कराया जाता है।

मंत्री वस्तुपाल राज्य कार्य में हमेशा तत्पर रहने पर भी अपूर्व विद्वान् थे। उनके समकालीन कवि उनका परिचय 'सरस्वती देवी के धर्मपुत्र' इस प्रकार कराते हैं। क्योंकि-उनके घर में सरस्वती व लक्ष्मी दोनों का निवास था। ऐसा अन्य स्थानों में बहुत ही कम दिखाई देता है।

मंत्री वस्तुपाल के ललितादेवी और वेजलदेवी नाम की दो धर्मपत्नियाँ थीं। ललितादेवी गुण भण्डार और बुद्धिमती होगी, ऐसा मालूम होता है। क्योंकि-मंत्री वस्तुपाल, उसका बहुत आदर-सम्मान करते थे और घर के खास खास कामों में उसकी सलाह लिया करते थे। ललितादेवी की कुक्षि से उत्पन्न जयन्तसिंह (जैत्र-सिंह) नामक वस्तुपाल का पुत्र था। जो सूर्यपुत्र जयन्त से किसी प्रकार कम न था। वह भी अपने पिता के साथ व स्वतंत्र रीत्या राज्य कार्य में दिलचस्पी लिया करता था। उसके जयतल्लदेवी, जम्हणादेवी और रूपादेवी नामक तीन स्त्रियां थीं।

लूण-वसहि की हस्तिशाला में,

महा मन्त्री वस्तुपाल और उनकी दोनों स्त्रियां

D. J. Press, Ajmer.

लूण-वसहि मंदिर के निर्माता
महामन्त्री तेजपाल और उनकी पत्नी अनुपम देवी

D. J. Press, Ajmer.

महामात्य तेजपाल की दो पत्नियाँ—अनुपमदेवी और सुहडादेवी—थीं। अनुपमदेवी की कुक्षिसे महा प्रतापी, बुद्धिशाली, शूरवीर और उदार दिल लूणसिंह (लावण्यसिंह) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह राज्य कार्य में भी निपुण था। पिता के साथ व स्वयं अकेला भी युद्ध, संधि, विग्रहादि कार्यों में भाग लेता था। इसके रयणादेवी और लखमादेवी नामक दो स्त्रियाँ व गउर-देवा नामक एक पुत्री थी। (तेजपाल के) सुहडादेवी की कूख से सुहडसिंह नामक एक दूसरा पुत्र हुआ था। उसके सुहड़ादेवी और सुलखणादेवी ये दो स्त्रियाँ थीं। मन्त्री तेजपाल को बउलदे नामक एक पुत्री भी थी।

मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल अपने पिताकी विद्यमानता में अपनी जन्मभूमि सुंहालक में ही रहे, परन्तु पिताजी का स्वर्गवास होने के बाद दिल नहीं लगने से, गुजरात के मंडलि (मांडल) गांव में सकुटुम्ब रहने लगे। काल-क्रमानुसार उनकी माता भी पंचत्व को प्राप्त हुई। मातृ वियोग का शोक दोनों भाईयों के लिये असाधारण था। उस समय, वस्तुपाल-तेजपाल के मातृपक्ष के गुरु मलधार गच्छीय श्री नरचन्द्रसूरीश्वर विचरते विचरते मंडलि गांव में पधारे। उन्होंने उपदेश द्वारा कर्म स्वरूप समझा

कर दोनों भाईयों का शोक दूर कराया और तीर्थयात्रादि धर्म कार्य में तत्पर रहने के लिये प्रेरणा की।

नागेन्द्र गच्छीय श्री आनन्दसूरि-अमरसूरि के पट्टधर श्रीमान् हरिभद्रसूरि के शिष्य श्री विजयसेनसूरि, जो वस्तुपाल-तेजपाल के पितृपक्ष के गुरु थे, उनके उपदेश से उन दोनों भाईयों ने शत्रुंजय तथा गिरिनार तीर्थ का ठाठ बाठ से बड़ा भारी संघ निकाला और संघपति होकर दोनों तीर्थों की शुद्ध भाव पूर्वक यात्रा की।

चौलुक्य (सोलंकी) राजा—गुजरात की राजधानी अणहिलपुर पाटन के सिंहासन के अधिपति सोलंकी राजाओं में के कुमारपाल महाराज तक के कतिपय नाम विमलवसहि के प्रकरण में आगये हैं। महाराज कुमारपाल के बाद उनका पुत्र अजयपाल गद्दी पर आरूढ हुआ। अजयपाल की गद्दी पर मूलराज (द्वितीय) और मूलराज की गद्दी पर भीमदेव (द्वितीय) गुजरात का महाराजा हुआ। उस समय गुर्जर राष्ट्रान्तर्गत धवलक्कपुर (धोलका) में महामंडलेश्वर सोलंकी अर्णोराज का पुत्र लवणप्रसाद राजा था और उसका पुत्र वीर धवल युवराज था। ये गुजरात के महाराजा के मुख्य सामंत थे। महाराजा

भीमदेव उन पर बहुत प्रसन्न था। इस कारण से उसने अपनी राज्य-सीमा को बढ़ाने का व संभाल रखने का कार्य लवणप्रसाद को सौंपा और वीरधवल को अपना युवराज बनाया। वीरधवल की, कुशल मन्त्री के लिये याचना होने पर भीमदेव ने वस्तुपाल और तेजपाल को बुलाया और उन दोनों को महा-मन्त्री बनाकर, वीर-धवल के साथ रहते हुए कार्य करने की सूचना दी। मन्त्री वस्तुपाल को धोलका और खंभात का अधिकार दिया गया और मन्त्री तेजपाल को संपूर्ण राज्य के महा-मन्त्री पद पर निर्वाचन किया गया।

युवराज वीरधवल व मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल ने गुजरात की राज्य-सत्ता को खूब विस्तृत बनाया। आस पास के मातहत राजा, जो स्वतंत्र होगये थे, अथवा स्वतंत्र होना चाहते थे, उन सब पर विजय प्राप्त करके, उनको गुर्जराधि-पति के आधीन किये। इसके उपरान्त आस पास के देशों पर भी विजय ध्वजा फहराकर गुजरात की राज्य-सत्ता में वृद्धि की। महामंत्री वस्तुपाल-तेजपाल ने कई समय लड़ाईयां लड़ी थीं। कभी बुद्धिबल से तो कभी लड़ाई से, इस प्रकार उन्होंने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इतने बड़े शूरवीर और सत्ताधीश होने पर भी उनको किसी पर

अन्याय करने की बुद्धि कभी भी नहीं सूझी। हमेशा राज्य के प्रति वफादारी व प्रजा पर वात्सल्य भाव रखते थे। विकट प्रसंगों में भी उन्होंने धर्म और न्याय को अपने से दूर नहीं किया। उन्होंने अपने व अपने सम्बंधियों के कल्याण के लिये तथा प्रजाहित के लिये सारे देश में जगह जगह पर अनेक जैन मंदिर, उपाश्रय, धर्मशालाएँ, दानशालाएँ, हिन्दू-मन्दिर, मसजिदें, बावड़ियें, कूए, तालाब, घाट, पुल और ऐसे ऐसे अनेक धर्म व लोकोपयोगी स्थान नये बनवाये। तथा ऐसे स्थान जो पुराने होगये थे, उनका जीर्णोद्धार कराया। उन्होंने धर्मकार्य में करोड़ों रुपये व्यय किये, जिनकी संख्या सुनते ही इस समय के लोगों को वह बात माननी कठिन होजाती है। उनके किये हुए धर्म कार्यों का कुछ वर्णन इसके दूसरे भाग में दिया जायगा।

आबू के परमार राजा—राजपूतों की मान्यतानुसार आबू पर तपस्या करने वाले वशिष्ठ ऋषि के होम के अग्नि-कुण्ड में से उत्पन्न हुए परमार नामक पुरुष के वंश में धूमराज नामक पहिला राजा हुआ। उसके वंश में धंधूक नामक राजा हुआ, जिसका नामोल्लेख विमलवसहि के वर्णन में आचुका है। आबू के इन परमार राजाओं की

राजधानी आबू की तलेटी (तलहटी) के निकट चंद्रावती नगरी में थी। ये लोग गुजरात के महाराजा के महामंडलेश्वर (मुख्य सामंत राजा) थे। धंधूक के वंश में ध्रुवभटादि राजा हुए। पश्चात् उसके वंश में रामदेव नामक राजा हुआ। इसके पीछे इसका यशोधवल नामका शूरवीर पुत्र राजा हुआ, जिसने चौलुक्य महाराजा कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को युद्ध में मार डाला था। यशोधवल के बाद उसका पुत्र धारावर्ष राजा हुआ। यह भी अत्यन्त पराक्रमी था। इसने कोंकण देश के राजा को लड़ाई में मार डाला था। धारावर्ष का प्रह्लादन नामक छोटा भाई था। यह भी महा पराक्रमी, शास्त्रवेत्ता एवं कवि था। 'पालनपुर' नामक नगर का यह स्थापक था। मेवाड़ नरेश सामंतसिंह के साथ युद्ध में क्षीणबल होने वाले गुजरात के महाराजा अजयपाल के सैन्य की इसने रक्षा की थी। धारावर्ष के बाद उसका पुत्र सोमसिंह राजा हुआ। इसने पिता से शस्त्र विद्या, और काका से शास्त्र विद्या ग्रहण की थी। उसका पुत्र कृष्णराज (कान्हड़) हुआ। वह महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल के समय में युवराज था।

लूणा-वसहि—महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल ने इस पृथ्वी पर जो अनेक तीर्थस्थान व धर्मस्थान बनवाये थे,

उन सबमें आबू पर्वतस्थ यह लूण वसहि नामक जैन मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। मंत्री वस्तुपाल के लघु भाई तेजपाल ने अपनी धर्मपत्नी अनुपमदेवी व उसकी कुक्षि से उत्पन्न हुए पुत्र लावण्यसिंह के कल्याण के लिये, गुजरात के सोलंकी महाराजा भीमदेव (द्वितीय) के महा-मंडलेश्वर आबू के परमार राजा सोमसिंह की अनुमति लेकर आबू पर्वतस्थ देलवाड़ा गांव में विमल वसही मंदिर के पास ही उसीके समान; उत्तम कारीगरी—नकशी-वाले संगमरमर का; मूल गंभारा, गूढ मंडप, नव चौकियाँ, रंग मंडप, बलानक (द्वार मंडप-दरवाजे के ऊपर का मंडप), खत्तक (ताक-आले), जगति (भमती) की देहरियाँ तथा हस्तिशालादि से अत्यन्त सुशोभित श्री नेमिनाथ भगवान् का, श्रीलूणसिंह (लावण्यसिंह)—वसहि नामक भव्य मंदिर करोड़ों रुपये खर्च करके तैयार कराया। इस मन्दिर में श्री नेमिनाथ भगवान् की कसौटी के पत्थर की अत्यन्त रमणीय व बड़ी मूर्त्ति बनवा कर मूलनायकजी के तौर पर विराजमान की। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा, श्री नागेन्द्र गच्छ के महेन्द्रसूरि के शिष्य शान्तिसूरि, उनके शिष्य आनंद-सूरि-अमरसूरि, उनके शिष्य हरिभद्र सूरि, उनके शिष्य श्री विजयसेन सूरि द्वारा भारी आडंबर और महोत्सव पूर्वक
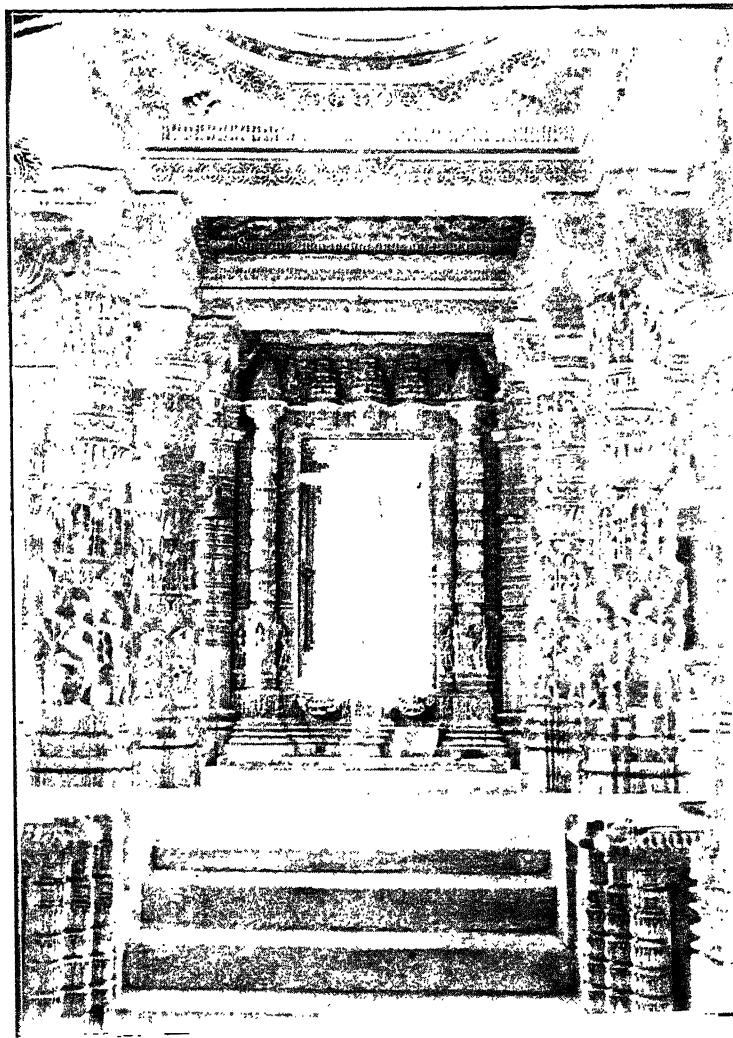
लूण-वसही का भीतरी दृश्य.

वि. सं. १२८७ के चैत्र वदि ३ (गुजराती फागुन वदि ३) रविवार के दिन कराई। इस मंदिर के गूढ मंडप के मुख्य द्वार के बाहर नव चौकियों में दरवाजे के दोनों तरफ बढ़िया नकशीवाले दो ताख़ (आले) हैं, (जिनको लोग देराणी-जेठानी के ताख़ कहते हैं)। ये दोनों आले मंत्री तेजपाल ने अपनी दूसरी स्त्री सुहडादेवी के स्मरणार्थ तैयार कराये हैं। मं. तेजपाल ने भमती की कई एक देहरियाँ अपने भाइयों, भुजाइयों, बहिनों, अपने व भाइयों के पुत्र, पुत्र-वधुओं और पुत्रियों आदि समस्त कुटुंब के कल्याणार्थ बनवाई हैं। कुछ देहरियाँ उनके श्वसुर पक्ष के व अन्य परिचित लोगों ने बनवाई हैं। इन सब देहरियों की प्रतिष्ठा वि. सं. १२८७ से १२९३ तक में और उपर्युक्त दोनों ताखों की प्रतिष्ठा वि. सं. १२९७ में हुई थी।

इस मंदिर का नकशी काम भी विमलवसही जैसा ही है। विमल-वसही और लूण-वसही मंदिरों की दीवारें, द्वार, बारसाख, स्तंभ, मंडप, तोरण और छत के गुम्बजादि में न मात्र फूल, झाड़, बेल, बूंटा, हंडियाँ और झुमर आदि भिन्न भिन्न प्रकार की विचित्र वस्तुओं की खुदाई ही की है; बल्कि इसके उपरान्त हाथी, घोड़े, ऊँट, व्याघ्र, सिंह, मत्स्य, पक्षी, मनुष्य और देव-देवियों की नाना प्रकार की मूर्त्तियों के

साथ ही साथ, मनुष्य जीवन के जुदे जुदे अनेक प्रसंग, जैसे कि–राज दरबार, सवारी, वरघोड़ा, बरात, विवाह प्रसंग में चौरी वगैरह, नाटक, संगीत, रणसंग्राम, पशु चराना, समुद्रयात्रा, पशुपालों (अहीरों) का गृह-जीवन, साधु और श्रावकों की अनेक प्रसंगों की धार्मिक क्रियाएँ, व तीर्थंकरादि महा पुरुषों के जीवन के अनेक प्रसंगों की भी इतनी मनोहर खुदाई की है कि–यदि उन सब प्रसंगों पर सूक्ष्म रीति से दृष्टिपात किया जाय तो मंदिर को छोड़ कर बाहर आने की इच्छा ही न हो।

इन दोनों मंदिरों की नकशी को देखने वाले मनुष्य के मस्तिष्क में स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न गूंज उठता है कि–इन दोनों मंदिरों में से किस मंदिर में अच्छी नकाशी है? किन्तु इस प्रश्न का निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। प्रेक्षकवर्ग स्वेच्छानुसार दो में से किसी एक को प्रधान पद देते हैं–दे सक्ते हैं। मैं भी अपने नम्र मतानुसार नकाशी की बारीकी व श्रेष्ठता पर दृष्टिपात करके विमल–वसही मंदिर को प्रधान पद देता हूं। क्योंकि लूण-वसहि में खुदाई की सूक्ष्मता व सुन्दरता अधिक है। जब कि विमल-वसहि में इसके उपरान्त मनुष्य जीवन से संबंध रखने वाले अनेक प्रसंगों की नकशी व खुदाई अधिक है ।

इस लूण-वसही मंदिर को बनाने वाला शोभनदेव नामक मिस्त्री-कारीगर था। इस मंदिर की प्रशस्ति के बड़े शिलालेख के निकट के दूसरे शिलालेख से यह मालूम होता है कि—मंत्री तेजपाल ने स्वबुद्धि बल से इस मंदिर की रक्षा के लिये तथा वार्षिक पर्वों के दिन पूजा-महोत्सवादि हमेशा अस्खलित रीति से चालू रहे, इसके लिये उत्तम व्यवस्था की थी। जैसे—

(१) मंत्री मल्लदेव, (२) मंत्री वस्तुपाल, (३) मंत्री तेजपाल और (४) लावण्यसिंह का मोसाल पक्ष [लावण्यसिंह के मामा चन्द्रावती निवासी (१) सिंहव-सिंह, (२) आम्बसिंह और (३) ऊदल तथा लूणसिंह, जगसिंह, रत्नसिंह आदि] और इन चारों की संतान परंपरा को, हमेशा के लिये इस मंदिर के ट्रष्टी मुकर्रर किया, ताकि वे तथा उनकी संतान परंपरा इस मंदिर की सब प्रकार की देख रेख रक्खें और स्नात्र-पूजादि कार्य हमेशा करें-करावें और जारी रक्खें।

इस मंदिर की सालगिरह (वर्षगांठ) के प्रसंग पर अट्ठाई महोत्सव और श्री नेमिनाथ भगवान् के पाँचों कल्याणक के दिनों में पूजा महोत्सवादि हमेशा होते रहें, इसके लिये इस प्रकार की व्यवस्था की—

चन्द्रावती, उवरणी तथा किसरउली गांव के जैन मंदिरों के सभी ट्रस्टी और समस्त महाजन लोगों को सालगिरह निमित्त अट्ठाई महोत्सव के प्रथम दिन—चैत्र कृष्णा ३ के दिन महोत्सव करना, चैत्र कृष्णा ४ के दिन कासहद गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ५ के दिन ब्रह्माण गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ६ के दिन धउली गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ७ के दिन मुंडस्थल महातीर्थ के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ८ के दिन हंडाउद्रा तथा डवाणी गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ९ के दिन मडाहड गांव के श्रावकों को, और चैत्र कृष्णा १० के दिन साहिलवाड़ा गांव के श्रावकों को प्रति वर्ष महोत्सव करना तथा श्री नेमिनाथ भ० के पांचों कल्याणक के दिन देउलवाड़ा गांव के श्रावकों को हमेशा महोत्सव करना।

इस प्रसंग पर चंद्रावती के परमार राजा सोमसिंह ने पूजा आदि खर्च के लिये डवाणी नामक ग्राम श्री नेमिनाथ भगवान् को अर्पण किया ‡ तथा इस दान को हमेशा मंजूर रखने के लिये आगामी परमार राजाओं को उन्होंने विनयपूर्वक फरमान किया था।

‡ यह गांव पीछे से सिरोही राज्य ने अपने अधिकार में ले लिया है।

प्रतिष्ठा उत्सव के समय लूण-वसहि मंदिर के रंग मंडप में बैठ कर चंद्रावती के अधिपति राजकुल श्री सोमसिंह, उनका राजकुमार कान्हड़ (कृष्णराज) आदि कुमार, राज्य के समस्त अधिकारी, चंद्रावती के स्थानपति भट्टारकादि, गूगुली ब्राह्मण, समस्त महाजन तथा अर्बुदाचल के अचलेश्वर, वशिष्ठ, देउलवाड़ा ग्राम, श्री श्रीमाता महत्तु ग्राम, आबुय ग्राम, ओरासा ग्राम, उत्तरछ ग्राम, सिहर ग्राम, साल ग्राम, हेठउंजी ग्राम, आखी ग्राम, श्रीधांधलेश्वर देवीय कोटडी ग्राम आदि ग्रामों में निवास करने वाले स्थानपति, तपोधन, गूगुली ब्राह्मण, राठिय आदि समस्त लोगों तथा भालि, भाड़ा आदि गांवों के रहने वाले प्रतिहार वंश के सब राजपूत आदि समस्त लोगों के समक्ष यह सब व्यवस्था की गई थी।

इस सभा में सम्मिलित उपर्युक्त समस्त सभासदों ने अपनी राजी खुशी से भगवान् के समक्ष मंत्री तेजपाल से, इस मंदिर की सब तरह सार संभाल रक्षादि करने का कार्य अपने सिर पर लिया था।

इस प्रकार महामात्य तेजपाल ने ऐसा श्रेष्ठ मंदिर बनवाकर व उसकी सार-संभाल-रक्षादि के लिये उपर्युक्त

कथनानुसार उत्तम व्यवस्था करके अपनी आत्मा को कृतार्थ बनाया।

मंदिर का भंग व जीर्णोद्धार— विमलवसहि के वर्णन (पृ० ३६ और उसके नीचे के नोट) के अनुसार विमलवसहि मंदिर के भंग के साथ मुसलमान बादशाह के सैन्य ने वि० सं० १३६८ के लगभग इस मंदिर के भी मूल गंभारा और गूढ मंडप का नाश किया था और अन्य भी कतिपय भागों को नुकसान पहुंचाया था।

इसके बाद व्यवहारी (व्यापारी) चंडसिंह का पुत्र श्रीमान् संघपति पेथड़ संघ लेकर यहां यात्रा करने को आया। उस समय उसने अपने द्रव्य से इस मंदिर का वि० सं० १३७८ में जीर्णोद्धार कराया अर्थात् नष्ट हुवे भाग को फिर से बनवाया और श्री नेमिनाथ भगवान् की नई मूर्ति बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा कराई।

मूर्त्ति संख्या और विशेष हकीकत—

मूल-गंभारे में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान् की श्याम वर्ण की परिकर युक्त सुन्दर मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के
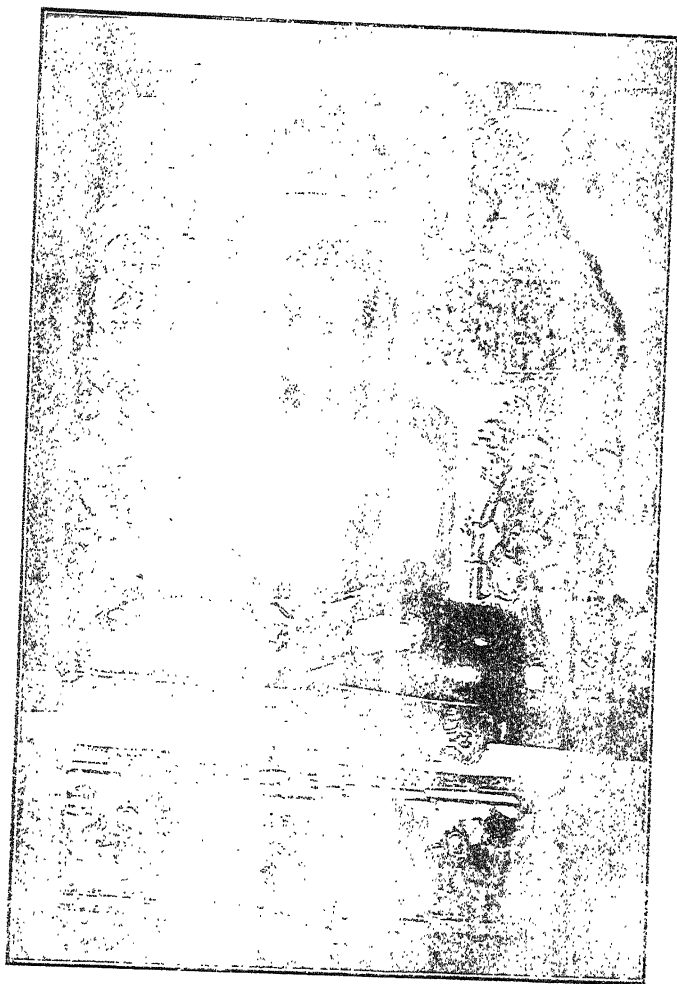
लूणा-वसही. मूलनायक श्रीनेमिनाथ भगवान.

D. J. Press, Ajmer.

परिकर वाली मूर्त्ति १‡ व परिकर रहित मूर्त्तियां २, इस प्रकार कुल मूर्त्तियां ४ हैं।

गूढ मंडप में श्री पार्श्वनाथ भगवान् की अत्यन्त रमणीय, खड़ी, बड़ी और मनोहर मूर्त्तियाँ (काउस्सग्गिये) २ हैं, (ये दोनों काउस्सग्गिये, विमल वसहि के गूढ मंडप के काउस्सग्गियों के लगभग समान आकृति के ही हैं। उसमें जो बड़ा काउस्सग्गिया है, उस पर लेख नहीं है। छोटे काउस्सग्गिये पर वि० सं० १३८९ का लेख है, जिससे प्रतीत होता है कि-मुंडस्थल महातीर्थ के श्री महावीर चैत्य में कोरंटक गच्छ के नन्नाचार्य्य संतानीय महं धांधल (धांधल मंत्री) ने यह जिनयुग्म कराया। इस काउस्सग्गिया के सदृश, उपर्युक्त लेख के समान लेख से युक्त, एक काउस्सग्गिया ऊपर की सब से ऊंची देहरी में है)। परिकर वाली मूर्त्ति २, बिना परिकर की मूर्त्ति १६, चौबीसी के पट्ट से जुदी हुई भगवान् की छोटी मूर्त्ति २, धातु की पंच-तीर्थी २, धातु की एकतीर्थी ३, भव्य मूर्त्ति पट्टक १,

‡ इसमें मूल गंभारे, देहरियां और आले वगैरह के सिर्फ मूलनायक भगवान का ही नामोल्लेख किया गया है। मूलनायक भगवान के अतिरिक्त (सिवाय) मूर्त्तियाँ, चौबिस तीर्थंकरों में से किसी भी तीर्थंकर भगवान की हैं, ऐसा समझना चाहिये।

(जिसके मध्य में राजीमती (राजुल) की खड़ी मूर्त्ति है, नीचे दोनों तरफ दो सखियों की छोटी मूर्त्तियां बनी हैं, ऊपर भगवान् की एक मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति पट्टक के नीचे के भाग पर वि० सं० १५१५ का लेख है), और श्यामवर्ण, एक मुख, दो नेत्र, (१) वरदान, (२) अंकुश, (३)................, (४) अंकुश युक्त चार भुजा तथा हस्ति के वाहन वाले यक्ष की मूर्त्ति १ है। (इस मूर्त्ति के नीचे एक छोटा लेख है, किन्तु उसमें यक्ष के नाम का उल्लेख नहीं है। यह मूर्त्ति श्री अभिनन्दन भगवान् के शासन रक्षक 'ईश्वर' यक्ष की अथवा श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् के शासन रक्षक 'मातंग' यक्ष की होनी चाहिये)।

नवचौकी में अपने वाम हाथ की तरफ के ताख़ में मूलनायक श्री (अजितनाथ) संभवनाथ भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और दाहिने हाथ की तरफ के ताख़ में मूलनायक श्री शान्तिनाथ भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

इसके पास में ही दाहिने हाथ की तरफ के एक ओर के बड़े खत्तक (ताख़) में भूत, भविष्य, वर्त्तमान इन तीनों कालों की तीन चौबीसियों के ७२ भगवानों का एक बड़ा पट्ट है। इसमें मूलनायकजी की मूर्त्ति परिकर वाली
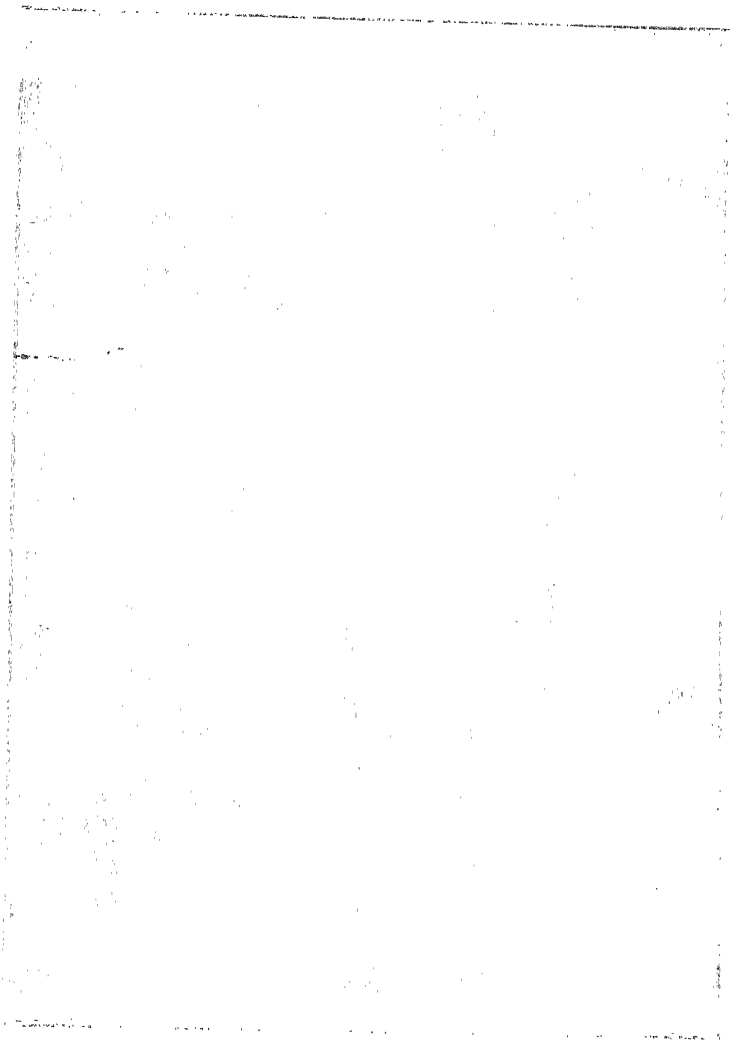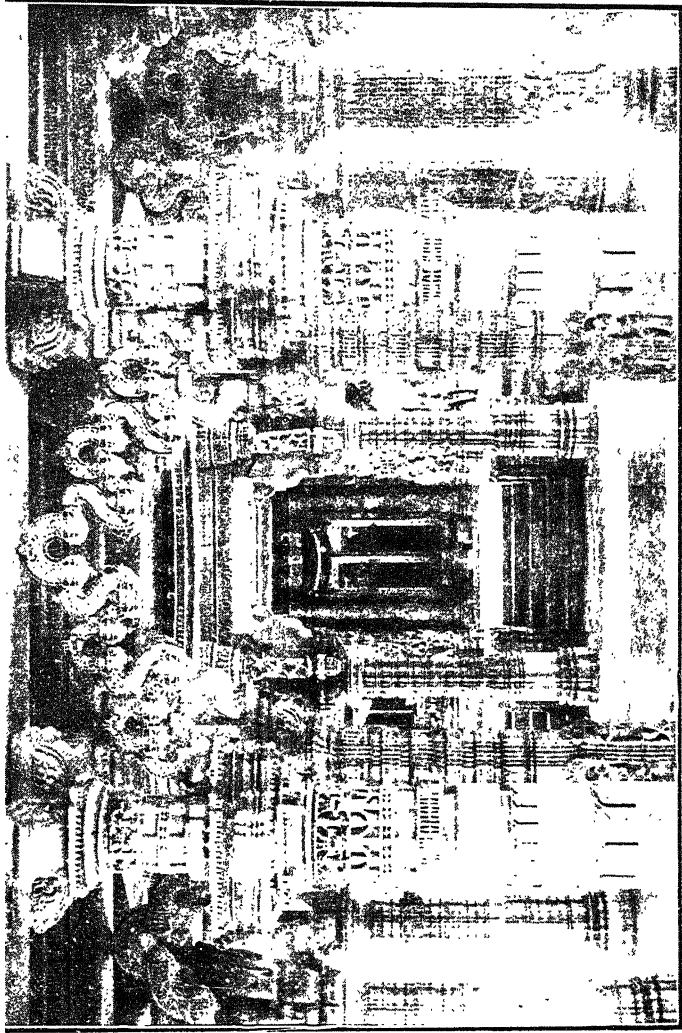
लूण-वसही, नवचौकी और सभामंडप आदि का एक दृश्य.

D. J. Press, Ajmer.

है। इसी पट्ट के नीचे के भाग में पट्ट बनवाने वाले श्रावक 'सोनी विघा' और दूसरी ओर इसकी स्त्री श्राविका 'संघवणि चंपाई' की मूर्त्तियाँ हैं। पट्ट के ऊपर के भाग में दोनों तरफ एक एक श्राविका की मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। उस पर नामोल्लेख नहीं है। परन्तु सम्भव है कि–वे दोनों मूर्त्तियाँ भी उन्हीं के कुटुम्ब की स्त्रियों या पुत्रियों की होंगी। यह पट्ट १६ वीं शताब्दि में मांडवगढ़ निवासी ओसवाल जातीय श्राविका चंपा बाई के बनवाने का उस पर लेख है।

देहरी नं० १ में मूलनायक श्री वासुपूज्य भगवान् की परिकरवाली मूर्त्ति १, परिकर रहित मूर्त्तियाँ २, कुल मूर्त्तियाँ ३ हैं।

देहरी नं० २ में मूलनायक श्री ·········· की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ३ में मूलनायक श्री ·········· की परिकर युक्त मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४ में मूलनायक श्री अनंतनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ५ में मूलनायक श्री शाश्वता चंद्रानन भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ६ में मूलनायक श्री नेमिनाथजी की परिकर वाली मूर्त्ति १ और चौबीसी का सुन्दर पट्ट १ है। जिसमें मूलनायक की मूर्त्ति परिकर वाली है। इस पट्ट पर लेख है।

देहरी नं० ७ में मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ८ में मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ९ में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान् की परिकर युक्त मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्तियाँ २, कुल मूर्त्तियाँ ३ हैं।

देहरी नं० १० में मूलनायक श्री (पार्श्वनाथ) पार्श्वनाथ भगवान् की परिकर सहित मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ११ में मूलनायक श्री महावीर स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्तियाँ ३, कुल मूर्त्तियाँ ४ हैं।

देहरी नं० १२ में मूलनायक श्री............की परिकर युक्त मूर्त्ति १, भगवान् की चौबीसी का पट्ट १ और जिन-माता की चौबीसी का पट्ट १ है।

देहरी नं० १३ में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) शान्तिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है तथा पास की दीवाल के ताख में श्रावक श्राविका की खंडित मूर्त्तियों के युग्म (जोड़ी) ३ हैं ‡। उन पर नाम या लेख नहीं हैं।

देहरी नं० १४ में मूलनायक श्री (शान्तिनाथ) सुपार्श्वनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० १५ में मूलनायक श्री (आदिनाथ) शान्तिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० १६ में मूलनायक श्री (संभवनाथ) चंद्रप्रभ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० १७ में मूलनायक श्री..........की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० १८ में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। (देहरी नं० १७-१८ दोनों साथ में हैं।)

देहरी नं० १९ (गम्भारे) में मूलनायक श्री (मुनिसुव्रत) मुनिसुव्रत स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। पास में पंचतीर्थी और फेन वाले परिकर में चार तीर्थ हैं।

---

‡ इन खण्डित मूर्त्तियों की मरम्मत गतवर्ष में हुई है।

इसमें मूलनायकजी की जगह खाली है। तथा दाहिनी ओर की दीवाल में एक सुंदर पट्ट है। जिसमें 'अश्वाव-बोध और समली विहार' तीर्थ का दृश्य है ‡। इस पट्ट में

‡ केवलज्ञान प्राप्ति के बाद बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी भव्य प्राणियों को प्रतिबोध करते हुए पृथ्वीतल पर विचरते थे। एक समय भगवान् को केवलज्ञान से यह ज्ञात हुआ कि—मेरे उपदेश से भरोंच नगर के एक अश्व को कल प्रतिबोध होगा। ऐसा देखकर प्रतिष्ठानपुर से विहार करके एक ही दिन में २४० कोस चलकर लाट देश में नर्मदा नदी के किनारे भृगुकच्छ (भरोंच) बन्दर के बाहर कोरंट बन में आ विराजमान हुए। इस समय इस नगर के राजा जितशत्रु ने अश्वमेव यज्ञ प्रारम्भ किया था। जिसमें उसने खुद के जातिवंत घोड़े का होम देने का निश्चय किया था। और इसीलिये नियमानुसार उस घोड़े को कुछ समय से स्वेच्छाचारी बना दिया था। यहां श्री मुनिसुव्रत स्वामी समवसरण में बैठकर देशना देने लगे। राजा-प्रजा सभी इस देशना का लाभ लेने को आये। रक्षक पुरुषों के साथ वह स्वेच्छाचारी घोड़ा भी आ पहुंचा। भगवान् के अप्रतिम रूप को देखकर घोड़ा स्तब्ध हो गया और उपदेश श्रवण करने लगा। भगवान् ने उपदेश में अपना और उस घोड़े का पूर्व भव भी कह सुनाया। घोड़े को अपना पूर्व भव सुनने से जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जिससे उसने भाव पूर्वक समकित युक्त श्रावक धर्म अङ्गीकार किया और सचित्त (जीव-युक्त) आहार-पानी नहीं लेने का व्रत ग्रहण किया—निर्जीव आहार-पानी ही लेना, ऐसा संकल्प किया। उस समय भगवान् के गणधर—मुख्य शिष्य ने भगवान् से प्रश्न किया कि—'हे भगवन्! आज आपके उपदेश से किस किस को धर्म प्राप्ति हुई?' भगवान् ने उत्तर दिया कि—'जितशत्रु
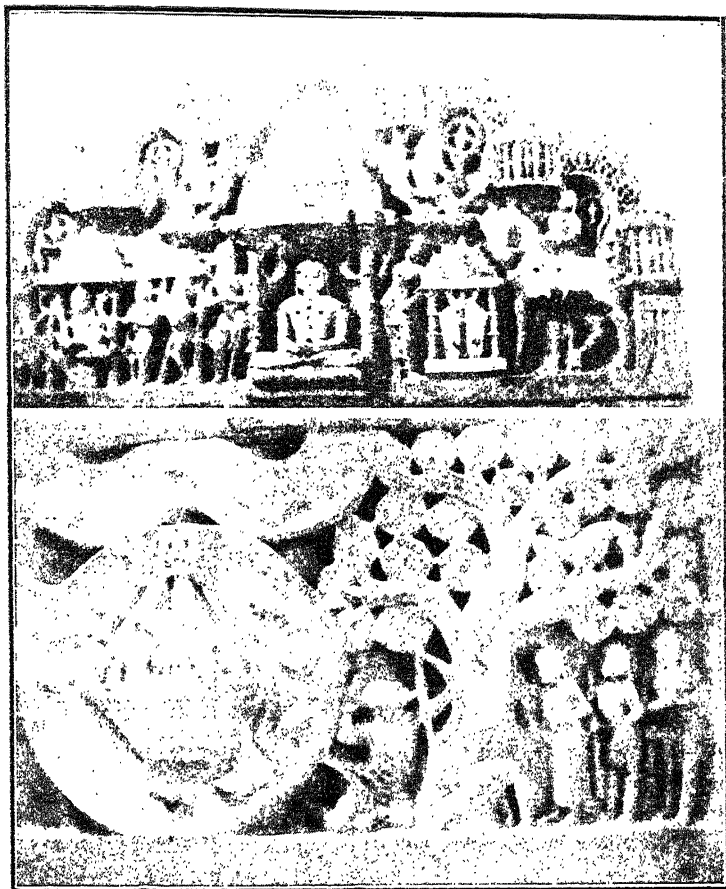
लूण-वसही, देहरी १६—अश्वावबोध व समली विहार तीर्थ का दृश्य.

D. J. Press, Ajmer.

नीचे के खंड में एक बड़ा वृक्ष है। उस पर एक समली

राजा के घोड़े के उपरान्त किसी को भी नूतन धर्म प्राप्ति नहीं हुई।" यह बात सुनकर जितशत्रु अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस घोड़े को यावज्जीव स्वेच्छानुसार भ्रमण करने के लिये छोड़ दिया। समस्त प्रजावर्ग ने घोड़े की प्रशंसा की। घोड़े ने छः मास तक श्रावक धर्म का पालन किया; पश्चात् नश्वर देह को त्याग कर सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक विमान में महर्द्धिक देव हुआ। वहां उसने अवधि ज्ञान के उपयोग से स्वपूर्व भव का परिज्ञान किया। तत्काल उसी समवसरण के स्थान में आकर सुन्दर और विशाल मन्दिर बनाया। इस मन्दिर में मुनिसुव्रत स्वामी की तथा खुद की—अश्वभव की मूर्त्ति की स्थापना की। उसी समय से यह स्थान 'अश्वावबोध तीर्थ' के नाम से प्रख्यात हुआ। इस विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले जिज्ञासु 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र,' पर्व ६, सर्ग ७; 'स्याद्वाद रत्नाकर' का प्रथम पत्र और श्री जिनप्रभसूरि कृत 'तीर्थकल्प' में 'अश्वावबोधकल्प' देखें।

'स्याद्वादरत्नाकर' के प्रथम पत्र में यह श्लोक है:—

एकस्यापि तुरङ्गमस्य कमपि ज्ञात्वोपकारं सुर-
श्रेणिभिः सह षष्टियोजनमितामाक्रम्य यः काश्यपीम्।
आरामे समवासरद् भृगुपुरस्येशानदिङ्मण्डने
स श्रीमान् मयि सुव्रतः प्रकुरुतां कारुण्यसान्द्रे दृशौ ॥ २ ॥

* * * *

सिंहलद्वीप के रत्नाशय नामक देश के श्रीपुर नामक नगर में राजा चन्द्रगुप्त राज्य करता था। चन्द्रलेखा उसकी स्त्री थी। सात पुत्रों के उपरान्त, नरदत्ता देवी की आराधना से उसको सुदर्शना नाम की पुत्री हुई। वह उत्तम रूप और गुणों से युक्त थी। समस्त विद्याओं और कलाओं

(शकुनिका) बैठी है। उसको एक तरफ से एक शिकारी

का अभ्यास करके वह युवावस्था को प्राप्त हुई। एक दिन सभा में सुदर्शना, अपने पिता की गोद में बैठी थी। उस समय धनेश्वर नामका एक व्यापारी भरोंच से जलमार्ग द्वारा वहां आया। द्रव्य से परिपूर्ण एक थाल राजा के आगे भेट रखकर वह सभा में बैठ गया। उस समय किसी कारणवश अतितीव्र गंध आने से व्यापारी को छींक आई। उस समय उसने 'नमो अरिहंताणं' का उच्चारण किया। इस पद के श्रवणमात्र से राजकुमारी सुदर्शना मूर्च्छित हुई। इस घटना से व्यापारी पर मार की वर्षा हुई। शीतल उपचारों द्वारा सुदर्शना स्वस्थ हुई और उसको जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ। धनेश्वर व्यापारी को अपना धर्म बंधु समझ कर उसने उसको मुक्त कराया। मूर्च्छा का हेतु पूछने पर सुदर्शना ने राजा को कहा—धनेश्वर शेठ के उच्चारण किया हुआ 'नमो अरिहंताणं' यह मंत्र पद मैंने पहिले कहीं सुना है, ऐसा विचार करते २ मुझे मूर्च्छा आई और उसमें मैंने मेरा पूर्व भव देखा, जैसा कि—"मैं पूर्वभव में भरोंच नगर में, नर्मदा नदी के किनारे, कोरंट वन में वट वृक्ष के ऊपर शकुनिका थी। एक समय चातुर्मास में सात दिन तक लगातार महावृष्टि हुई। आठवें दिन क्षुधार्त मैं नगर में आहार की शोध में घूम रही थी। मेरी दृष्टि एक शिकारी के आंगन में पड़े हुए मांस पर पड़ी। मैं मांस उठाकर ले चली और उस वट वृक्ष पर जा बैठी। क्रोधातुर होकर मेरा पीछा करने वाले उस शिकारी ने बाण से मुझे बिंधा। शिकारी मेरे मुख से गिरे हुए मांस के टुकड़े को और अपने बाण को लेकर चला गया। मैं झाड़ पर से नीचे गिर कर वेदना से क्रंदन कर रही थी, उस समय मेरी यह दुःखी अवस्था दो मुनिराजों ने देखी। उन्होंनें अपने जलपात्र से मेरे पर जल का सिंचन किया और नवकार मंत्र सुनाया। उसको मैंने श्रद्धा पूर्वक श्रवण किया। वहां से मरकर मुनिराजों के सुनाये हुए नवकार मंत्र के प्रभाव से मैं तुम्हारे यहां पुत्री रूप उत्पन्न हुई।" तत्पश्चात् सुदर्शना को संसार

चाण मार रहा है। बाण के लगने से शकुनिका नीचे

के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई। माता पिता ने उसको पाणिग्रहण करने के लिये बहुतेरा समझाया, परन्तु सारा प्रयत्न निष्फल हुआ। पुत्री की उत्कट इच्छा थी भरोंच जाने की, जिससे राजा ने उपर्युक्त धनेश्वर व्यापारी के साथ सुदर्शना को धन, धान्य, वस्त्र, सैनिकादि से परिपूर्ण सात सौ जहाज देकर बिदा किया। क्रमशः भरोंच के राजा को अपने चर पुरुषों द्वारा, सैन्य सहित इतने जहाजों के आगमन की बात ज्ञात हुई जिससे उसको कल्पना हुई कि सिंहलेश्वर मेरे नगर पर आक्रमण करने को आता है। और ऐसा समझकर उसने अपने सैन्य को तैयार भी किया। परन्तु नगर जनों के क्षोभ को मिटाने के लिये धनेश्वर सेठ पहिले ही से भेट—उपहारादि लेकर शीघ्र ही राजा के पास पहुंचा और सिंहल द्वीप की राजकुमारी के आगमन की सूचना की। सब लोगों के दिलों में शान्ति हुई। राजा स्वयं लड़ाई की तैयारियां बंद करके राजकुमारी के स्वागत के लिये बंदर पर पहुंचा। राजपुत्री ने भी जहाज से नीचे उतर कर राजा का उपहार-भेट आदि से यथायोग्य आदर—सत्कार किया। राजा ने उसका धूम धाम पूर्वक नगर प्रवेश कराया और रहने के लिये एक महल दिया। पश्चात् सुदर्शना कोरंट वन में गई वहां अश्वावबोध तीर्थ एवं स्वमृत्युस्थान देखा और उपवास पूर्वक उसने मुनिसुव्रत स्वामी की भाव-भक्ति से पूजा की। कुछ समय के बाद उस राजपुत्री को अकस्मात् एक साधु महाराज, जिन्होंने शकुनिका के भव में नवकार मंत्र सुनाया था, के दर्शन हुए। भक्ति पूर्वक उसने वंदना की। ज्ञानी मुनिराज ने शकुनिका का जीव जानकर दानादि धार्मिक कृत्य करने का उसको उपदेश देकर सम्यक्त्व में दृढ किया। सुदर्शना ने अपने द्रव्य से अश्वावबोध तीर्थ का उद्धार किया। तथा चौवीस भगवान् की चौवीस देहरियां, औषधालय, दानशालाएं, पाठशालाएं वगैरह

ज़मीन पर गिर कर तड़फड़ाती हुई मरने की तैयारी में है। उसके पास दो साधु-मुनिराज‡ खड़े हैं और वे उस

बहुत से धर्म स्थान कराये, इस प्रकार अपना द्रव्य सप्त क्षेत्रों में (धर्म के सात स्थानों में) लगा कर अन्त में अनशन (भोजनादि का त्याग) करके मृत्यु पाकर देव लोक में गई। उस समय से वह अश्वावबोध तीर्थ, समली विहार तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुमारपाल राजा के मंत्री उदयन के पुत्र वाहड़ देव (वाग्भट) ने शत्रुंजय के मुख्य मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, उस समय वाहड़ के छोटे भाई अंबड़ (आम्रभट) ने अपने पिता की स्मृति के उपलक्ष में पुण्यार्थ इस शकुनिका विहार मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। प्रतिष्ठा के समय ध्वज-दंड चढाने के लिये प्रासाद शिखर पर चढते समय मिथ्यादृष्टि सिंधुदेवी ने बड़ा उपद्रव किया, जिसको श्री हेमचंद्राचार्य ने स्वविद्याबल से दूर किया। विशेष जानने के लिये श्री जिनप्रभसूरि कृत 'तीर्थ कल्प' में 'अश्वावबोध कल्प' वगैरह देखना चाहिये।

इस दृश्य में घोड़े के पास एक आदमी खड़ा है। संभव है वह घोड़े का अंगरक्षक हो अथवा घोड़े का जीव देव हुआ है, वह हो। मंदिर की एक ओर एक पुरुष और दूसरी ओर एक स्त्री की आकृति खुदी हुई है। वह भरोंच का राजा और सुदर्शना राजपुत्री होने की, तथा नीचे वृक्ष और समुद्र के पास एक पुरुष और एक स्त्री हैं वे दोनों इस पट्ट के बनवाने वाले श्रावक श्राविका होने की संभावना हो सकती है।

‡ उनमें से मुख्य साधु (मुनिराज) के एक हाथ में मुँहपत्ति और दूसरे हाथ में बिना शिखर का सादा दंडा है। दूसरे साधु के एक हाथ में वैसा ही दंडा और दूसरे हाथ में तरपणी है। दोनों की बांयी बगल में ओघा (रजोहरण) है और पींडी के नीचे तक कपड़ा पहना हुआ है।

चिड़िया-समली को नवकार मंत्र सुना रहे हैं। ऊपर के खंड में बांयी तरफ एक छत्री के नीचे सिंहलद्वीप का चंद्रगुप्त राजा गोद में अपनी पुत्री सुदर्शना को लेकर बैठा है। उसके पास भरोंच निवासी धनेश्वर सेठ हाथ जोड़ कर खड़ा है। सेठ के पास खड़े हुए आदमी के हाथ में राजा को भेट करने के लिये द्रव्यपूर्ण थाल है। राजा के पहिले खड़े हुए अंगरक्षक के टेढे हाथ में सुंदर बेग-थैली लटक रही है।

नीचे के खंड में वृक्ष के पास समुद्र है। जिसमें एक बड़ा जहाज है। उस जहाज में राजपुत्री सुदर्शना सहित चार स्त्रियाँ बैठी हैं और एक स्त्री, सुदर्शना के सिर पर छत्र धर कर खड़ी है। वही जहाज़, समुद्र से मिली हुई नर्मदा नदी में होकर भरोंच के बाहर के कोरंट नामक उद्याना-न्तर्गत श्री मुनिसुव्रतस्वामी के मंदिर की ओर जाता है। समुद्र में मछलियां, मगरमच्छ, सर्प और कछुवे आदि हैं।

ऊपर के खण्ड के मध्य भाग में श्रीमुनिसुव्रत स्वामी का एक मंदिर है। इस मंदिर के बाहर बांयी तरफ एक श्रावक हाथ जोड़ कर खड़ा है और दाहिने हाथ की तरफ एक श्राविका पूजा की सामग्री हाथ में लेकर खड़ी है। मंदिर के ऊपर के भाग में दोनों तरफ दो आदमी पुष्पमाल लेकर बैठे हैं।

मंदिर के पास चरण-पादुका सहित एक देहरी है। जिसके पास एक मनुष्य खाली घोड़ा लिये खड़ा है। समुद्र तथा वृक्ष के पास एक श्रावक व एक श्राविका हाथ जोड़ कर खड़े हैं। इस पट्ट को आरासणाकर वासी पोरवाड़ आसपाल ने वि० सं० १३३८ में बनवाया। ऐसा उस पर लेख था, लेकिन अब यह लेख देखने में नहीं आता है।

देहरी नं० २० में मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर वाली मूर्त्ति १, कुल मूर्त्तियाँ २ हैं।

देहरी नं० २१ में मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। (देहरी नं० २० व २१ दोनों मिली हुई हैं।)

देहरी नं० २२ में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) वासुपूज्य भगवान् की परिकर युक्त मूर्त्ति १ और वाम ओर परिकर युक्त मूर्त्ति १, कुल मूर्त्तियाँ २ हैं। दाहिनी तरफ बिंब रहित एक परिकर है। (इस के बाद एक खाली कोठड़ी है।)

देहरी नं० २३ में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) .... की सर्पफणायुक्त पुराने परिकर वाली मूर्त्ति १ और बाजू में
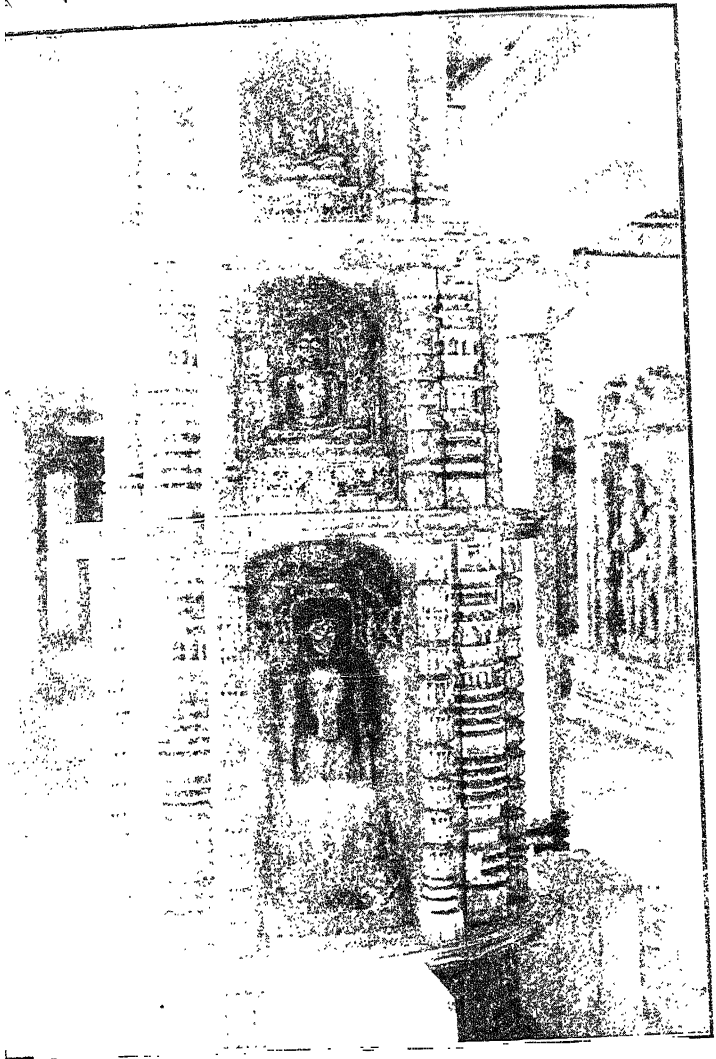
लूण-वसही की हस्तिशाला में, श्याम वर्णके तीन चतुर्मुख (चौमुखजी) का दृश्य.

सादे परिकर वाली मूर्त्तियाँ २, कुल मूर्त्तियां ३ हैं। एक परिकर का आधा भाग खाली है। इसमें बिंब नहीं है।

देहरी नं० २४ अम्बाजीकी है। इसमें अंबिकादेवी की एक सुंदर बड़ी मूर्त्ति १ है। इसके ऊपरी हिस्से में भगवान् की एक मूर्त्ति खुदी है। अंबाजी के ऊपर के आम्र-वृक्ष के परिकर में भी भगवान् की एक मूर्त्ति खुदी है। इस मूर्त्ति पर लेख नहीं है।

देहरी नं० २५ में मूलनायक श्रीनेमिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। (नं० २३-२४-२५ वाली तीनों देहरियाँ मिली हुई हैं।) इसके बाद लूणवसहि की हस्ति-शाला है।
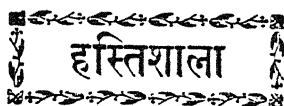
हस्तिशाला

हस्तिशाला के बीच के खंड में मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् की परिकर वाली एक भव्य बड़ी मूर्त्ति विराजमान है। इस मूर्त्ति के सामने श्याम वर्ण के संगमरमर में अथवा कसौटी के पत्थर में मनोहर नकशी युक्त मेरुपर्वत की रचना की तरह तीन मंजिल के चौमुखजी हैं। इन तीनों मंजिलों में उसी पाषाण के श्यामवर्ण के चौमुखजी हैं। पहली मंजिल में चार काउस्सग्गिये हैं। दूसरी व

तीसरी मंजिल में भगवान् की आठ मूर्त्तियां हैं। ये सभी मूर्त्तियां परिकरवाली हैं।

अंतिम खंड में (दीवाल के पास) दोनों ओर परिकर वाली भगवान् की एक २ मूर्त्ति है और एक मूर्त्ति का पद्मासन खाली है।

हस्तिशाला के अन्दर उस चौमुखजी के दोनों तरफ के पांच पांच खंडों में मिलकर सफेद संगमरमर के रमणीय; दंतूशल, झूल, पालकी और अनेक आभूषणों से सज्जित १० बड़े हाथी बने हैं। उन हाथियों पर इस समय किसी की भी मूर्त्ति नहीं है‡। परन्तु प्रत्येक हाथी के पीछे दीवाल के पास इस क्रमानुसार बड़ी २ खड़ी मूर्त्तियां हैं—

---

‡ इन दशों हाथियों की पालकियों में बैठी हुई एक एक श्रावक की मूर्त्ति, इन मूर्त्तियों के आगे एक एक महावत की बैठी मूर्त्ति व पीछे बैठे हुए एक एक छत्रधर की, इस प्रकार एक एक हाथी पर तीन २ मूर्त्तियां थीं। प्रत्येक हाथी के नीचे उन लोगों का नाम खुदा है, जिनके निमित्त से इन हाथियों का निर्माण हुआ है। संभव है कि जिस समय मुसलमान बादशाह के सैन्य ने इन दोनों मंदिरों का भंग किया, उस समय इन हाथियों पर की सभी मूर्त्तियाँ खंडित कर दी हों। हाथियों की पूँछें, कान, सूँड, आदि खंडित हुए थे, जो पीछे से नये बनवाये गये हों, ऐसा प्रतीत होता है। नव खंड तक हाथी पर जिस पुरुष का नाम है, हाथी के पीछे के आले में रही हुई
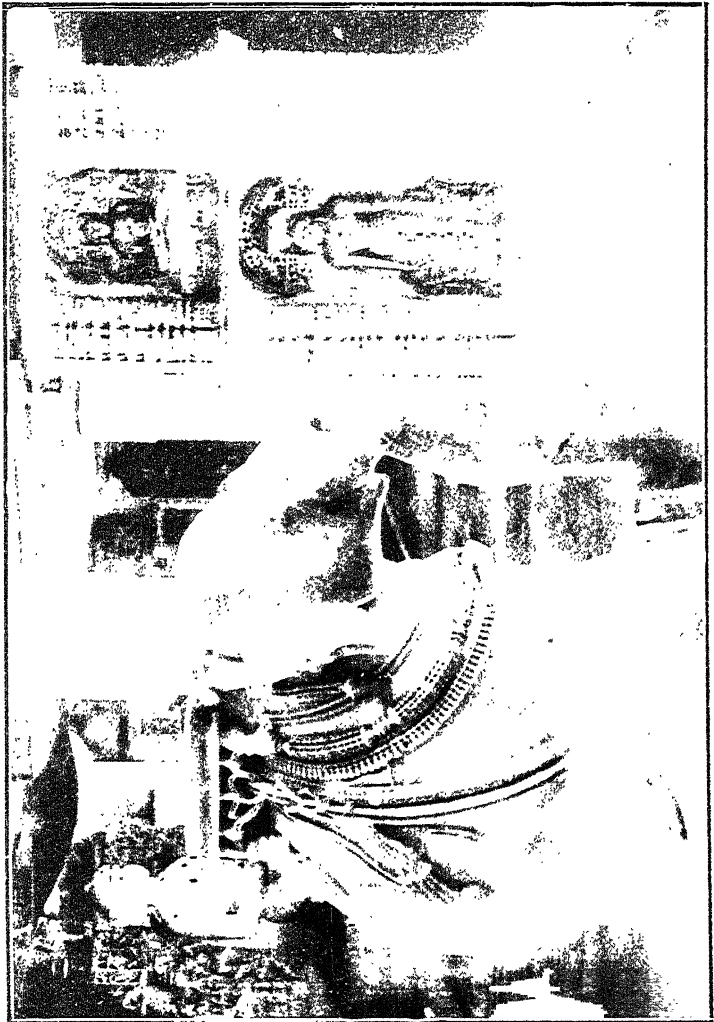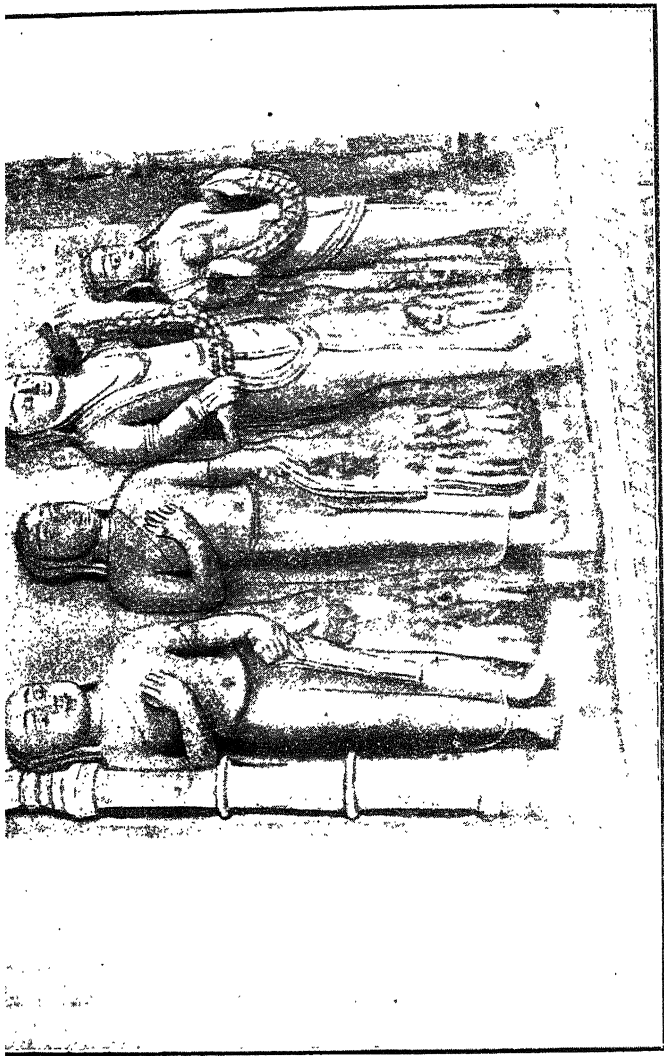
लूणा-वसही की हस्तिशाला में, १ उदयप्रभ सूरि, २ विजयसेन सूरि, ३ मन्त्री चंडप, ४ चांपल देवी.

D. L. Press Ajmer

खण्ड पहिला—

१ 'आचार्य उदयप्रभ' (आचार्य श्री विजयसेनसूरि के शिष्य)
२ 'आचार्य विजयसेन' (आचार्य श्री उदयप्रभ के और मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल के गुरु, जिसने इस मंदिर की प्रतिष्ठा कराई थी)
३ 'महं० श्री चंडप' (मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल के दादा के दादा—पितामह के पितामह)
४ 'श्री चांपलदेवी' (मं० चंडप की पत्नी)

खण्ड दूसरा—

१ 'महं० श्री चंडप्रसाद' (मं० चंडप का पुत्र)
२ 'महं० श्री चांपलदेवी' (मं० श्री चंडप्रसाद की पत्नी)

खण्ड तीसरा—

१ 'महं० श्री सोम' (मं० श्री चंडप्रसाद का पुत्र)
२ 'महं० श्री सीतादेवी' (मं० श्री सोम की पत्नी)

पुरुष की मूर्त्ति पर भी वही नाम है। दशवें खंड में हाथी पर महं लावण्यसिंह (तेजपाल—अनुपमदेवी के पुत्र) का नाम है, और इसी खंड में पीछे की मूर्त्ति पर उसके भाई महं सुहडसिंह (तेजपाल—सुहडादेवी के पुत्र) की मूर्त्ति है। हस्तिशाला में गृहस्थों की सब मूर्त्तियों के हाथों में, फूल की मालायें चंदन की कटोरी और फलादि पूजा की सामग्री है।

सीतादेवी की मूर्त्ति के पैर के निकट उसी पत्थर में एक छोटी मूर्त्ति खुदी है, जिसके नीचे 'महं श्री आसण' इस प्रकार लिखा हुआ है।

खण्ड चौथा—

१ 'महं० श्री आसराज' (अश्वराज) (मं० श्री सोम का पुत्र)

२ 'महं० श्री कुमरादेवी' (कुमारदेवी) (मं० श्री आसराज की पत्नी)

खण्ड पांचवां—

१ 'महं० श्री लूणगः' (लूणिग) (मं० श्री अश्वराज का पुत्र और मं० वस्तुपाल-तेजपाल का ज्येष्ठ भ्राता)

२ 'महं० श्री लूणादेवी' (मं० लूणिग की पत्नी)

खण्ड छठवां—

१ 'महं० श्री मालदेव' (मल्लदेव) (मं० वस्तुपाल-तेजपाल का बड़ा भाई)

२ 'महं० श्री लीलादेवी' (मं० श्री मल्लदेव की प्रथम पत्नी)

३ 'महं० श्री प्रतापदेवी' (,, ,, द्वितीय ,,)

खण्ड सातवां—

१ 'महं० श्री वस्तुपालः ॥ सूत्र वरसाकारि' (महामंत्री वस्तुपाल, मं० अश्वराज का पुत्र तथा लूणिग, मल्लदेव और तेजपाल का भाई। यह मूर्त्ति सिलावट वरसा की बनाई हुई है। मूर्त्ति के मस्तक पर छत्र बना है)

२ 'महं० ललतादेवी' (मं० वस्तुपाल की प्रथम पत्नी)

३ 'महं० वेजलदेवी' (,, ,, द्वितीय ,,)

खण्ड आठवां—

१ 'महं० तेजपालः ॥ श्री सूत्र वरसाकारित' (महामंत्री वस्तुपाल का भाई, यह मूर्त्ति भी सिलावट वरसा ने ही बनाई है)

२ 'महं० श्री अनुपमदेव्याः' (महामंत्री तेजपाल की स्त्री)

खण्ड नववां—

१ महं० 'श्री जितसी' (जैत्रसिंह) (मं० वस्तुपाल— ललितादेवी का पुत्र)

२ 'महं० श्री जेतलदे' (मं० जैत्रसिंह की प्रथम स्त्री)

३ 'महं० श्री जंमणादे' (मं० जैत्रसिंह की दूसरी स्त्री)
४ 'महं० श्री रूपादे' (,, ,, तीसरी ,,)

खण्ड दसवां—

१ 'महं०श्री सुहडसीह' (मं० तेजपाल-सुहडादेवी का पुत्र)
२ 'महं० श्री सुहडादे' (मं० सुहडसिंह की प्रथम स्त्री)
३ 'महं० श्री सलषणादे' (,, ,, द्वितीय ,,)‡

---

‡ प्रथम खंड में आचार्य श्री उदयप्रभसूरिजी की खड़ी मूर्त्ति के दोनों तरफ पैरों के पास साधुओं की दो छोटी खड़ी मूर्त्तियाँ खुदी हैं। एक साधु बगल में ओघा (रजोहरन) लिये हाथ जोड़ कर खड़ा है। दूसरा साधु दाहिने हाथ में बिना मोगरे का सादा दंडा और वाम हाथ में ओघा रक्खे हुए है और दाहिने हाथ की तरफ कमर के कंदोरे—मेखला में मुहपत्ती लगा रखी है।

उदयप्रभसूरि की मूर्त्ति के पास आचार्य्य श्री विजयसेनसूरि की खड़ी मूर्त्ति के पैर के पास दोनों तरफ एक २ छोटी मूर्त्ति बनी हैं। दाहिने पैर की तरफ हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रावक की मूर्त्ति मालूम होती है। बाँयें पैर की तरफ साधुजी है। इनके एक हाथ में ओघा और दूसरे हाथ में दंडा है।

इसी प्रकार दस खंडों में रही हुई खड़ी श्रावक-श्राविकाओं की बड़ी २९ मूर्त्तियों के पैरों के पास कुल ४३ छोटी खड़ी स्त्री-पुरुषों की मूर्त्तियाँ खुदी हैं। कई एक मूर्त्तियों में हाथ जोड़े हुए हैं, कई मूर्त्तियों के हाथों में कलश, फल, चामर, पुष्पमालादि पूजा के योग्य वस्तुएँ हैं। इन मूर्त्तियों में से मात्र सीतादेवी की मूर्त्ति के पैर के पास पुरुष की एक छोटी मूर्त्ति पर 'महं श्री आसण' लिखा है। इस लेख से यह मालूम होता है

इस प्रकार हस्तिशाला के अन्दर परिकर वाले काउस्सग्गिये ४, परिकर वाली मूर्त्तियाँ ११, आचार्यों की खड़ी मूर्त्तियाँ २, श्रावकों की खड़ी मूर्त्तियाँ १०, श्राविकाओं की खड़ी मूर्त्तियाँ १५ और सुन्दर हाथी १० हैं। इस हस्तिशाला का निर्माण महामंत्री तेजपाल ने ही कराया है ‡।

देहरी नं० २६ में मूलनायक श्री (सीमंधर स्वामी) आदीश्वर भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० २७ में मूलनायक श्री (विहरमान युगंधर जिन) श्रीबाहु स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० २८ में मूलनायक श्री (विहरमान बाहु जिन) महावीर स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

कि—मन्त्री सोम-सीतादेवी को अश्वराज (आसराज) के अतिरिक्त एक दूसरा आसण नाम का भी पुत्र होगा। अथवा आसराज व आसण इन दोनों नाम में विशेष अन्तर नहीं होने से आसराज का ही यह संक्षिप्त नाम हो और वह बहुत मातृभक्त था, ऐसा सूचित करने के लिये माता के चरण के पास उसकी मूर्त्ति बनाई गई हो।

‡ मन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल और उनके कुटुम्ब के लिये पृ० १०७ से ११२ तक, तथा आचार्य्य श्री विजयसेन सूरि के लिये पृ० ११२ व ११६ देखो।

देहरी नं० २६ में मूलनायक श्री (विहरमान श्रीसुबाहु जिन) शाश्वत श्री ऋषभ जिन की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ३० में मूलनायक श्री (शाश्वत श्री ऋषभ-देव जिन) विहरमान श्री सुबाहु जिन की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ३१ में मूलनायक श्री (शाश्वत श्री वर्द्धमान जिन) शीतलनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ३२ में मूलनायक श्री (तीर्थमर [तीर्थ-कर ?] देव)..................की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। (नं० ३१-३२ की दोनों देहरियाँ एक साथ हैं)।

देहरी नं० ३३ में मूलनायक श्री (पार्श्वनाथ) पार्श्वनाथजी की फणायुक्त परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्तियाँ २, कुल मूर्त्तियाँ ३ हैं।

देहरी नं० ३४ में मूलनायक श्री (शाश्वत चंद्रानन देव) महावीर स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ३५ में मूलनायक श्री (शाश्वत श्री वारिषेण देव) महावीर स्वामी सहित परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ हैं। (नं० ३४ और ३५ देहरियाँ एक साथ हैं)।

देहरी नं० ३६ में मूलनायक श्री (आदिनाथ) आदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। एक छोटा परिकर खाली है, उसमें बिंब नहीं है। एक तरफ श्री पार्श्वनाथ भगवान् के परिकर के नीचे की गादी के बाँयें हाथ की ओर का टुकड़ा है, जिस पर विक्रम सम्वत् १३८९ का अधूरा लेख है।

देहरी नं० ३७ में मूलनायक श्री (अजितनाथ) अजितनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। एक तरफ परिकर के नीचे की गादी का थोड़ा भाग है। जिस पर संवत् विना का त्रुटित-अधूरा लेख है।

देहरी नं० ३८ में (पबासण ऊपर के और देहरी की बारसाख पर के लेख में मूलनायक श्री संभवनाथ, एक तरफ श्री आदिनाथ और दूसरी तरफ श्री महावीर स्वामी, इस प्रकार लिखा है।) मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान् आदि की परिकर वाली मूर्त्तियाँ ३ हैं।

देहरी नं० ३९ में (पबासण और देहरी के बारसाख पर के लेख में मूलनायक श्री अभिनंदन, एक ओर श्री शांतिनाथ और दूसरी तरफ श्री नेमिनाथ, इस प्रकार नाम लिखे हैं।) मूलनायक श्री नेमिनाथ, श्री अजितनाथ और श्री चंद्रप्रभ स्वामी की परिकर वाली मूर्त्तियाँ ३ हैं।

देहरी नं० ४० में मूलनायक श्री (सुमतिनाथ) शाश्वत श्री वर्द्धमान जिन की परिकर वाली मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और पंचतीर्थी के परिकर वाले मूलनायक सहित चौबीसी का पट्ट १ है।

देहरी नं० ४१ में मूलनायक श्री (पद्मप्रभ) महावीर स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

इन देहरियों के बाद दक्षिण दिशा के दरवाजे के ऊपर का बड़ा खंड है। जिसमें दो बड़े शिलालेख बांयें ओर की दीवाल के साथ खड़े किये हैं। जिसमें एक शिला लेख काले पत्थर में प्रशस्ति का है व दूसरा शिला लेख सफेद पत्थर में है, जिसमें मंदिर की व्यवस्थादि का वर्णन है। मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल के चरित्र के संबंध में व इन मंदिरों के बारे में उपयोगी वस्तुयें बतलाने के लिये साधन रूप ये दोनों शिला लेख, कई एक ऐतिहासिक पुस्तकों व मासिकपत्र आदि में संस्कृत व अंग्रेजी लिपि में छप चुके हैं। इन शिला लेखों के सामने जिन-माताओं की चौबीसी का एक अधूरा पट्ट है।

देहरी नं० ४२ में मूलनायक श्री (सुपार्श्वनाथ) पद्मप्रभ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ व परिकर रहित मूर्त्ति १, कुल प्रतिमायें २ हैं।

देहरी नं० ४३ में मूलनायक श्री.......की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४४ में मूलनायक श्री (सुविधिनाथ) सुमतिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और विना परिकर की मूर्त्ति १, कुल प्रतिमायें २ हैं।

देहरी नं० ४५ में मूलनायक श्री (शीतलनाथ) अर-नाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४६ में मूलनायक श्री (श्रेयांसनाथ) श्री महावीर स्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४७ में मूलनायक श्री (वासुपूज्य)........ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४८ में मूलनायक श्री (विमलनाथ) ....भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

मूल गंभारे के पीछे (बाहर की तरफ) तीनों दिशाओं की दीवारों में एक एक ताख़-आला है। प्रत्येक आले में भगवान् की एक एक मूर्त्ति है। उनमें दो मूर्त्तियां परिकर वाली हैं। दक्षिण दिशा के ताख़ में परिकर रहित मूर्त्ति है। उत्तर की ओर के ताख़ की मूर्त्ति और परिकर ये दोनों

एक ही सादे पत्थर में बने हैं। मूर्त्ति पर चूने का प्लस्तर किया गया है। मूर्त्ति परिकर से अलग नहीं है।

लूणवसही मंदिर के दक्षिण दिशा के प्रवेश द्वार के बाहर, अंदर जाते बांयी तरफ के ताख़ में श्री अंबिका देवी की एक मूर्त्ति है और दाहिने तरफ के ताख़ में यक्ष की एक मूर्त्ति है‡।

इस मंदिर की कुल मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैं—

(१) पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्तियाँ ४
(२) सादे परिकर वाली मूर्त्तियाँ ७२
(३) परिकर रहित मूर्त्तियाँ ३०
(४) काउस्सग्गिये ६
(५) तीन चौवीसियों का पट्ट (नवचौकी वाला) १
(६) एक चौवीसी के पट्ट ३
(७) जिन-माता चौवीसी का पट्ट १ पूरा, १ आधा
(८) अश्वावबोध तीर्थ और समली विहार तीर्थ का पट्ट १ (देहरी नं० १९ में)

---

‡ यह १ मुख, २ नेत्र और ४ भुजा वाली मूर्त्ति है। इसके ऊपर के एक हाथ में गदा व दूसरे हाथ में मुग्दर है। नीचे के दो हाथों में रही हुई वस्तुएँ व वाहन पहिचान में नहीं आने से यह मूर्त्ति किस यक्ष की है, मालूम नहीं होसका।

(६) तीनं चौमुखजी सहित मेरु पर्वत की रचना १

(१०) चौबीसी में से अलग हुए भगवान् की छोटी मूर्त्तियाँ २

(११) धातु की पंचतीर्थियें २

(१२) धातु की एकतीर्थियें ३

(१३) मूलनायकजी रहित चार तीर्थियों का परिकर १

(१४) श्रीराजीमती की मूर्त्ति १ (गूढ़ मंडप में)

(१५) आचार्य्य महाराज की मूर्त्तियाँ २ (हस्तिशाला में)

(१६) श्रावक की मूर्त्तियाँ १० (,,)

(१७) श्राविकाओं की मूर्त्तियाँ १५ (,,)

(१८) श्रावक-श्राविका के युगल (जोड़े) ३

(१९) अंबिका देवी की मूर्त्तियाँ २ (१ देहरी नं० २४ में और १ दरवाजे के बाहर।

(२०) यक्ष की मूर्त्तियाँ २ (१ गूढ मंडप में व १ दरवाजे के बाहर)

(२१) खाली परिकर २

(२२) सुन्दर नकशी वाले संगमरमर के हाथी १०

भावों की रचना—(१-२) लूण वसहि मंदिर के गूढ मंडप के मुख्य द्वार के बाहर (नव चौकियों में)

दरवाजे के दोनों तरफ अत्यन्त मनोहर व अनुपम नकशी वाले दो बड़े गोख–ताख हैं, जो 'देरानी-जेठानी के गोखले' इस नाम से मशहूर हैं। परन्तु वास्तव में वे ताख देरानी जेठानी ने नहीं बनवाये हैं। वस्तुपाल के भाई, इस मंदिर के निर्माता तेजपाल ने अपनी द्वितीय पत्नी सुहड़ादेवी की स्मृति में ये बनवाये हैं। इनकी प्रतिष्ठा पीछे से वि० सं० १२९७ के वैसाख सुदि ४ गुरुवार को हुई है। दोनों ताखों पर लेख है। इन दोनों ताखों में बहुत सूक्ष्म और अपूर्व नकशी है। जिसमें कहीं २ भगवान्, साधु, मनुष्य, और पशु पक्षियों की छोटी २ मूर्त्तियाँ खुदी हैं। वास्तव में हिंदुस्थानी प्राचीन शिल्प का एक अनुपम नमूना है। इन दोनों ताखों के ऊपर लक्ष्मी देवी की एक २ सुन्दर मूर्त्ति बनी है।

(३) नवचौकी में एक तरफ तीन चौवीसियों का एक बड़ा पट्ट है। पट्ट वाले ताख के छज्जे पर लक्ष्मी देवी की सुन्दर मूर्त्ति बनी है।

(४) नवचौकी के दाहिनी तरफ के दूसरे (बीच के) गुम्बज में फूल की लाइन के ऊपर की गोल लाइन में भगवान् की एक चौवीसी खुदी हुई है।
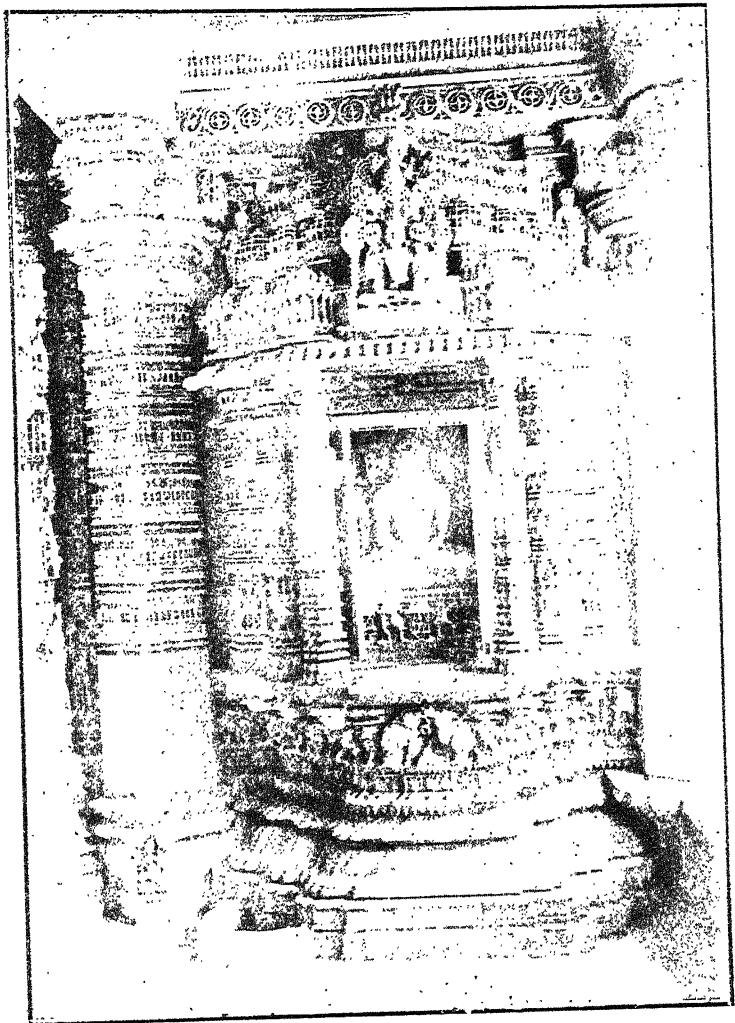
लूणवसही, नव चौकी में दाहिनी ओर का गवाक्ष (आला-ताक).

D. J. Press, Ajmer.

(५) नवचौकी के दाहिनी ओर के तीसरे गुम्बज के चारों कोनों में दोनों तरफ़ हाथी सहित सुन्दर आकृति वाली चार देवियाँ हैं और चारों दिशाओं में प्रत्येक देवी के बीच में भगवान् की छः छः मूर्त्तियाँ (अर्थात् सब मिल के २४ मूर्त्तियाँ) बनी हैं।

(६) रंग मंडप के बीच के बड़े गुम्बज में विमल वसहि की भांति प्रत्येक स्थंभ के सिरे पर भिन्न २ वाहनों व शस्त्रों वाली अत्यन्त रमणीय १६ ‡ विद्या देवियों की खड़ी मूर्त्तियाँ हैं।

(७) उन सोलह विद्यादेवियों के नीचे की सोलह नाटकनियों की कतार में ही एक पंक्ति में ३ चौबीसियों अर्थात् भगवान् की ७२ मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

(८) इसके नीचे एक किनारी पर पूरी लाइन में आचार्य महाराज–साधुओं की ६० मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

(६) रंगमंडप के बीच वाले बड़े मंडप के पहिले दो कोनों में ऊपर सुन्दर आकृति वाली इन्द्रों की मूर्त्तियाँ खुदी हुई मालूम होती हैं।

---

‡ १६ विद्यादेवियों के नाम इस पुस्तक के पृष्ठ ६४ के नोट में देखिये।

(१०) रंगमंडप के दाहिनी तरफ के सुन्दर नकशी वाले दो खंभों में भगवान् की चौबीस चौबीस मूर्त्तियाँ खुदी हैं ।

(११) रंगमंडप और भमती के बीच में, पश्चिम दिशा की छत के तीन खंडों में से, बीच के खंड के सिवाय, दोनों खंडों में पश्चिम ओर की लाईनों में बीच बीच में अंबाजी की एक एक मूर्त्ति खुदी है ।

(१२) रंगमंडप व दाहिनी तरफ की भमती के बीच में दाहिनी बाजू के पाहिले खंड के नकशी वाले पहिले गुम्बज में श्रीकृष्ण–जन्म का दृश्य है‡। तीन गढ़ व बारह दरवाजे वाले महल के मध्य भाग में पलंग पर देवकी माता सो रही है। श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। बगल में बालक सो रहा है। एक स्त्री पंखा कर रही है। एक दासी पास में बैठी है। सब दरवाजे बंद हैं। तमाम दरवाजों के पास व तीनों गढ़ों में हाथियों, देवियों, सैनिकों और संगीत के पात्र वगैरह सुन्दर रीति से खुदे हैं।

---

‡ इस पुस्तक के पृष्ठ ८५ से ९० की नोट से वाचक समझ गये होंगे कि—श्रीकृष्ण के जन्म के समय कंस ने वसुदेव के महल पर पहरा रक्खा था। इसी कारण से तमाम दरवाजों के किंवाड़ बंद हैं, और दरवाजों के चारों तरफ हाथी व सैन्यादि है।
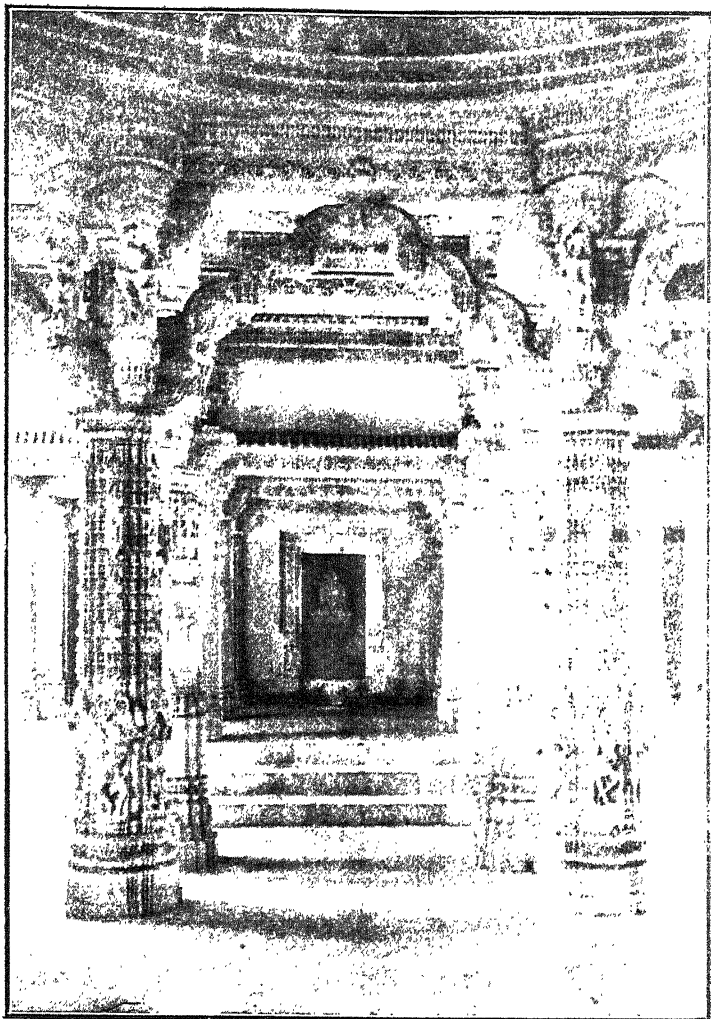
लूण-वसही, दृश्य-१०, और भीतरी हिस्से की सुंदर कोरणी का दृश्य
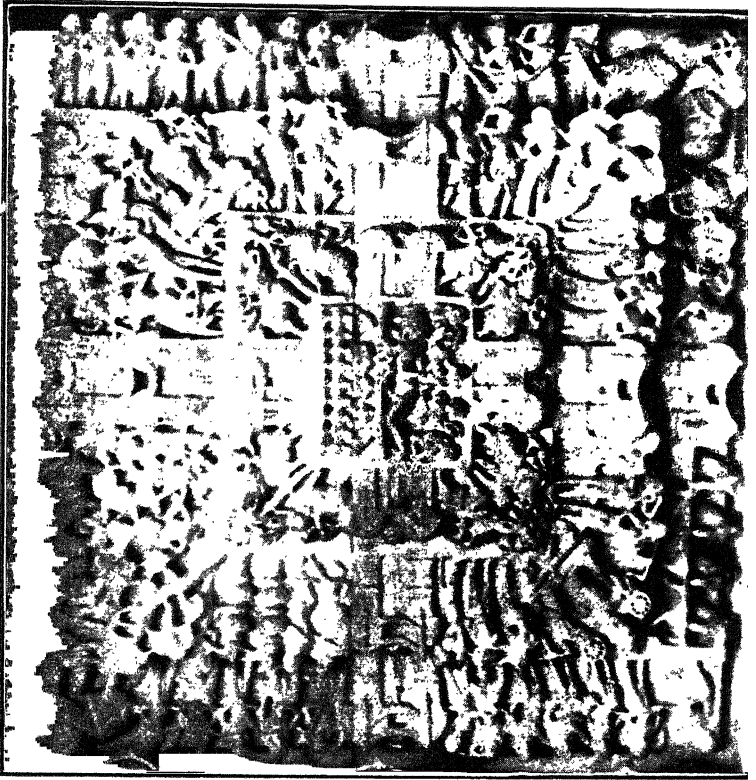
D. J. Press, Ajmer.

लूण-वसही, दृश्य-१२.

(१३) उपर्युक्त दृश्य के पास ही, नकशी वाले दूसरे (बीच के) गुम्बज के नीचे की लाइनों में दोनों तरफ प्रत्येक के सामने निम्नानुसार श्रीकृष्ण-गोकुल का भाव है‡। (क) उसमें पूर्व तरफ की लाईन के एक कोने के

‡ वसुदेव के महल पर कंस का पहरा होने पर भी देवकी की आग्रह युक्त विनति से वसुदेव, कृष्ण को गुप्त रीति से गोकुल ले गये। वहां पर नंद और उसकी स्त्री यशोदा को पुत्र के तौर पर उसका पालन पोषण करने के लिये छोड़ आये। नंद व यशोदा के संरक्षण में, गोकुल में श्रीकृष्ण के बाल्यकाल को व्यतीत करने का यह दृश्य है। श्रीकृष्ण की झोली बंधी है उस झाड़ के नीचे दो आदमी बैठे हैं। शायद वे नंद और यशोदा ही हों अथवा अन्य कोई गौ चरानेवाले हों। एक छोटा और एक बड़ा पशु पालक आड़ी और खड़ी लकड़ी रक्खे हुए खड़े हैं। वे शायद कृष्ण और बलभद्र (राम) हों या दूसरे कोई पशु पालक हों। पहिले वसुदेव ने मुसाफिरी के वख्त सूर्पक नामक विद्याधर को लड़ाई में मार डाला था, उसका बदला लेने के लिये उसकी शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ, वसुदेव को हानि पहुंचाने में असमर्थ होने के कारण गोकुल में आई और श्रीकृष्ण को मार डालने के लिये एक ने उसे गाड़ी के नीचे दबाया और दूसरी ने अपने विषलिप्त स्थन को कृष्ण के मुख में रक्खा। (जैन मान्यतानुसार) कृष्ण के सहायक-रक्षक देवों ने, (हिन्दू मान्यतानुसार कृष्ण ने स्वयं) उस गाड़ी के जरिये उन दोनों विद्याधरियों को मार डाला।

पुन: किसी समय सूर्पक विद्याधर का पुत्र, अपने पिता और दोनों बहिनों का बैर लेने के लिये श्रीकृष्ण को मृत्यु शरण करने के हेतु गोकुल में

आरंभ में एक दरख्त है। इस वृक्ष की डाली में बंधी हुई झोली में श्रीकृष्ण–बालक सो रहा है। दरख्त के नीचे दो आदमी बैठे हैं। पास में एक छोटा अहीर अपने माथे के पीछे गरदन पर रक्खी हुई आड़ी लकड़ी को दोनों हाथों से पकड़ कर खड़ा है। ऊपर अभराई (टाँड) में घी, दूध, दही की पांच दोनियाँ (मटकियां) हैं। पास में बड़ा पशु-पालक–अहीर गांठें युक्त सुन्दर लकड़ी खड़ी रखकर उसके सहारे खड़ा है। पास में पशु चर रहे हैं। दो स्त्रियाँ छाछ बना रही हैं। उसके पास देवकी या यशोदा, श्रीकृष्ण व

आया। वहां पर अर्जुन नामक दो वृक्षों के बीच में श्रीकृष्ण को लाकर मार डालने का प्रयत्न करने लगा। उसी समय (जैन मान्यतानुसार) कृष्ण के सहायक देवों ने, (हिन्दु मान्यतानुसार स्वयं) उन दोनों वृक्षों को उखाड़ डाले और उन्हीं वृक्षों द्वारा उस विद्याधर को भी यमराज का अतिथि बना दिया।

किसी समय कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिये पद्मोत्तर नामक श्रेष्ठ हस्ति को श्रीकृष्ण के सामने छोड़ा। हाथी टेढ़ा होकर श्रीकृष्ण को मारना चाहता ही है कि इतने में कृष्ण ने दंतशूल खींचकर मुट्ठी के प्रहार से हाथी को मार डाला।

इस प्रकार गोकुल, पशु पालक का मकान, पशुओं का चरना और कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का अत्यन्त मनोहर दृश्य इसमें खुदा हुआ है।

सामने की तरफ राजा, राजमहल, हस्तिशाला, अश्वशाला और मनुष्यादि हैं, यह राजा वसुदेव के राजमहल का दृश्य होगा।

लूण-वसहि, वसुदेव दरबार,

D. J. Press, Ajmer.

लूण-वसहि, श्रीकृष्ण-गोकुल, दृश्य—१३ क.

छिन्ननासा पुत्री को गोद में लेकर बैठी है। उसके पास वाले दो झाड़ों में झूला बंधा है, जिसमें से बाहर कूदने के लिये श्रीकृष्ण प्रयास करते हैं। उस झूले के पास एक कुछ झुका हुआ हाथी खड़ा है। उस पर श्रीकृष्ण मुष्टि-प्रहार कर रहे हैं। पास में श्रीकृष्ण दोनों तरफ के वृक्षों को बाहुओं के बीच दबाकर खड़े हैं। (ख) पश्चिम दिशा की लाईन के प्रारंभ के एक कोने में सिंहासन पर छत्र के नीचे राजा बैठा है। पास में हजूरिये व अंगरक्षक खड़े हैं। पीछे हस्तिशाला व अश्वशाला है। बाद में राजमहल है, जिसके अन्दर और दरवाजे में लोग खड़े हैं।

(१४) उसके पास के दूसरे खंड के नकशीवाले बीचले गुम्बज के नीचे पूर्व और पश्चिम की पंक्ति के मध्य में भगवान् की एक एक मूर्त्ति खुदी है।

(१५) गूढ़ मंडप के दाहिनी तरफ के दरवाजे के बाहर की चौकी के दोनों खंभों पर भगवान् की आठ आठ मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

(१६) लूणवसहि मंदिर के पश्चिम–मुख्यद्वार के तीसरे गुम्बज के किनारे के दो स्थंभों में आठ आठ जिन मूर्त्तियाँ अंकित हैं।

(१७) उसी मुख्य द्वार के तीसरे गुम्बज के नीचे की लाईन में दोनों तरफ अंबिका देवी की एक एक मूर्त्ति खुदी है।

(१८) देहरी नं० १ के पहिले गुम्बज में अंबिका देवी की मूर्त्ति खुदी है। इस मूर्त्ति का बहुतसा भाग खंडित है। देवी के दोनों तरफ एक एक झाड़ खुदा है। वृक्ष के धड़ के पास एक ओर एक श्रावक और सामने की तरफ एक श्राविका हाथ जोड़कर खड़ी है।

(१९) देहरी नं० ९ (मूलनायक श्री नेमिनाथजी) के दूसरे गुम्बज में द्वारिका नगरी और समवसरण का दृश्य है,‡ उसके ठीक मध्य में तीन गढ वाला समवसरण है। जिसके मध्य में जिन मूर्त्ति युक्त देहरी है। समवसरण की एक तरफ एक लाईन में साधुओं की १२ बड़ी और दो छोटी मूर्त्तियाँ हैं। दूसरी तरफ एक लाईन में श्रावकों और दूसरी लाईन में श्राविकायें हाथ जोड़ कर बैठी हैं। (प्रत्येक साधु के एक हाथ में दंडा, एक हाथ में मुंहपत्ति और

‡ इस देहरी में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान हैं। इस कारण से यह दृश्य उन्हीं के संबंध में होना चाहिये। जिससे यह द्वारिका नगरी, गिरिनार पर्वत और समवसरण का दृश्य प्रतीत होता है। गुम्बज के मध्य भाग में तीन गढ वाला समवसरण है। वह श्री नेमिनाथ भगवान् द्वारिका नगरी में पधार कर समवसरण में बैठ कर उपदेश देते थे, उसका दृश्य है।

D. J. Press, Ajmer.

लूणा-वसही, दृश्य-१६.
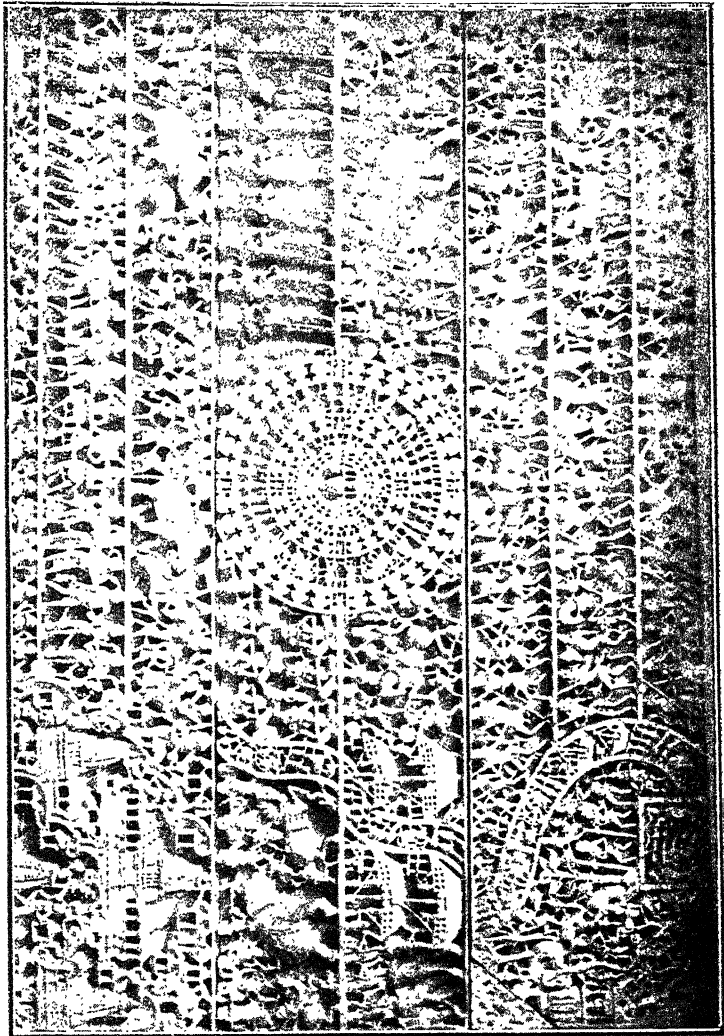
बगल में ओघा है। गोड़े से नीचे पिण्डली तक कपड़ा पहिने है। दाहिना हाथ खुला है। कंधे पर कंबल नहीं है। तीन साधुओं के हाथ में डोरे वाली एक एक तरपणी है)।

गुम्बज के एक कोने की चौकड़ी में समुद्र का दिखाव है। उस समुद्र में से खाड़ी निकाली है, जिनमें जलचर

और साधु-साध्विएँ तथा श्रावक-श्राविकाएँ वगैरह भगवान् के दर्शनार्थ समवसरण की तरफ जाते हैं व उपदेश सुनने के लिये बैठे हैं, वह भी उस में अच्छी तरह दिखलाया गया है।

उस गुम्बज के एक तरफ के कोने में; जलचर जीवों से युक्त समुद व खाड़ी, किनारे पर जहाज, किनारे के आस पास जङ्गल व उस जङ्गल में मंदिर आदि हैं। यह सारा दृश्य द्वारिका नगरी के बंदरगाह का है।

उसी गुम्बज के दूसरी तरफ के एक कोने में; एक पर्वत पर शिखरबंध चार मंदिर हैं। उनके आसपास छोटी छोटी देहरियाँ तथा वृक्षादि हैं। मंदिर के बाहर भगवान् काउस्सग्ग ध्यान में खड़े हैं। यह सब गिरनार पर्वत का दृश्य है और काउस्सग्ग ध्यान में खड़े हुए भगवान् नेमिनाथ हैं। साधु, श्रावक, हाथी, घोड़े, वाजिंत्र, नट मंडली और सारा सैन्य मंदिर अथवा समवसरण की तरफ जाते हैं। यह सब श्रीकृष्ण महाराज धूमधाम पूर्वक भगवान् नेमिनाथ को वंदना करने के लिये जाने का दृश्य है। पहिले द्वारिका नगरी १२ योजन लंबी और ९ योजन चौड़ी थी। इससे ऐसा मालूम होता है कि—गिरनार पर्वत और द्वारिका नगरी पास ही पास होंगे।

जीव क्रीड़ा कर रहे हैं। खाड़ी में जहाज भी है। समुद्र के किनारे के आसपास जङ्गल का दृश्य है। जङ्गल के एक प्रदेश में एक मंदिर व भगवान् की प्रतिमा युक्त एक देहरी है। खाड़ी के दोनों किनारे पर दो दो जहाज हैं। यह सारा दृश्य द्वारिका नगरी का है।

गुम्बज के दूसरे कोने में गिरिनार पर्वतस्थ मंदिरों का दृश्य है। शिखर युक्त चार मंदिर हैं। मंदिर के बाहर भगवान् की काउस्सग्ग ध्यान की खड़ी मूर्त्ति है। मंदिर छोटी २ देहरियाँ तथा वृक्षों से घिरे हुए हैं। मंदिरों के पास की बीच की पंक्ति में पूजा की सामग्री—कलश, फूल की माला, धूपदाना और चामरादि हाथ में लेकर श्रावक लोग मंदिरों की ओर जाते हैं। उनके आगे छः साधु भी हैं। जिनके हाथ में ओघा व मुँहपत्ति के अतिरिक्त एक के हाथ में तरपणी और एक के हाथ में दंडा है। अन्य सब लाईनों में हाथी, घोड़े, पालकी, नाटक, वाजिंत्र, पैदल सेना तथा मनुष्यादि हैं। वे सब मंदिर की अथवा समवसरण की तरफ जिन दर्शनार्थ जा रहे हों, ऐसा सुंदर दृश्य खुदा हुआ है।

(२०-२१) देहरी नं० १० व ११ के पहिले पहिले गुम्बज में हंस के वाहनवाली देवी की एक २ मूर्त्ति बनी है।
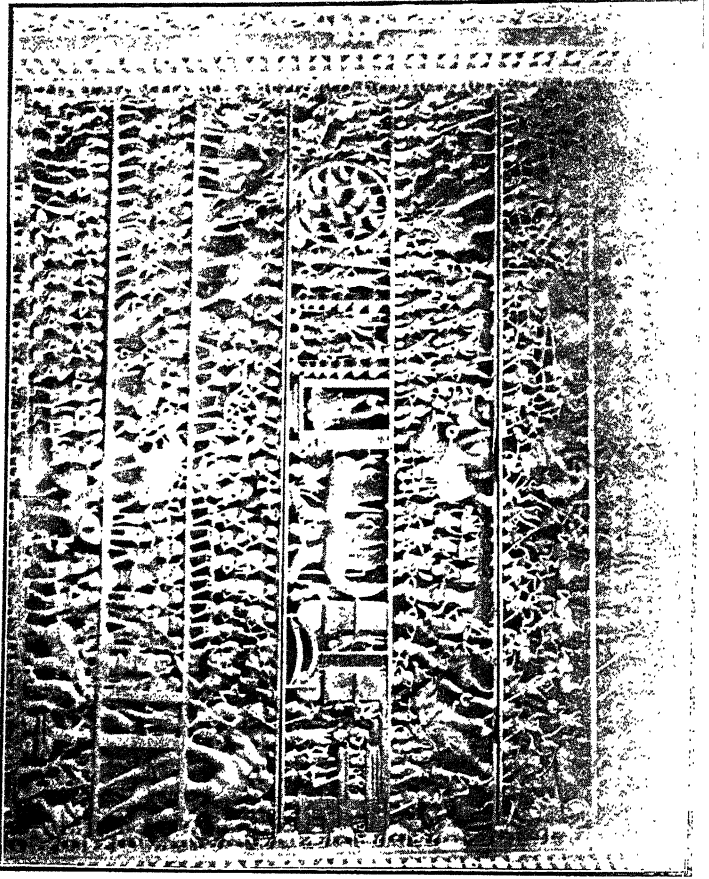
लूण-वसही, दृश्य—२२.

D. J. Press, Ajmer.

(२२) देहरी नं० ११ के दूसरे गुम्बज में श्री अरिष्ट नेमिकुमार की बरातादि का दृश्य है ‡। गुम्बज में सात पंक्तियाँ हैं। उसमें नीचे से पहिली पंक्ति में हाथी, घोड़े

---

‡ अरिष्ट नेमिकुमार एवं श्रीकृष्ण दोनों साथ ही द्वारिका में रहते थे। श्रीकृष्ण वासुदेव एवं जरासंध प्रति-वासुदेव के आपस में लड़ाई हुई थी, उस समय युद्ध में नेमिकुमार भी शरीक थे। श्रीकृष्ण, जरासंध का उच्छेद करके तीन खंड के स्वामी हुए। नेमिकुमार बाल्य-काल से ही संसार पर उदासीन होने से विवाह करने के लिये इन्कार करते थे। माता-पिता व श्री कृष्णादि परिजन का अत्यन्त आग्रह होने पर नेमिकुमार चुप रहे। इन लोगों ने, यह समझ कर कि—नेमिकुमार शादी करने के लिये सहमत हैं, उग्रसेन राजा की लड़की राजीमती के साथ सगाई करके विवाह की तैयारियाँ आरंभ की। लग्न के दिन नेमिकुमार रथ पर बैठ कर बरात को साथ लेकर धूमधाम के साथ श्वसुर—महल के दरवाजे पर पहुंचे। राजीमती अन्य सहेलियों के साथ अपने स्वामी की बरात की शोभा देख रही है। उस समय नेमिकुमार की दृष्टि सहसा एक पशुशाला की ओर गई, जिसमें इस लग्न के निमित्त होने वाले भोज के लिये हजारों पशु एकत्रित किये गये थे। नेमिकुमार के दिल में आघात पहुंचा 'एक जीवके विवाह आनंद के लिये हजारों जीवों के आनंद को लूट लेना—उनको यमराज के द्वार पर पहुंचाना, ऐसे विवाह को धिक्कार है।' बस, तुरन्त ही पशुओं को पशुगृह से मुक्त कराकर रथ को वापिस फिराया और अपने महल पर चले गये। माता—पिता को समझा कर आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा के लिये वार्षिक दान देना प्रारंभ किया। प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्रायें दान में दी जाती थीं। एक साल तक

और आगे नाटक हैं। दूसरी में श्रीकृष्ण व जरासंध (वासुदेव-प्रतिवासुदेव) का युद्ध चल रहा है, जो शंखेश्वर के आसपास हुआ था। उसमें एक रथ में श्री नेमिकुमार भी विराजमान हैं। तीसरी पंक्ति में नेमिकुमार की बरात का दृश्य है। चौथी लाईन के एक कोने में उग्रसेन राजा का महल है, जिसके ऊपरी हिस्से में दो सखियों सहित राजीमती खड़ी है। राज-प्रासाद में मनुष्य हैं और उसके द्वार में द्वारपाल खड़ा है। दरवाजे के पास अश्वशाला है, जिसमें सईस दो घोड़ों को मुंह में हाथ डाल कर खिला रहे हैं। दो घोड़े नीची गरदन करे चर रहे हैं। अश्वशाला के पीछे हस्तिशाला है। पीछे चौरी (लग्न मंडप में खास स्थान) बनी है। जिसके आस पास स्त्री-पुरुष खड़े हैं। इसके पीछे पशुशाला है। तत्पश्चात्

दान देकर गिरनार पर्वत पर जाकर उत्सव पूर्वक अपने हाथों से पंच मौष्टिक लोच कर लिया। दीक्षा लेने के ५४ दिन बाद ही गिरिनार पर्वत पर भगवान् को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान प्राप्ति के बाद बहुत अरसे तक लोगों को उपदेश देते हुए आयुष्य पूर्ण होने के समय गिरिनार पर पधारे और शुभ ध्यान की श्रेणी में लीन होकरसमस्त कर्मों का क्षय करके मुक्ति को प्राप्त किया। विशेष विवरण के लिये इस पुस्तक के पृष्ठ ७८-८१ की नोट; 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' पर्व ८ के ५, ६, १०, ११ और १२ वें सर्ग तथा 'श्री नेमिनाथ महा काव्य' वगैरह देखिये।

लूण-वसही, दृश्य—२२.

D. J. Press, Ajmer.
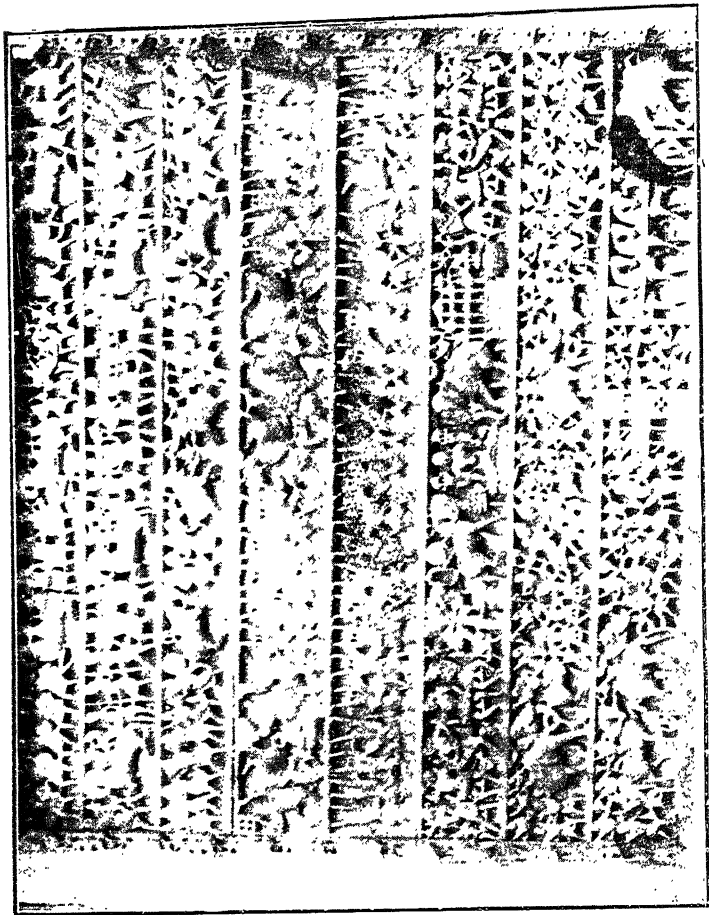
नेमिकुमार का रथ है। छठी लाईन में पहिले अश्व-शाला है। पश्चात् हस्तिशाला, तदनन्तर सिंहासन पर नेमिकुमार बैठे हैं। पास में ही द्रव्यराशि पड़ी है, जिसमें से नेमिकुमार वार्षिकदान दे रहे हैं, फिर वे उत्सव पूर्वक दीक्षा ग्रहण करने के लिये प्रयाण करते हैं। सातवीं लाईन के आरंभ में भगवान् के लोच का दृश्य है। इसके बाद हाथी, घोड़े और पैदल सैन्यादि हैं। यह भगवान् की दीक्षा का वर-घोड़ा होगा। पांचवीं पंक्ति में भगवान् को वंदन करने के लिये सवारी जा रही है, क्योंकि उस लाईन के अंत में भगवान् काउस्सग्ग ध्यान में खड़े हैं।

(२३) देहरी नं० १४ [मूलनायक श्री (शांतिनाथ भगवान्) अभी सुपार्श्वनाथ भगवान्] के दूसरे गुम्बज में आठ लाईनों में सुंदर दृश्य खुदा है। ‡ उसमें नीचे से

‡ यह भाव-दृश्य श्री शान्तिनाथ भगवान् विषयक होना चाहिये। क्योंकि—पहिले इस देहरी में शान्तिनाथ भगवान् की प्रतिमा मूलनायकजी के तौर पर विराजमान थी। परन्तु यह दृश्य किस प्रसंग का है, यह बराबर समझ में नहीं आता। १४ स्वप्न, चक्रवर्त्ती के १४ रत्न एवं अष्ट मंगलिक भी पूरे नहीं हैं—अधूरे हैं। हाथी और घोड़े के ऊपर खुदे हुए चंद्र और सूर्य; वृक्ष, पुष्पमाला, खाली सिंहासन आदि के दृश्य किस प्रयोजन से दिये हैं, इसका ठीक पता नहीं चलता। शायद शांतिनाथ भगवान् के पूर्व भवों के अथवा चक्रवर्त्तित्व के किसी प्रसंग का यह दृश्य बनाया गया हो।

पहिली लाईन में राजा की हस्तिशाला, इसके बाद अश्व-शाला तदनन्तर राजमहल है। राजमहल के बाहर राजा सिंहासन पर बैठा है। एक आदमी उस पर छत्र रखे है व एक मनुष्य पंखा डाल रहा है। तत्पश्चात् सैनिक-हाथी-घोड़े वगैरह हैं। तीसरी लाइन के बीच में हस्ति का अभिषेक एवं नवनिधि सहित लक्ष्मीदेवी है। उसकी एक तरफ तिपाई पर रत्नराशि अथवा अश्व-आहार (चारा-घास) है। पास में सूर्य का सप्तमुखी घोड़ा है। घोड़े के ऊपर सूर्यदेव हैं। घोड़े के पास फूल की माला है। उसके पास एक वृक्ष है। उसके दोनों तरफ दो खाली आसन हैं। उस ही लक्ष्मीदेवी की दूसरी तरफ एक सुंदर हाथी है। उसके ऊपर चंद्र है। उस हाथी के समीप विमान अथवा महल है। उसके पास एक कुंभ है। दोनों तरफ के शेष हिस्सों में गीत-बाजे-नाटकादि हैं। अवशेष पंक्तियां हाथी, घोड़े, पैदल, पालकी, सैन्य, नाटक व संगीत के साधनादि से परिपूर्ण हैं।

(२४) देहरी नं० १६ के दूसरे गुम्बज में सात लाईनों में सुंदर दृश्य खुदा है। ‡ उसमें नीचे से पहिली लाईन के

---

‡ इस देहरी में पहिले श्री संभवनाथ भगवान् की प्रतिमा विराजमान थी और इस दृश्य के मध्यभाग में श्री पार्श्वनाथ भगवान् की काउस्सग्ग

लूण-वसही, दृश्य—२४.

D. J. Press, Ajmer.
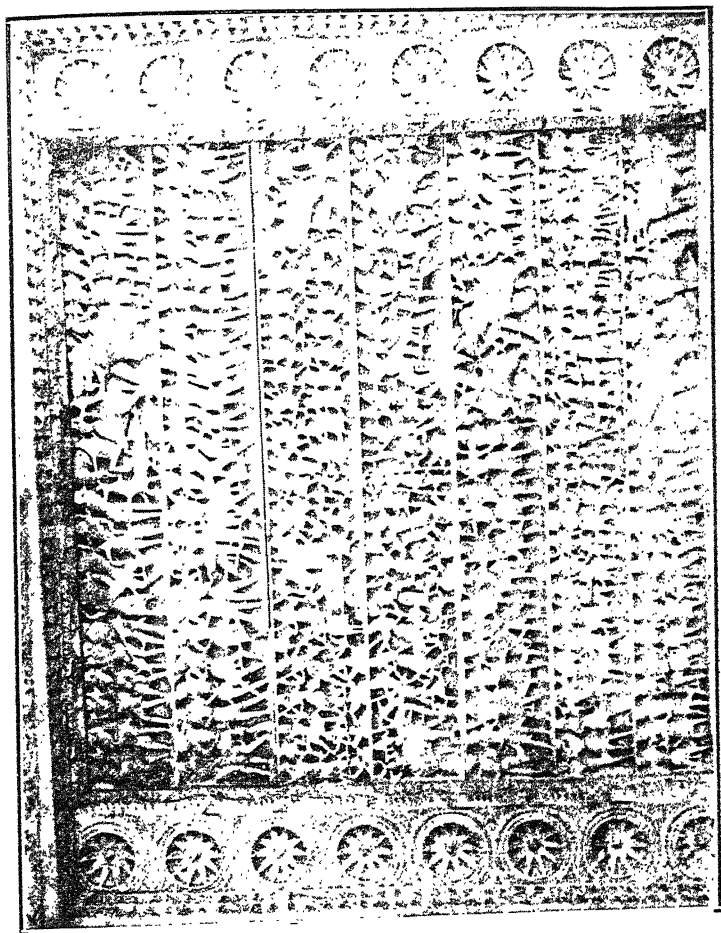
एक कोने में बिना सवार के हाथी, घोड़ा और हाथी हैं, उससे आगे के भाग में और दूसरी लाईन में भी स्त्री-पुरुष के युगल नाच रहे हैं। चौथी लाईन के बीच में श्रीपार्श्व-

---

ध्यान में एक खड़ी मूर्त्ति बनी हुई है। इससे यह अनुमान होता है कि-इन दोनों जिनेश्वरों में से किसी एक के (प्रायः पार्श्वनाथ भगवान् के ही) जीवन के किसी प्रसंग का यह भाव-दृश्य होना चाहिये। किन्तु यह दृश्य किस प्रसंग का है, यह स्पष्ट तौर से मालूम नहीं हो सका। तथापि यह दृश्य शायद 'हस्तिकलिकुण्ड' तीर्थ अथवा 'अहिछत्रा' नगरी की उत्पत्ति के प्रसंग का हो। उन तीर्थों की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है:—

अंग देश की चंपा नगरी में श्री पार्श्वनाथ भगवान् के समय में (आज से लेकर करीबन २७५० वर्ष पहिले) करकण्डु राजा राज्य करता था। उस चंपा नगरी के पास ही कादंबरी नाम की बड़ी अटवी में कलि नामक पर्वत था। उसकी तलहट्टी में कुण्ड नामक सरोवर था। वहाँ हस्तियूथाधिप-हाथियों का सरदार महीधर नामका एक हाथी रहता था। छद्मस्थावस्था में किसी समय पार्श्वनाथ भगवान् विचरते २-भ्रमण करते २ कुण्ड सरोवर के पास आकर काउस्सग्ग करके वहां खड़े रहे। उस समय वह हाथी वहाँ आया। भगवान् को देखकर उसको जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जिससे उसको यह मालूम हुआ कि—'पूर्वभव में मैं हेमंधर नामक वामन-ठिगना आदमी था। युवान् लोग मुझको देखकर बहुत हंसते थे। इस कारण से मैं एक समय एक झुके हुए वृक्ष की डाली के साथ गले में गठान् लगाकर मरने की तैयारी कर ही रहा था, कि-उतने में सुप्रतिष्ठ नामक श्रावक ने मुझको देख लिया। उसने मुझ से कारण पूछा। मैंने सब हाल कह दिया। उसने मुझको एक सुगुरु के पास लेजाकर जैनधर्म का ज्ञान कराया। मैंने यावज्जीव जैनधर्म का पालन किया और अंतिम

नाथ भगवान् काउस्सग्ग ध्यान में खड़े हैं। मस्तक पर सर्प की फना का छत्र है। उनके आसपास श्रावक वर्ग हाथों में कलश-हार-धूप दानादि पूजोपकरण लेकर खड़े हैं।

अवस्था में नियाणा बांधने के कारण मैं इस अटवी में हाथी के भव में पैदा हुआ हूँ।' इससे अब इस भगवान् की मैं सेवा करूं तो मेरा जन्म पवित्र हो जावे। ऐसा विचार करके वह हाथी हमेशा उस सरोवर में से सूंढ द्वारा शुद्ध जल व श्रेष्ठ कमल लाकर भगवान् की पूजा करने लगा। इस प्रकार वह हाथी आनंद पूर्वक भगवान् के दर्शन-पूजन के द्वारा अपने आत्मा को कृतार्थ करता हुआ श्रावक धर्म पालने लगा। इस वृत्तान्त से खुश होकर कई एक व्यंतर देव-देवियाँ वहाँ आकर, भगवान् की पूजा कर, भगवान् के सामने नृत्य करने लगे। चर पुरुषों के मुख से यह समाचार जानकर करकण्डू राजा परिवार सहित श्री पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शनार्थ सरोवर पर आया। वहाँ आने पर यह जान कर कि—'भगवान् विहार कर गये हैं', मन में बहुत दुःखी हुआ और सोचने लगा कि—'मैं पापी हूँ कि—जिससे मुझे भगवान् के दर्शन भी नहीं हुए। हाथी भाग्यशाली है कि—जिसने भगवान् की पूजा की।' राजा को शोकातुर देखकर धरणेन्द्र ने श्री पार्श्वनाथ भगवान् की ९ हाथ प्रमाण की प्रतिमा प्रकट की। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने भक्तिपूर्वक दर्शन-पूजा आदि किया। राजा ने वहीं पर मंदिर बनवा कर वह मूर्त्ति उसमें बिराजमान की और त्रिकाल पूजन एवं संगीतादि कराने लगा। इस तरह यह हस्ति-कलि-कुण्ड नामक तीर्थ लोगों में प्रसिद्ध हुआ। कलिकुण्ड व हस्तिकुण्ड नाम से भी यह तीर्थ पहिचाना जाता था। वह हाथी कालान्तर में शुभ भावना पूर्वक मृत्यु पाकर व्यन्तर देव हुआ। अवधि ज्ञान द्वारा हाथी भव का वृत्तान्त जानकर वह कलिकुण्ड तीर्थ का अधिष्ठायक देव हुआ।

अवशेष पंक्तियों में हाथी सवार, घुड़ सवार, पैदल लश्कर तथा नाटकादि का दृश्य खुदा हुवा होने से वह कोई

भगवद्-भक्तों की सहायता करने और अनेक चमत्कार दिखाने लगा, इस कारण से उस तीर्थ की महिमा खूब बढ़ी।

* * * * *

श्री पार्श्वनाथ भगवान्, छद्मस्थ अवस्था में विचरते २ किसी समय शिवापुरी के समीपवर्त्ति कौशाम्ब नामक बन में आकर कायोत्सर्ग पूर्वक ध्यान में खड़े रहे। उस समय नागराज धरणेन्द्र ने बड़ी विभूति व परिवार के साथ वहां आकर भगवान् को वंदना कर बहुत भक्ति से भगवान् के सन्मुख नाटक किया। लौटने के समय भगवान् पर सूर्य का धूप पड़ता देख कर उसके मन में विचार हुआ कि—'मैं भगवान् का सेवक हूँ और मेरी विद्यमानता में भी भगवान् के ऊपर सूर्य की किरणें पड़े, यह अच्छा नहीं।' ऐसा विचार कर धरणेन्द ने सर्प का स्वरूप धारण कर अपने फण से भगवान के ऊपर तीन अहोरात्रि तक छत्र किया और उनके परिवार के देव-देवियाँ भगवान् के सामने नृत्य करने लगे। आस पास के गांवों व शहरों में से लोगों के वृंद यहां आकर भगवान् को वंदना कर आनंदित हुए। चौथे दिन भगवान् वहां से अन्यत्र विहार कर गये और सपरिवार धरणेन्द अपने स्थान पर पहुंचे। इस चमत्कार से बन में उसी स्थान पर अहिछत्रा नामक नगरी बसी। भक्त लोगों ने वहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर बनवाया, इससे उस नगरी की महीमा खूब बढ़ी। इस तरह अहिछत्रा नगरी व तीर्थ की उत्पत्ति हुई। विस्तार से जानने के लिये श्री जिनप्रभसूरि विरचित 'तीर्थ कल्प' में 'हस्ति

राजा की सवारी भगवान् को वंदना करने के लिये जाती हो, ऐसा मालुम होता है।

(२५) देहरी नं० १६ के भीतर एक तरफ की दीवार में **अश्वावबोध और समलीविहार तीर्थ** के मनोहर दृश्य का एक पट्ट लगा हुआ है। (देखो पृष्ठ १२८-१३४ तथा उसकी नोट)

(२६) देहरी नं० ३३ के दूसरे गुम्बज में जुदी जुदी चार देवियों की सुन्दर मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

(२७) देहरी नं० ३५ के गुम्बज में किसी देव की एक सुन्दर मूर्त्ति खुदी है।

(२८-२९) रंगमंडप में से नव चौकियों पर जाने वाली मुख्य सीढ़ियों के दोनों तरफ के गोखे में इन्द्र महाराज की एक एक सुन्दर मूर्त्ति बनी है।

कलिकुण्ड कल्प' व 'अहिछत्रा कल्प' तथा श्री पार्श्वनाथ भगवान् का कोई भी चरित्र देखें।

उपर्युक्त दोनों तीर्थों की उत्पत्ति के प्रसंग के साथ यह दृश्य संगत हो सकता है। क्योंकि दोनों प्रसंगों में श्री पार्श्वनाथ भगवान् के सामने देव देवियों ने नृत्य किया है तथा बहुतेरे मनुष्यों के साथ राजाओं की सवारियां भगवान् को वंदन करने को आई हैं। तथापि इस दृश्य में भगवान् के मस्तकोपरि सर्प का फण होने से यह दृश्य दूसरे प्रसंग के साथ विशेष संगत होता है।

लूणवसहि मंदिर की भमती में, दोनों तरफ के दो गम्भारे व अंबाजी की देहरी को भी साथ गिनने से तथा बहुतसी देहरियाँ इकट्ठी हैं, उनको जुदी जुदी गिनने से कुल ४८ देहरियाँ होती हैं और एक विशाल हस्तिशाला है। बीच में एक खाली कोठड़ी है।

सारे लूणवसहि मंदिर में गूढ़मंडप, उसके दोनों तरफ की चौकियाँ, नव चौकियाँ, रंगमंडप व सब देहरियों के दो दो तथा हस्तिशाला के मिलकर १४६ गुम्बज (मंडप) हैं। इनमें ९३ नकशीवाले व ५३ सादे गुम्बज हैं। सादे गुम्बज, जीर्णोद्धार के समय फिर से बने हुए मालूम होते हैं।

इस मंदिर में दीवारों से पृथक् संगमरमर के १३० खंभे हैं, जिनमें ३८ सुन्दर नकशी वाले और ९२ सामान्य नकशी वाले हैं।

विमलवसहि व लूणवसहि की नकशी में, जीवन-प्रसंग एवं महा पुरुषों के चारित्रों के प्रसंगों की रचनाएँ, उन उन मंदिरों के वर्णनों में वर्णित की (बताई) गई हैं, उतनी ही हैं, इससे ज्यादे दृश्य नहीं होंगे, ऐसा मान लेने की शीघ्रता कोई न करे। हमारे जानने में जितने दृश्य आये उतने ही यहाँ लिखे गये हैं। मेरा तो विश्वास है कि—यदि सूक्ष्मता के साथ वर्षों तक खोज की जाय,

तो भी उसमें से नवीन नवीन चीजें जानने को मिला करें। प्रेक्षकों से मेरा अनुरोध है कि—यदि आप लोगों को इस पुस्तक में उल्लिखित दृश्यों के अतिरिक्त कुछ विशेष देखने व जानने में आवे, तो आप इस पुस्तक के प्रकाशक को अवश्य सूचना करें, जिससे दूसरी आवृत्ति में उसको स्थान दिया जाय।

विमलवसही और लूणवसही मन्दिरों की नकशी में खुदे हुए ऊपर लिखे दृश्यों के अतिरिक्त हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाय, बैल, चीता, सिंह, सर्प, कछुआ, मगर और पक्षी आदि प्राणियों की तथा नाना प्रकार की हण्डियाँ, झूमर (काँच के झाड़), बावड़ियाँ, सरोवर, समुद्र, नदी, जहाज, बेल, फूल, गीत, नाटक, संगीत, वाजिंत्र, सैन्य, लड़ाइयाँ, मल्लयुद्ध, राजा वगैरह की सवारियाँ आदि की तो संख्या ही नहीं हो सकती।

दरवाजे, मंडप, गुम्बज, तोरण (बंदरवाल), दासा, छत, ब्राकेट, भींत, बारसाख आदि कहीं भी दृष्टि डाली जाय, आनन्ददायक नकशी दिखाई देगी। 'कुमार' मासिक के संपादक के शब्दों में कहा जाय तो—

"विमलशाह का देलवाड़े में बनवाया हुआ महान् देवालय, समस्त भारतवर्ष में शिल्पकला का
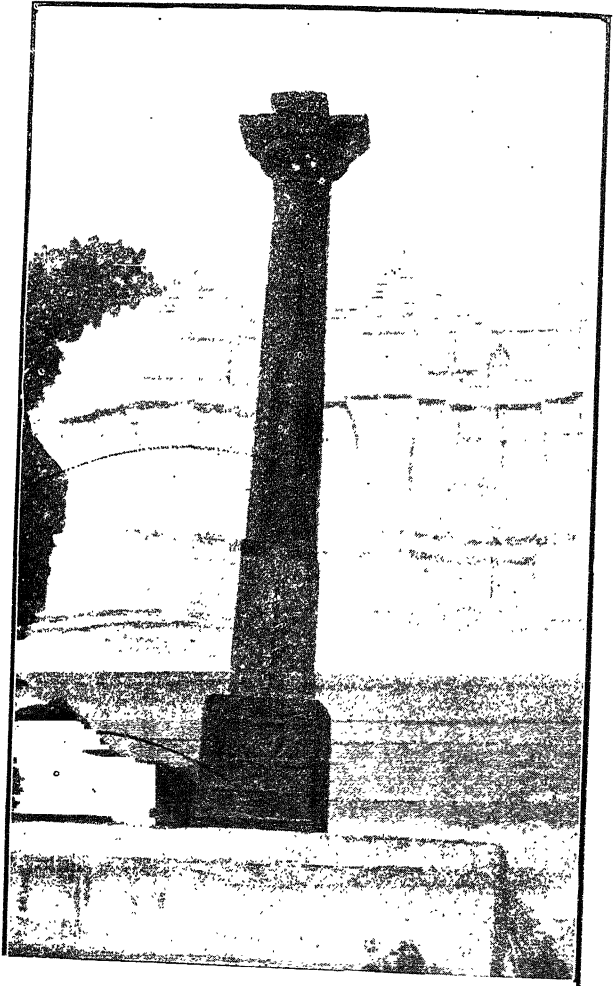
कीर्त्तिस्तम्भ (तीर्थस्तम्भ),
और लूण-वसही की देहरियों का बाहरी दृश्य.

D. J. Press, Ajmer.

अपूर्व—अनुपम नमूना है। देलवाड़े के मंदिर, ये केवल जैन मंदिर ही नहीं हैं, वे गुजरात के अतुलित गौरव की प्रतिभा है।" बस, इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं रहती।

विमलवसहि में मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् व लूणवसहि में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान् विराजमान होने से ये दोनों स्थान क्रमानुसार शत्रुंजय तीर्थावतार व गिरिनार तीर्थावतार माने जाते हैं।

लूणवसहि के बाहर—लूणवसहि के दक्षिण-द्वार के बाहर दाहिनी तरफ बाग में दादासाहब के पगलियां युक्त एक नई छोटी देहरी बनी है।

उपर्युक्त दरवाजे के बाहर बांयी तरफ के एक बड़े चबूतरे पर एक बड़ा भारी कीर्त्तिस्थंभ है। उसके ऊपर का भाग अधूरा ही मालूम होता है, इससे यह अनुमान होता है कि—पहिले यह कीर्त्तिस्थंभ बहुत ऊंचा होगा ‡। पीछे से

‡ उपदेशतरङ्गिणी आदि ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि—"इस कीर्ति-स्थम्भ के ऊपरि हिस्से में, इस मंदिर के बनाने वाले मिस्त्री शोभनदेव की माता का हाथ खुदा हुआ था।" वह अब नहीं है।

किसी कारण से थोड़ा भाग उतार लिया होगा। सिरे पर पूर्णता का बोध कराने वाला कोई भी चिह्न नहीं है। इसको लोग तीर्थस्थंभ भी कहते हैं।

उस कीर्त्ति-स्थंभ के नीचे एक सुरभी (सुरही) का पत्थर है। जिसमें बछिये सहित गाय का चित्र और उसके नीचे कुंभाराणा का वि० सं० १५०६ का शिलालेख है। उस लेख में इन मंदिरों, तथा इनकी यात्रा के लिये आने वाले किसी भी यात्रालु से किसी भी प्रकार का कर (टैक्स) किंवा चौकीदारी-हिफाजत के बदले में कुछ भी नहीं लेने की कुंभाराणा की आज्ञा है।

गिरिनार की पाँच टूंकें—उस कीर्त्ति-स्थंभ के पास बांये हाथ की तरफ सीढियाँ हैं। उन पर चढ़कर ऊपर जाने से एक छोटासा मंदिर आता है, जिसमें दिगंबरीय जैन मूर्त्तियाँ हैं। वहाँ से उत्तर दिशा की तरफ जालीदार दरवाजे में से होकर थोड़ा ऊंचे जाने से ऊंची टेकरी पर चार देहरियाँ मिलती हैं। उनमें नीचे से पहिली एक देहरी में अंबिकादेवी की मूर्त्ति और उसके ऊपर की तीनों में जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। लूणवसहि मंदिर को गिरिनार तीर्थावतार मानने के कारण मूलमंदिर,

गिरिनार की पहिली टूँक और उपर्युक्त चार देहरियाँ दूसरी, तीसरी, चौथी व पाँचवीं टूँकें मानी जाती हैं।

श्री सोमसुन्दरसूरि कृत 'अर्बुद गिरि कल्प' में उन चार देहरियों के नाम इस क्रमानुसार बतलाये हैं। (नीचे से)—

(१) अंबावतार तीर्थ, (२) प्रद्युम्नावतार तीर्थ, (३) शाम्बावतार तीर्थ और (४) रथनेमि अवतार तीर्थ। परन्तु इस समय मात्र नीचे की पहिली देहरी में अंबा देवी की दो छोटी मूर्त्तियाँ हैं। अवशेष तीन देहरियों में प्रद्युम्न, शाम्ब और रथनेमि की मूर्त्तियाँ अथवा उनसे संबंध रखने वाले कोई भी चिह्न नहीं हैं। आजकल तो उन देहरियों में निम्नानुसार मूर्त्तियाँ विराजमान हैं। (ऊपर से)—

देहरी नं० १ में मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की काउस्सग्गावस्था की मनोहर खड़ी मूर्त्ति है। इसी मूर्त्ति में मूलनायक भगवान के दोनों ओर छः छः जिन मूर्त्तियां बनी हैं। जिनके नीचे दोनों तरफ एक एक इन्द्र और उसके नीचे एक श्रावक व एक श्राविका की मूर्त्ति खुदी है। इसके नीचे सं० १३८६ का लेख है। इस लेख

से मालूम होता है कि—आबू के नीचे के मुंडस्थल महातीर्थ के श्री महावीर भगवान् के मंदिर में कोरंट गच्छ के श्री नन्नाचार्य्य के संतानी महं० धांधल—मंत्री धांधलने दो काउस्सग्गिये कराये। लूणवसहि के गूढ मंडप का छोटा काउस्सग्गिया इसी की जोड़ का है और वह भी उसी श्रावक ने बनवाया है। (इसके लिये देखिये पृ० १२३) अतएव इन दोनों मूर्त्तियों को एक ही स्थान में स्थापित करनी चाहिये। इस देहरी में परिकर रहित दो मूर्त्तियाँ और हैं। कुल जिन बिंब ३ हैं।

देहरी नं० २ में मूलनायक श्री शान्तिनाथ भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ है। परिकर खंडित है।

देहरी नं० ३ में मूलनायक श्री .... की परिकर वाली श्याम मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४ में अंबिका देवी की दो छोटी मूर्त्तियाँ हैं। इनमें से एक मूर्त्ति पर संवत् रहित छोटा लेख है। यह मूर्त्ति पोरवाड़ ज्ञातीय श्रावक चांडसी ने कराई है। चारों देहरियों में कुल सात मूर्त्तियाँ हैं।

इन चार देहरियों के निर्माता कौन हैं ? इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। यदि मंत्री तेजपाल की ही बनवाई हुई हों तो ऐसी सर्वथा सादी न होना चाहिये। अनुमान यह होता है कि—पहिले ये देहरियाँ महामंत्री तेजपाल ने लूण-वसहि मंदिर के जैसी सुन्दर ही बनवाई होंगी।‡ परन्तु बाद में उक्त मंदिरों के भंग के समय अथवा अन्य किसी समय उनका नाश हुआ हो, और फिर से मंदिरों के जीर्णोद्धार के समय या अन्य किसी समय इनका भी जीर्णोद्धार हुआ हो।

‡ वास्तव में ये चारों देहरियाँ महामन्त्री तेजपाल की बनवाई मालुम नहीं होती हैं। यदि उन्हीं ने ही बनवाई होतीं तो लूणवसहि मंदिर की प्रशस्ति में इनका भी उल्लेख होता। किन्तु इनका उल्लेख नहीं है। इसलिये ये देहरियां पीछे से अन्य किसी ने बनवाई मालूम होती हैं।

पित्तलहर (भीमाशाह का मन्दिर)

यह मंदिर **भीमाशाह** ने बनवाया है। इसलिये **भीमाशाह** का मंदिर कहा जाता है। **भीमाशाह** ने पहिले मूलनायकश्री **आदीश्वर** भगवान् की मूर्त्ति बनवाई थी। कुछ समय के बाद मंत्री **सुंदर** और मंत्री **गदा** ने बनवाई, जो अभी भी मौजूद है। ये दोनों मूर्त्तियां पित्तलादि धातु की होने से यह मंदिर **पित्तलहर**‡ इस नाम से मशहूर है।

वर्त्तमान मूलनायकजी की मूर्त्ति, गूढ मंडप की अन्य मूर्त्तियां एवं नवचौकी के गोखों पर के लेखों से तथा 'अर्बुद गिरि कल्प,' 'गुरुगुणरत्नाकर काव्य' आदि ग्रन्थों पर से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि—यह मंदिर गुर्जर ज्ञातीय **भीमाशाह** ने बनवाया है और उन्होंने श्री आदीश्वर भगवान् की धातु की भव्य बड़ी मूर्त्ति बनवाकर इसमें मूलनायक स्वरूप स्थापित की थी§ तथा इस मंदिर की

---

‡ पित्तलहर=पित्तलगृह=पित्तल आदि धातुओं की मूर्त्ति युक्त देव मंदिर।

§ अचलगढ के चौमुखजी के मंदिर के लेखों से ज्ञात होता है कि-बाद में यह मूर्त्ति यहां से लेजाकर मेवाड़ के कुंभलमेरु गांव के चौमुखजी के मंदिर में विराजमान की गई थी।

प्रतिष्ठा भी कराई थी। परन्तु इस मंदिर की प्रतिष्ठा किस संवत् में किस आचार्य्य के पास कराई तथा भीमाशाह की विद्यमानता का समय कौनसा था। यह बात इस मंदिर के लेखों पर से ज्ञात नहीं होती।

इस मंदिर के मूलनायकजी आदि कई एक मूर्त्तियों पर के वि० सं० १५२५ के लेखों के आधार से कई लोग यह मानते हैं कि—यह मंदिर सं० १५२५ में बना। परन्तु यह ठीक नहीं है।

इस मंदिर के दरवाजे के बाहर 'वीरजी' की देहरी के पास के एक पत्थर के राजधर देवड़ा चूंडा के वि० सं० १४८९ के लेख से यह बात मालूम होती है कि—उस समय देलवाड़े में तीन जैन मंदिर थे। यहां के दिगम्बर जैन मंदिर के वि० सं० १४९४ के लेख में इस मंदिर का नाम आता है। श्री माता के मंदिर के वि० सं० १४९७ के लेख में इस मंदिर का पित्तलहर नाम से उल्लेख है। इस मंदिर के गूढ मंडप में बांई तरफ के एक खंभे पर इस मंदिर की व्यवस्था के निमित्त 'लागा' संबंधी वि० सं० १४९७ का लेख है। पंद्रहवीं शताब्दि के श्रीमान् सोमसुन्दर सूरि स्वकृत 'अर्बुद गिरि कल्प' में लिखते हैं:—

"भीमाशाह ने पहिले यह मंदिर मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान् की धातुमयी मूर्त्ति सहित बनवाया था, जिसका श्रीसंघ की तरफ से इस समय जीर्णोद्धार हो रहा है।"

इन सब लेखों से यह मालूम होता है कि—यह मंदिर वि० सं० १४८९ के पहिले ही प्रतिष्ठित हो चुका था। जीर्णोद्धार सम्पूर्ण होने पर मंत्री सुन्दर व मंत्री गदा ने सं० १५२५ में आदीश्वर भगवान् की धातुमयी मूर्त्ति—जो इस समय विद्यमान है, नूतन बनवाकर मूलनायकजी के स्थान पर स्थापित की। वि० सं० १५२५ के पहिले इस मंदिर का जीर्णोद्धार प्रारंभ हुआ। इससे मालूम होता है कि–यह मंदिर करीब १००-१२५ वर्ष पहिले जरूर बना होगा। १००-१२५ वर्ष के पहिले मंदिर का जीर्णोद्धार कराने का प्रसंग उपस्थित हो, यह असंभव भी है। विमलवसहि के वि० सं० १३५०, १३७२, १३७२ और १३७३ के, उस समय के महाराजाओं के आज्ञापत्र के चार लेखों से, उस समय देलवाड़ा में विमलवसही और लूणवसही ये दो ही जैन मंदिर विद्यमान होने का मालूम होता है। इसलिये वि० सं० १३७३ से १४८९ तक के ११६ वर्ष के अन्दर किसी समय में यह मंदिर बना होगा।

उपर्युक्त कथनानुसार श्रीसंघ की तरफ से इस मंदिर का जीर्णोद्धार होने के बाद राज्यमान्य गुर्जर श्रीमाल ज्ञातीय मंत्री सुन्दर और उसके पुत्र मंत्री गदा ने श्री आदिनाथ भगवान् की धातु की १०८ मण की महान् मनोहर मूर्त्ति इस मंदिर में स्थापन करने के लिये नवीन बनवाकर, मूलनायकजी के स्थान पर विराजमान की और उसकी वि० सं० १५२५ में श्री लक्ष्मीसागर सूरिजी से प्रतिष्ठा कराई। मंत्री सुन्दर व मंत्री गदा, अहमदाबाद के रहने वाले एवं उस समय के सुलतान मुहम्मद बेगड़ा के मंत्री थे। वे दोनों राज्यमान्य होने से राज्य की सामग्री व ईडर आदि देशी राजाओं की सहानुभूति एवं सहायता से उन्होंने अहमदाबाद से आबू तक का बड़ा भारी संघ निकाला था। उस समय इन्होंने धूमधाम से इस मंदिर की प्रतिष्ठा कराई, जिसमें कई संघ सम्मिलित हुए थे। उन सबकी, उन्होंने भोजन और बहु मूल्य वस्त्रों आदि से भक्ति की थी। इस महोत्सव में उन्होंने लाखों रुपये खर्च किये थे।

इस मंदिर की नवचौकियों के दोनों ताखों—गोखों के लेखों से यह मालूम होता है कि—इन ताखों की प्रतिष्ठा वि० सं० १५३१ ज्येष्ठ वदि ३ गुरुवार को हुई है। भमती के श्री सुविधिनाथ भगवान् के शिखरबंधी मंदिर

की प्रतिष्ठा ज्येष्ठ सुदी २ सोमवार वि० सं० १५४० में और कई एक देहरियों की प्रतिष्ठा वि० सं० १५४७ में हुई है ।

मूर्त्ति संख्या व विशेष विवरण—

मूल गंभारे में पंचतीर्थी के परिकर वाली धातु की १०८ मण वजन की मंत्री सुन्दर व उसके पुत्र मंत्री गदा की सं० १५२५ में बनवाई हुई अत्यन्त मनोहर आदीश्वर भगवान् की एक बड़ी मूर्त्ति है†। परिकर सहित इस मूर्त्ति की ऊँचाई लगभग आठ फुट व चौड़ाई ५॥ फुट है । उसमें खास मूलनायकजी की ऊँचाई ४१ इंच है । परिकर और मूलनायकजी पर विस्तृत लेख हैं । मूलनायकजी की दोनों तरफ धातु की एकल बड़ी मूर्त्तियाँ २, परिकर रहित मूर्त्तियाँ ४, काउस्सग्गिये ४ और तीन-तीर्थी के परिकर-वाली मूर्त्ति १ है । जिसके परिकर का ऊपरी हिस्सा नहीं है ।

गूढमंडप में एक तरफ पंचतीर्थी के परिकर युक्त संगमरमर का आदीश्वर भगवान् का बड़ा बिंब है । इनकी बैठक के ऊपर सम्मुख भाग में और पीछे भी बड़ा लेख है । सोरोहडी के रहने वाले श्रावक सिंहा और रत्ना
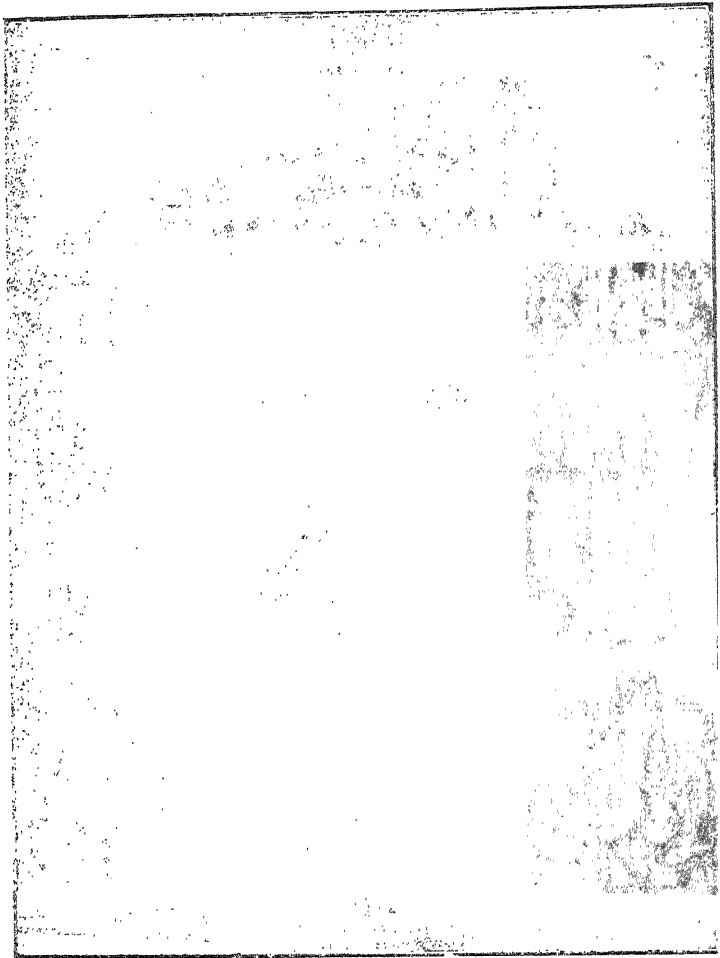
ने वि० सं० १५२५ में यह मूर्त्ति बनवाई है। दोनों ताखों-आलों में धातु की एकल मूर्त्तियाँ २, परिकर रहित मूर्त्तियाँ २०, धातु की त्रितीर्थी १, धातु की एकतीर्थियां ३, श्री गौतम स्वामी की पीले पाषाण की मूर्त्ति १‡ (जिसके ऊपर लेख है), अंबिका देवी की मूर्त्ति १, (इस पर भी लेख है) और छोटे काउस्सग्गिये २ हैं।

नवचौकी में से गूढमंडप में जाने के दरवाजे के दोनों तरफ के गोखों पर लेख हैं। उन दोनों ताखों में श्री **सुमतिनाथ** भगवान् का विराजमान किया जाना लिखा है, परन्तु इस समय दोनों खाली हैं।

मूल गंभारे के पीछे, बाहर की तरफ तीनों दिशाओं के ताख खाली हैं। प्रत्येक ताख के ऊपर भगवान् की मंगलमूर्त्ति बनी है। उसके ऊपर एक एक जिन बिंब पत्थर में खुदा है§।

---

‡ इस मूर्त्ति की गर्दन के पीछे ओघा, दाहिने कंधे पर मुंहपत्ति, एक हाथ में माला तथा शरीर पर कपड़े के निशान हैं।

§ संभव है कि पहिले इन ताखों में भगवान् की मूर्त्तियाँ विराजमान की हों, फिर किसी कारण से उठाली गई हों।

भमती में निम्नलिखित मूर्त्तियाँ हैं:—

इस मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते अपने बायें हाथ की तरफ़ से:—

देहरी नं०	१	में मूलना०	श्रीसंभवनाथ	आदि की	३	मूर्त्तियाँ हैं।
,,	२	,,	आदीश्वर	,,	३	,,
,,	३	,,	,,	,,	३	,,
,,	४	,,	,,	,,	४	,,
,,	५	,,	,,	,,	४	,,
,,	६	,,	,,	,,	३	,,
,,	७	,,	,,	,,	३	,,

इसके बाद सामने के गंभारे जितना बड़ा गंभारा बनाने के लिये काम शुरू किया गया होगा, लेकिन किसी कारण से कुरसी तक बनने के बाद काम बंद होगया हो, ऐसा मालूम होता है।

इस मंदिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते अपने दाहिने हाथ की तरफ से:—

देहरी नं०	१	में मूलना०	श्रीआदीश्वर भ०	की १ मूर्त्ति है।
,,	२	,,	,,	आदि के ३ बिंब हैं।
,,	३	,,	,,	,, ३ ,,
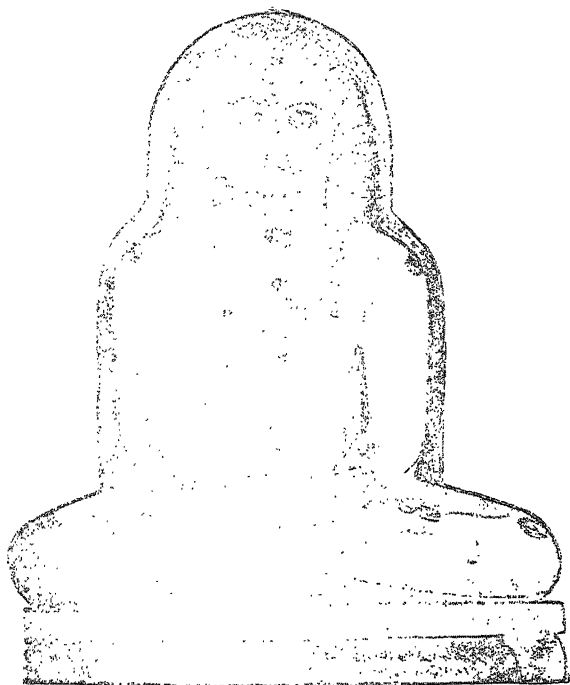
पित्तलहर, श्री पुंडरीक स्वामी.

देहरी नं० ४ में मूलना० श्रीनेमिनाथ भ० आदि के ३ बिंब हैं।
,, ५ ,, आदीश्वर ,, ३ ,,
,, ६ ,, अजितनाथ ,, ३ ,,
,, ७ ,, आदीश्वर ,, ३ ,,

पश्चात् इसी लाइन में, बाजू के बड़े गंभारे के तौर पर श्री **सुविधिनाथ** भगवान् का शिखरबंद मंदिर है। इसको लोग **शान्तिनाथ** भगवान् का मंदिर कहते हैं। परन्तु उसमें अभी मूलनायक श्री **सुविधिनाथ** भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति विराजमान है। उनके दाहिनी तरफ पुंडरीक स्वामि की एक मनोहर मूर्त्ति† है। उसमें दोनों कानों के पीछे ओघा, दाहिने कंधे पर मुँहपत्ति, शरीर पर वस्त्र की आकृति, मस्तक के पीछे भामंडल और पद्मासन-पालकी के नीचे सं० १३६४ का लेख है‡। अपने बांये हाथ की तरफ मूलनायक श्री **संभव-नाथ** भ० की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और दाहिनी तरफ मूलनायक श्री **धर्मनाथ** भगवान् की पंचतीर्थी के

‡ श्री पुंडरीक स्वामी की यह मूर्त्ति, विमलवसहि मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने वाले शाह वीजड़ की धर्मपत्नी वील्हणादेवी के कल्याणार्थ प्रथमसिंह ने बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा सं० १३६४ में श्री ज्ञानचन्द्र-सूरीश्वरजी से कराई है।

परिकर वाली मूर्त्ति १ है। मूलनायक श्री सुविधिनाथ भगवान्, श्री संभवनाथ भगवान् और श्री धर्मनाथ भगवान् की बैठकों के ऊपर वि० सं० १५४० के लेख हैं। किन्तु वे सब पिछले भाग में होने से पूरे २ पढ़े नहीं जाते। बिना परिकर की मूर्त्तियाँ ६ तथा परिकर से अलग हुए काउस्सग्गिया १ है। इसके बाद—

देहरी नं० ८ मूलना० श्रीनेमिनाथ भ० आदि की ३ मूर्त्तियाँ हैं।
,, ९ ,, श्री आदिनाथ भग० की १ मूर्त्ति है।
,, १० ,, ,, ,, १ ,, ।
,, ११ ,, ,, आदि की ६ मूर्त्तियाँ हैं।

इनके बाद की दो देहरियाँ खाली हैं।

इस मंदिर में गर्भागार (मूल गंभारा), गूढ मंडप और नव चौकियाँ हैं। रंग मंडप तथा भमति का काम अधूरा रहा हो, ऐसा मालूम होता है। भमति में श्री सुविधिनाथ भगवान् का शिखरबंद मंदिर और दोनों तरफ की मिलाकर कुल २० देहरियाँ हैं। जिनमें से १८ देहरियों में मूर्त्तियाँ बिराजमान हैं और २ देहरियाँ खाली हैं।

इस मंदिर के गूढ मंडप में जाने के मुख्य द्वार की मंगल मूर्त्ति के ऊपर छज्जे की नकशी में भगवान् की खड़ी

तथा बैठी १६ मूर्त्तियाँ हैं। उसी द्वार के बारसाख़ के दाहिने भाग में एक काउस्सग्गिया और बारसाख़ के दोनों तरफ़ हाथ जोड़े हुए श्रावक की एक एक खड़ी मूर्त्ति बनी है।

गूढ मंदिर के प्रवेश द्वार के आतिरिक्त उत्तर व दक्षिण दिशाओं के दरवाजों की मंगल मूर्त्ति के ऊपर भगवान् की एक बैठी और दो खड़ी-ऐसी तीन २ मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

इस मंदिर की कुल मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैं:—

(१) मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली धातु की बड़ी प्रतिमा १ ‡

(२) पंचतीर्थी के परिकर वाली संगमरमर की मूर्त्तियाँ ४

(३) त्रितीर्थी के „ „ „ मूर्त्ति १

(४) परिकर रहित मूर्त्तियाँ ८३

(५) धातु की बड़ी एकल मूर्त्तियाँ ४ (२ मूलगंभारे में और २ गूढ मंडप में)

(६) परिकर में से जुदे पड़े हुये छोटे काउस्सग्गिये ७

---

‡ महसाना निवासी सूत्रधार मंडण के पुत्र देवा नामक कुशल कारीगर ने यह मनोहर मूर्त्ति बनाई है, जो उसके कला-कौशल्य का सुंदर नमूना है।

(७) धातु की त्रितीर्थि १
(८) धातु की एकतीर्थियां ३
(९) श्री पुंडरीक स्वामी की मूर्त्ति १ (सुविधिनाथ भगवान् के गंभारे में)
(१०) श्री गौतमस्वामी की मूर्त्ति १ (गूढमंडप में)
(११) श्री अम्बिका देवी की मूर्त्ति १ (,,)

पित्तलहर के बाहर--

पित्तलहर (भीमाशाह के मंदिर) के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर बांई तरफ, पूजन करने वालों को नहाने के लिये गरम व ठंडे पानी की व्यवस्था वाला मकान है और दाहिनी तरफ एक बड़े चबूतरे के कोने में चंपा के दरख़्त के नीचे एक छोटी देहरी है। इसे लोग वीरजी की देहरी कहते हैं। इसमें माणिभद्र देव की मूर्त्ति है।

इस देहरी के दोनों तरफ सुरहि (सुरभी) के कुल चार पत्थर हैं। एक सुरहि का लेख बिलकुल घिस गया है। शेष तीन सुरहियों के लेख कुछ कुछ पढ़े जाते हैं। दो सुरहियों पर यथाक्रम से वि० सं० १४८३ ज्येष्ठ सुदी ६ सोमवार और सं० १४८३ श्रावण वदि ११ रविवार के

लेख हैं। जो इन मंदिरों में गांव गराशादि भेट किये गये थे, उस विषय के हैं और एक सुरहि पर अगहन वदि ५ सोमवार वि० सं० १४८६ का अर्बुदाधिपति चौहान राजधर देवड़ा चुंडा का लेख है। इस लेख का बहुत कुछ हिस्सा घिस गया है। कुछ भाग पढ़ाई में आता है। जिससे मालूम होता है कि—राजधर देवड़ा चुंडा, देवड़ा सांडा, मंत्री नाथू और सामंतादि ने मिलकर राज्य के अभ्युदय के लिये विमलवसहि, लूणवसहि व पित्तलहर ये तीन मंदिरों और उनके दर्शन-यात्रा के लिये आने वाले यात्रियों से जो कर लिया जाता था वह माफ किया, और इस तीर्थ को कर (टेक्स) के बंधन से हमेशा के लिये मुक्त कर खुल्ला कर दिया।

इस लेख के लेखक, तपगच्छाचार्य्य श्री सोमसुंदरसूरि के शिष्य पं० सत्यराज गणी हैं। इससे यह मालूम होता है कि—श्री सोमसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज अथवा उनकी समुदाय के कोई प्रधान व्यक्ति के उपदेश से यह कार्य्य हुआ होगा। साधन-संपन्न विद्वानों को उस अवशेष भाग के वर्णन को जानने के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

उसके पास के एक पत्थर में ऊपर के खंड में स्त्री के चूड़े वाली एक भुजा खुदी है, जिसके ऊपरी भाग में सूर्य्य-

चंद्र बने हैं। नीचे के भाग में स्त्री-पुरुष की दो खड़ी मूर्त्तियाँ खुदी हैं। दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हैं। अथवा जोड़े हाथों में कलश या फल हैं। उसके नीचे वि० सं० १४८३ का संघवी **अस्तु** का छोटा लेख है। यथा संभव यह हाथ किसी महासती का होगा।

इसके पास के कोने के एक पत्थर में गजारूढ मूर्त्ति बनी है, वह शायद **माणिभद्र** वीर की पुरानी मूर्त्ति होगी। इसके पास गर्दभ चिह्नित दान पत्र का एक पत्थर है। पत्थर पर का लेख बिल्कुल घिस गया है।
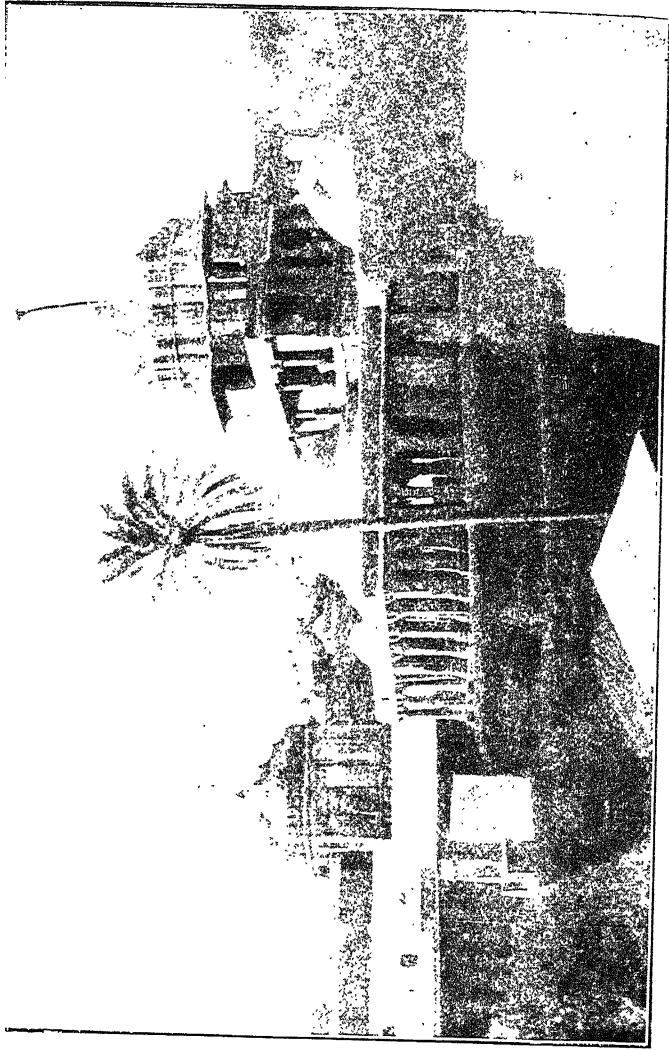
खरतर-वसही (चतुर्मुख प्रासाद) आदि चारों मंदिरों का दूर से खींचा हुआ बाहरी एक दृश्य.

D. J. Press, Ajmer.

खरतर वसहि (चौमुखजी का मंदिर)

देलवाड़ा में चौथा मंदिर **पार्श्वनाथ** भगवान् का है। वह चतुर्मुख युक्त होने के कारण **चौमुखजी** के नाम से मशहूर है। यह **खरतर वसहि** के नाम से भी विख्यात है। इसका कारण यही होगा कि—इस मंदिर के मूलनायकजी वगैरह की बहुतसी प्रतिमायें खरतरगच्छ के श्रावकों ने बनवा कर खरतरगच्छ के आचार्य्यों द्वारा प्रतिष्ठित कराई हैं। शायद इस मंदिर के निर्माता भी खरतरगच्छानुयायी श्रावक हों।

यह मंदिर किसने और कब बनवाया? यह इस मंदिर के लेखों पर से निश्चयात्मक मालूम नहीं होता। परन्तु इस मंदिर के **खरतर वसहि** नाम से, मूलनायकजी एवं अन्य कई एक प्रतिमाओं के बनवाने वाले खरतरगच्छीय श्रावकों व प्रतिष्ठापक खरतरगच्छीय आचार्य्यों के होने से, मंदिर के मूल-गंभारे के बाहर की चारों तरफ की नकशी में खुदी हुई आचार्यों की बैठकें, क्षेत्रपाल भैरव की नग्न मूर्त्तियें और इस मन्दिर में पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्त्तियों

की विशेषता आदि सब बातों का निरीक्षण करने से यही ज्ञात होता है कि—इस मंदिर को बनवाने वाला अवश्य कोई खरतरगच्छानुयायी ही श्रावक होगा।

इस मंदिर के तीनों मंजिलों के तीनों चौमुखजी के मूलनायकजी की मूर्त्तियों की बैठकों के दोनों तरफ व पीछे बड़े २ लेख हैं, जिनका बहुत कुछ हिस्सा चूने में दब गया है। प्रकाश के अभाव व स्थान की विषमता के कारण यह लेख पूरे पढे नहीं जाते हैं। यदि पूरे २ पढाई में आवें तो इस मंदिर के निर्माता, मूर्त्तियों के बनवाने वाले और प्रतिष्ठापक आदि के विषय में बहुत कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। उन मूर्त्तियों की बैठकों के सन्मुख (अगले) भाग में जो थोड़े २ अक्षर लिखे हैं, उनसे मालूम होता है कि—थोड़ी मूर्त्तियों के सिवाय, इस मंदिर के तीनों मंजिलों के मूलनायकजी आदि बहुतसी प्रतिमायें, **दरड़ा गोत्रीय** ओसवाल संघवी **मंडलिक** ने तथा उसके कुटुंबियों ने वि० सं० १५१५ में तथा उसके आस पास में बनवाई हैं। उनमें से बहुतसी मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा खरतर-गच्छाचार्य्य श्री **जिनचन्द्रसूरिजी** ने की है।

यहां के दिगम्बर जैन मंदिर के वि० सं० १४९४ के लेख में और श्रीमाता के व भीमाशाह के मंदिर की लाग

की व्यवस्था विषयक वि० सं० १४९७ के लेखों में भीमाशाह के मंदिर का नाम है। किन्तु इसका नाम नहीं है तथा पित्तलहर मंदिर के बाहर की एक सुरहि के सं० १४८९ के लेख में उस समय देलवाड़े में कुल तीन ही जैन मंदिर होने का लिखा है। इन सब लेखों से मालूम होता है कि—यह मंदिर उस समय विद्यमान नहीं था। अतएव यह मंदिर वि० सं० १४९७ के बाद ही बना हो, ऐसा प्रतीत होता है। अब इस मंदिर को किसी दूसरे ने बनवाया हो, और मात्र १८ वर्ष के अन्दर ही संघवी मंडलिक उसका जीर्णोद्धार करावे, तथा नई मूर्त्तियाँ मूलनायकजी के स्थान में विराजमान करे, यह असंभवित है। इससे यह अनुमान होता है कि—यह मंदिर अन्य किसी ने नहीं, परन्तु संघवी मंडलिक ने ही वि० सं० १५१५ में बनवाया होगा।

इतिहास प्रेमी लोग, भीमाशाह के मंदिर के प्रथम प्रतिष्ठापक, प्रतिष्ठा का समय, एवं इस मंदिर के निर्माता के विषय में खोज करके निश्चित निर्णय प्रकट करें, यह आवश्यकीय है।

इस मंदिर को, कई लोग 'सिलावटों का मंदिर' कहते हैं। लोगों में ऐसी दंतकथा है कि—

"विमलवसहि व लूणवसहि मंदिरों की बची हुई पत्थर आदि सामग्री से कारीगरों ने खुद की ओर से (अवैतनिक) यह मंदिर बनाया है।"

परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं है। क्योंकि किसी भी लेख या ग्रन्थ का इसमें प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरी बात यह है कि–विमलवसहि और लूणवसहि के बनने के समय में ही दोसौ वर्ष का अंतर है। अर्थात् विमलवसहि मंदिर के बचे हुए पत्थर दोसौ वर्ष तक पड़े रहे हों और उसके बाद लूणवसहि की बची सामग्री इकट्ठी करके सिलावटों ने अपनी तरफ से यह मंदिर बनाया हो, यह बिलकुल असंभवित है। तथा यह मंदिर लूणवसहि जितना ७०० वर्ष का पुराना भी मालूम नहीं होता। साथ ही साथ, उपर्युक्त दोनों मंदिरों के पत्थरों से इसके पत्थर बिलकुल भिन्न हैं। इत्यादि कारणों से यह मंदिर सिलावटों का नहीं है, यह निश्चित होता है। सम्भव है कि—इस मंदिर के सभा मंडप के दो तीन खंभों पर सिलावटों के नाम खुदे हुए होने से लोग इसको 'सिलावटों या कारीगरों का मंदिर' बताते हों।

यह मंदिर सादा परन्तु विशाल है। ऊंची जगह पर बना होने से तथा सब मन्दिरों से ऊँचा होने से गगनस्पर्शी
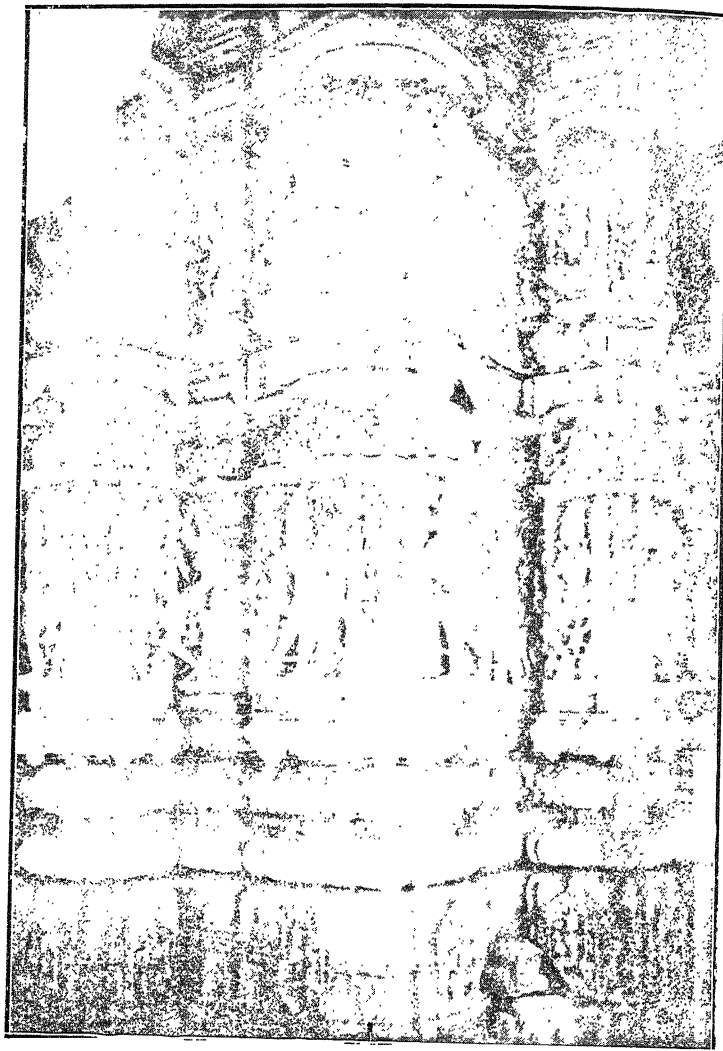
खरतर-वसही (चतुर्मुख प्रासाद) का भीतरी एक दृश्य.
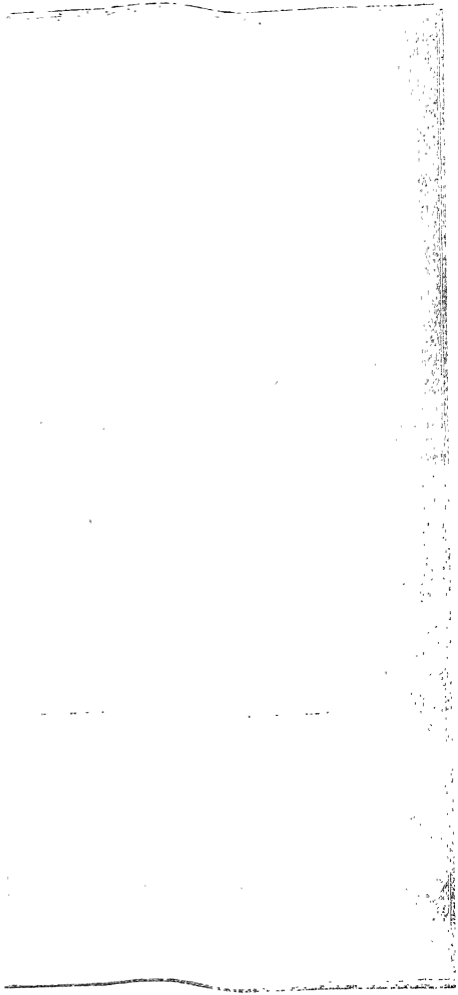
D. J. Press Ajmer

मालूम होता है। इसी कारण से बहुत दूर से यह मन्दिर दिखाई देता है। इस मंदिर की तीसरी मंजिल पर चढ़कर चारों तरफ देखने से आबू की प्राकृतिक मनोहरता सुन्दर मालूम होती है। तीनों मंजिलों में चौमुखजी विराजमान हैं। सब से नीची मंजिल में मूल गम्भारे के चारों तरफ बड़े बड़े रंगमंडप हैं और उसी मुख्य गम्भारे के बाहर चारों तरफ सुन्दर नकशी है। नकशी के बीच बीच में कहीं कहीं भगवान् की मूर्त्तियाँ, काउस्सग्गिये, आचार्यों और श्रावक-श्राविकाओं की मूर्त्तियाँ बनी हैं। यक्षों और देव-देवियों की मूर्त्तियाँ तो कसरत से हैं। उसमें भैरवजी की नग्न मूर्त्ति भी है। इस मंदिर में पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमाओं का बाहुल्य दिखता है।

मूर्त्ति संख्या व विशेष विवरण—

नीचे की मंजिल में चारों तरफ मूलना० श्री **पार्श्वनाथ** भगवान् हैं। चारों मूर्त्तियें भव्य, बड़ी व नवफणायुक्त परिकर-वाली हैं। उनमें (१) उत्तर दिशा में **चिंतामणि पार्श्वनाथ,** (२) पूर्व दिशा में **मंगलाकर पार्श्वनाथ,** (३) दक्षिण दिशा में······**पार्श्वनाथ** और (४) पश्चिम दिशा में **मनोरथ कल्पद्रुम पार्श्वनाथ** हैं। ये चारों मूर्त्तियाँ सं० १५१५

में संघपति मंडलिक ने बनवाकर उनकी खरतरगच्छीय श्री जिनचन्द्रसूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई है। इनके अतिरिक्त इस प्रथम मंजिल में परिकर रहित १७ मूर्त्तियाँ हैं।

यहां पर ही दो दिशा की तरफ के मूलनायक भगवान् के पास अति सुन्दर नकशीवाले खंभों के साथ पत्थर के दो तोरण-महराबें बनी हैं†। प्रत्येक तोरण में भगवान् की खड़ी व बैठी ५१-५१ मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। शेष दो दिशाओं में भी ऐसे तोरण पहिले थे। शायद खंडित हो जाने के कारण अलग कर दिये गये होंगे। ऐसे ही नकशी वाले दो खंभे और एक तोरन के टुकड़े, खंडित पत्थरों के गोदाम में पड़े हैं‡।

इस मंदिर के नीचे की मंजिल में, मूल गंभारे के मुख्य द्वार के पास, चौकी के खंभों के ऊपर के दासों में भगवान् के च्यवन कल्याणक का दृश्य खुदा हुआ है। इसके बीच में भगवान् की माता पलंग पर सो रही है। पास में दो दासियां बैठी हैं। उसके आस पास दोनों तरफ मिलकर १४ स्वप्न हैं। उनमें समुद्र और विमान के बीच

---

‡ हमारी सूचना से इन दोनों खम्भों को यहां के कार्यवाहकों ने इसी मंदिर के मूलनायकजी के पास खड़े करवा दिये हैं। इनके ऊपर का तोरन नया बनवाने के लिये भावुक व धनी गृहस्थों को ध्यान देना चाहिये।
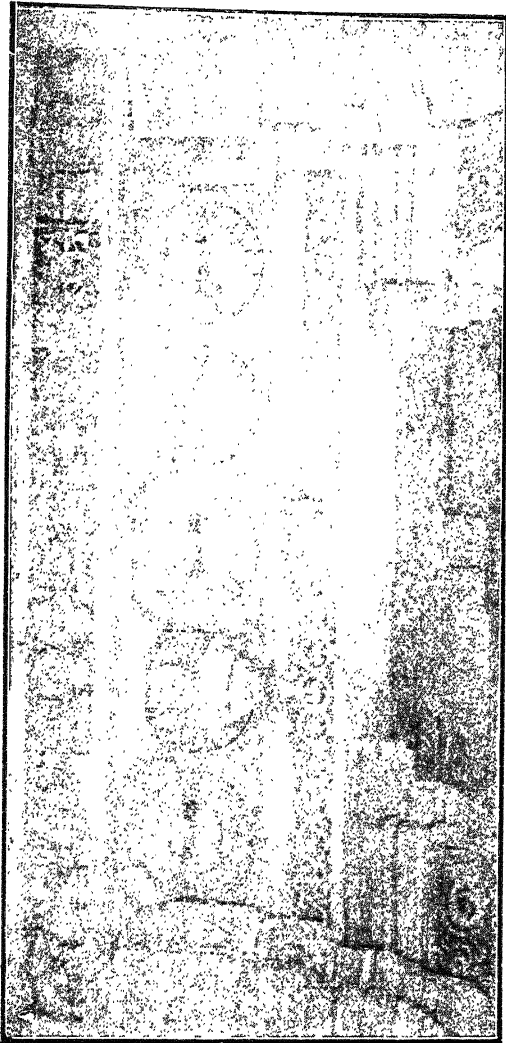
खरतर-वसही, च्यवन कल्याणक और चौदह स्वप्नों का दृश्य.

D. J. Press, Ajmer.

के एक खंड की नकशी में दो आदमियों के कंधे पर पालकी है। पालकी में एक आदमी लंबा होकर बैठा है। वह शायद राजा अथवा स्वप्न पाठक होगा।

दूसरी मंजिल में भी चौमुखजी हैं, जिसमें (१) दक्षिण दिशा में मूलनायक श्री **सुमतिनाथ** भगवान् की और (२) पश्चिम दिशा में मूलनायक श्री **पार्श्वनाथ** भगवान् की प्रतिमा विराजमान है। ये दोनों मूर्त्तियाँ खरतरगच्छीय श्राविका **मांजू**‡ की बनवाई हुई हैं। (३) उत्तर दिशा में **धन्ना** श्रावक की बनवाई हुई मूलनायक श्री **आदिनाथ** भगवान् की मूर्त्ति और (४) पूर्व दिशा में संघपति **मंडलिक** की बनवाई हुई मूलनायक श्री **पार्श्वनाथ** भगवान् की मूर्त्ति है। इन चारों मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा सं० १५१५ आषाढ़ कृष्णा १ शुक्रवार को हुई है।

इसी खंड (मंजिल) में परिकर रहित अन्य ३२ जिन बिंब हैं। इनमें से कई एक बिंबों में मात्र बनवाने वाले श्रावका श्राविकाओं के नामों का उल्लेख है।

यहां पर चौमुखजी के पास ही में **अम्बिका** देवी की एक सुंदर बड़ी मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति को इसी मंदिर में स्थापन

---

‡ संघपति मंडलिक के छोटे भाई माला की पत्नी।

करने के लिये सं० **मंडलिक** ने वि० सं० १५१५ के आषाढ वदि १ शुक्रवार को बनवाकर खरतरगच्छीय आचार्य्य **श्रीजिनचन्द्रसूरिजी** से इसकी प्रतिष्ठा कराई, इस मतलब का इस पर लेख है।

तीसरी मंजिल में सं० **मंडलिक** की बनवाई हुई **पार्श्वनाथ** भगवान् की ४ मूर्त्तियाँ हैं। इनकी भी प्रतिष्ठा ऊपर की मूर्त्तियों के साथ ही वि० सं० १५१५ के आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा शुक्रवार को हुई है। चौथी मूर्त्ति पर "द्वितीयभूमौ श्री पार्श्वनाथः" ऐसा लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि–खास करके यह मूर्त्ति दूसरी मंजिल के लिये ही बनवाकर वहां स्थापित की होगी, परन्तु पीछे से किसी कारण से तीसरी मंजिल में विराजमान की होगी। तीसरी मंजिल में सिर्फ चार मूर्त्तियाँ ही हैं‡।

इस मंदिर की कुल मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैः—

(१) नीचे के खंड में चौमुखजी की परिकर वाली भव्य और बड़ी मूर्त्तियाँ ४

(२) परिकर रहित मूर्त्तियाँ ५७

(३) अंबिकादेवी की मूर्त्ति १ (दूसरे खंड में)

‡ ये चारों मूर्त्तियाँ पहिले नवफण युक्त परिकर वाली थीं।

देलवाड़े के पांचों मंदिरों की मूर्त्तियों की संख्या

नम्बर	मूर्त्तियाँ वगैरः	विमलवसहि	लूणवसहि	पित्तलहर	चौमुखजी	महावीरस्वामी	चार देहरियां	कुल संख्या
१	पंचतीर्थी के परिकर वाली १०८ मन धातु की मूलनायक आदिनाथ भ० की मूर्त्ति	...	...	१	...	...	...	१
२	धातु की बड़ी एकल मू०	२	...	४	...	...	...	६
३	पंचतीर्थी के परिकर-वाली मूर्त्तियाँ ...	१७	४	४	...	...	...	२५
४	त्रितीर्थी के परिकरवाली मूर्त्तियाँ	११	...	१	...	...	१	१३
५	सादे परिकर वाली मू०	६०	७२	...	...	...	१	१३३
६	परिकर रहित मूर्त्तियाँ	१३६	३०	८३	५७	१०	२	३१८
७	बड़े काउस्सग्गिये ...	२	६	...	...	...	१	९
८	नीचे के खंड में मूल-नायकजी की परिकर-वाली बड़ी मूर्त्तियाँ ...	...	...	...	४	...	...	४

नम्बर	मूर्तियाँ वगैरः	विमलवसहि	लूणवसहि	पित्तलहर	चौमुखजी	महावीर स्वामी	चार देहरियाँ	कुल संख्या
९	तीन चौबीसियों के पट्ट	१	१	...	...	...	...	२
१०	१७० जिन का पट्ट ...	१	...	...	...	...	...	१
११	एक चौबीसी के पट्ट	७	३	...	...	...	...	१०
१२	जिन-माता चौबीसी के पट्ट पूर्ण	१	१	...	...	...	...	२
१३	जिन-माता चौबीसी का पट्ट अपूर्ण	...	१	...	...	...	...	१
१४	अश्वावबोध तथा समलि-विहार तीर्थ-पट्ट ...	...	१	...	...	...	...	१
१५	धातु की छोटी चौबीसी	१	..	...	...	...	...	१
१६	धातु की छोटी पंचतीर्थी	१	२	...	...	...	...	३
१७	धातु की छोटी त्रितीर्थी	...	...	१	...	...	...	१
१८	धातु की छोटी एकतीर्थी	१	३	३	...	...	...	७
१९	धातु की बहुत ही छोटी एकल मूर्त्तियाँ ...	२	...	...	...	...	...	२
२०	अंबिका देवी की धातु की मूर्त्ति	१	...	...	...	...	...	१
२१	चौबीसी में से पृथक् हुई ऐसी छोटी जिन-मूर्त्तियाँ	६	२	...	...	...	...	८

नम्बर	मूर्त्तियाँ वगैरः	विमलवसहि	लूणवसहि	पित्तलहर	चौमुखजी	महावीर स्वामी	चार देहरियां	कुल संख्या
२२	परिकर से पृथक् हुए काउस्सग्गिये ...	१	...	७	...	...	...	८
२३	आदीश्वर भ० के चरण-पादुका की जोड़ी ...	१	...	...	...	...	...	१
२४	पुंडरीक स्वामी की मूर्त्ति	...	...	१	...	...	...	१
२५	गौतम स्वामी की मूर्त्ति	...	...	१	...	...	...	१
२६	राजीमती की मूर्त्ति ...	...	१	...	...	...	...	१
२७	समवसरण की रचना	४	...	...	...	...	...	४
२८	मेरु पर्वत की रचना...	...	१	...	...	...	...	१
२९	आचार्यों की मूर्त्तियाँ...	३	२	.	...	...	...	५
३०	श्रावक-श्राविकाओं के बड़े युगल	४	...	...	...	...	...	४
३१	श्रावकों की मूर्त्तियाँ ...	४	१०	...	...	...	...	१४
३२	श्राविकाओं की मूर्त्तियाँ	४	१५	...	...	...	...	१९
३३	देहरी नं० १० में हाथी व घोड़े पर बैठे हुए श्रावकों की दो मूर्त्तियों वाला पट्ट	१	...	...	...	...	...	१

नम्बर	मूर्त्तियाँ वगैरः	विमलवसहि	लूणवसहि	पित्तलहर	चौमुखजी	महावीर स्वामी	चार देहरियाँ	कुल संख्या
३४	उसी देहरी में नीना आदि आठ श्रावकों की मूर्त्तियों का पट्ट ...	१	...	...	...	...	...	१
३५	नवचौकी के ताख़ में तीन श्राविकाओं की मूर्त्ति का पट्ट	१	...	...	...	...	...	१
३६	यक्ष की मूर्त्तियाँ ...	२	२	...	...	...	...	४
३७	अम्बिका देवी की मूर्त्तियाँ	६	२	१	१	...	२	१२
३८	लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति	१	...	...	...	...	...	१
३९	भैरवजी की मूर्त्ति ...	१	...	...	...	...	...	१
४०	परिकर से पृथक् हुई इन्द्र की मूर्त्ति ...	१	...	...	...	...	...	१
४१	मूलनायक रहित चार तीर्थी का परिकर	...	१	...	...	...	...	१
४२	खाली सादे परिकर...	...	२	...	...	...	...	२

नम्बर	मूर्त्तियाँ वगैरः	विमलवसहि	लूणवसहि	पित्तलहर	चौमुखजी	महावीरस्वामी	चार देहरियाँ	कुल संख्या
४३	श्रावक-श्राविकाओं के खंडित युगल ‡ ...	...	३	...	...	...	...	३
४४	पत्थर में खुदा हुआ यंत्र	१	...	...	...	...	...	१
४५	मनोहर नकशी वाले संगमरमर के हाथी...	१०	१०	...	...	...	...	२०
४६	बड़ा घोड़ा	१	...	...	...	...	...	१
४७	अश्वारूढ विमल मंत्री की मूर्त्ति § ...	१	...	...	...	...	...	१
४८	इसके पीछे छत्र धारण करने वाले की मूर्त्ति...	१	...	...	...	...	...	१
४९	हाथी पर बैठे हुए श्रावकों की मूर्त्तियाँ...	३	...	...	...	...	...	३
५०	हाथी पर बैठे हुए महावतों की मूर्त्तियाँ ...	५	...	...	...	...	...	५

‡ हमारी सूचना से इनकी सं० १९८७ में मरम्मत हो गई है।

§ विमलवसहि की हस्तिशाला की मूर्त्तियों की गणना विमलवसहि मंदिर के साथ में की गई है।

ओरीया

देलवाड़ा के उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) में लगभग ३॥ मील की दूरी पर ओरीया नामक गांव विद्यमान है। अचलगढ़ की पक्की सड़क पर देलवाड़ा से लगभग तीन मील पर सड़क के किनारे पर ही, अचलगढ़ के जैन मंदिरों के कार्यालय की तरफ से एक पक्का मकान बना है। जिसमें उक्त कार्यालय की ओर से ही गरम व ठंडे पानी की प्याउ बैठती है। यहां से ओरीया की सड़क पर तीन फर्लांग जाने से सिरोही स्टेट का डाक बंगला मिलता है, वहां तक पक्की सड़क है। डाक बंगले से पगडंडी के रास्ते से तीन फर्लांग जाने से ओरीया गांव मिलता है। यह गांव प्राचीन है। संस्कृत ग्रंथों में 'ओरियासकपुर', 'ओरीसा ग्राम' और 'ओरासा ग्राम' इन नामों से इस ग्राम का उल्लेख आता है। यहां श्रीसंघ का बनवाया हुआ श्री महावीर स्वामी का बड़ा व प्राचीन मंदिर है। इस मंदिर की देख रेख अचलगढ़ जैन मंदिरों के व्यवस्थापक लोग रखते हैं। यहां पर श्रावकों के घर, धर्मशाला और उपाश्रय आदि कुछ

नहीं हैं। इस गांव के बाहर कोटेश्वर ‡ (कनखलेश्वर) महादेव का एक प्राचीन मंदिर है। ऊपर लिखे हुए मार्ग से वापिस होकर अचलगढ़ की सड़क से अचलगढ़ जा सकते हैं। अथवा ओरीया से सीधे पगडंडी के रास्ते से १॥ मील चलकर अचलगढ़ पहुंच सकते हैं। राजपूताना होटल से ओरिया ४॥ मील होता है।

श्री महावीर स्वामी का मंदिर

ओरीया का यह मंदिर श्री 'महावीर स्वामी का मंदिर' कहलाता है। पुरातत्त्ववेत्ता रा० ब० महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने 'सिरोही राज्य का इतिहास' नामक ग्रंथ के पृष्ठ ७७ में, इस कथन को पुष्ट करने वाला निम्न लिखित उल्लेख किया है:—

"इस मंदिर में मूलनायकजी के स्थान पर महावीर भगवान् की मूर्त्ति है। जिसके दोनों तरफ श्रीपार्श्वनाथ व शान्तिनाथ भगवान् की मूर्त्तियाँ हैं।"

परन्तु इस समय इस मंदिर में मूलनायक श्री महावीर स्वामी के स्थान में श्री आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति विराजमान

---

‡ इस मंदिर का वर्णन 'हिन्दु तीर्थ एवं दर्शनीय स्थान' नामक प्रकरण के नवाँ नंबर में देखो।

है, जिसके दाहिनी ओर श्रीपार्श्वनाथ भगवान् की व बांई ओर श्रीशान्तिनाथ भगवान् की मूर्त्ति है। मूलनायकजी की मूर्त्ति के फेरफार के सम्बन्ध में देलवाड़ा तथा अचलगढ़ के लोगों से पूछताछ की, लेकिन कुछ पता नहीं लगा। मूलनायकजी की मूर्त्ति का फेरफार हो जाने पर भी लोग इसको 'महावीर स्वामी का मंदिर' ही कहते हैं।

इस मंदिर में उपर्युक्त तीन मूर्त्तियों के अलावा चौवीसी के पट्ट में की अलग हुई २ बिलकुल छोटी मूर्त्तियाँ और २४ जिन-माताओं का खंडित एक पट्ट है। इस मंदिर में एक भी लेख नहीं है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि इस मंदिर को किसने और कब बनवाया। १४ वीं शताब्दि के मध्यकाल में, आबू पर सिर्फ विमलवसहि, लूण-वसहि और अचलगढ़ में कुमारपाल महाराजा का बनवाया हुआ श्रीमहावीर स्वामी का मंदिर, इन तीन मंदिरों का ही उल्लेख श्री जिनप्रभसूरि कृत 'तीर्थ कल्प' अन्तर्गत 'अर्बुद कल्प' में पाया जाता है। इस पर से मालूम होता है कि यह मंदिर १४ वीं शताब्दि के बाद बना है। श्रीमान् सोम-सुन्दरसूरि रचित 'अर्बुदगिरि कल्प' (कि जो करीब पंद्रहवीं शताब्दि के अन्त में बना है) में लिखा है कि—ओरियासकपुर (ओरीया) में श्रीसंघ की तरफ से

बनवाये हुए नये मंदिर में श्री शान्तिनाथ भगवान् विराजमान हैं। इस लेख से यह स्पष्ट होता है कि-यह मंदिर १५ वीं शताब्दि के अन्त में बना होगा। उस समय मूलनायक के स्थान पर श्री शान्तिनाथ भगवान् की स्थापना की होगी। लेकिन पश्चात् जीर्णोद्धार के समय श्री शान्तिनाथ भगवान् के स्थान पर श्री महावीर स्वामी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित की होगी। इसी कारण, तब से यह मंदिर श्री महावीर स्वामी के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा। इस समय मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान् की मूर्त्ति होने पर भी यह मंदिर 'श्री महावीर स्वामी का मंदिर' इस नाम से ही प्रसिद्ध है।
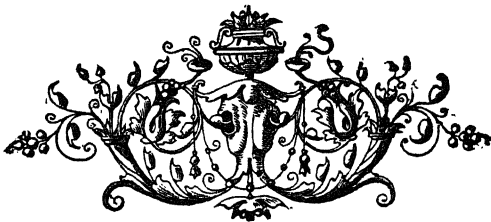
अचलगढ़

देलवाड़ा से उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में लगभग ४।। मील पर और ओरीया से दक्षिण की तरफ करीब १।। मील की दूरी पर अचलगढ़ नामक गांव मौजूद है। देलवाड़ा से अचलगढ़ तक पक्की सड़क है, अचलगढ़ की तलहट्टी तक बैल गाड़ियाँ व घरु छोटी मोटरें (क्योंकि इस सड़क पर किराये की मोटरों—लारियों को चलाने के लिये मनाई है) आदि जा आ सकती हैं। ओरीया गांव में जाने की सड़क जहां से जुदी पड़ती है और जिसके नाके पर पानी की प्याऊ है, वहां से अचलगढ़ की तलहट्टी तक की पक्की सड़क और ऊपर जाने की सीढियाँ अचलगढ़ के जैन मंदिरों की व्यवस्थापक कमेटी ने कुछ वर्ष पहिले बहुत ही परिश्रम करके बनवाई हैं। तब से यात्रियों को वहां जाने आने के लिये विशेष अनुकूलता हो गई है।

अचलगढ़, एक ऊंची टेकरी पर बसा है। वहां पहिले बस्ती विशेष थी, इस समय भी थोड़ी बहुत बस्ती है। इस पर्वत के ऊपरि भाग में अचलगढ़ नामक किला बना है। इसी कारण से यह गांव भी अचलगढ़ कहा जाता

है। तलहट्टी के पास दाहिने हाथ की तरफ सड़क से थोड़ी दूर एक छोटी टेकरी पर श्री शान्तिनाथ भगवान् का भव्य मंदिर है और बांये हाथ की तरफ अचलेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर है। इस मंदिर के समीप में अन्य दो तीन मंदिर और मंदाकिनी कुंड‡ वगैरः हैं। अचलेश्वर महादेव के मंदिर की बाजु में, रास्ते की दाहिनी तरफ अचलेश्वर के महंत के रहने के मकान (जो इस समय खाली हैं) और मंदिर के पीछे बावड़ी व बगीचा है। आगे थोड़ी दूरी पर दाहिनी ओर की किले की दीवार में गणेशजी की मूर्त्ति है। यहां पर इस समय पोल या दरवाजा नहीं है, तथापि यह स्थान गणेशपोल के नाम से प्रसिद्ध है। गणेशपोल से थोड़ी दूरी पर हनुमानपोल है। जिसके दरवाजे के बाहर बांई ओर की देहरी में हनुमानजी की मूर्त्ति है। यहां से गढ़ पर चढने के लिये पत्थर व चूने से बनी हुई सीढियों का घाट शुरु होता है। इस पोल के पास बांई तरफ कपूरसागर नाम का पक्का बंधा हुआ छोटा तालाब है। इसमें बारह महीने पानी रहता है। ताल के किनार पर जैन श्वे० कार्यालय का एक छोटा बाग है और उसके सामने

‡ मंदाकिनी कुंड व अचलेश्वर महादेव आदि अन्यान्य स्थानों के लिये 'हिन्दु तीर्थ और दर्शनीय स्थान' नामक प्रकरण को देखो।

(दाहिने हाथ की तरफ) श्री लक्ष्मीनारायणजी का एक छोटा मंदिर है। यहां से कुछ ऊपर चढने पर चंपापोल आती है, इसके दरवाजे के बाहर एक तरफ महादेवजी की देहरी है। फिर थोड़े आगे जाने पर दाहिनी ओर जैन श्वे० कार्य्यालय, जैन धर्मशाला और श्री कुंथुनाथ भगवान् का मंदिर मिलता है। रास्ते के दोनों तरफ महाजन आदि लोगों के कुछ मकान हैं। वहां से कुछ दूरी पर बांई तरफ दीवाल में भैरवजी की मूर्त्ति है। यह स्थान भैरव-पोल के नाम से मशहूर है। फिर थोड़ी दूर आगे बांई ओर बड़ी जैन धर्मशाला है। धर्मशाला के अंदर होकर थोड़ा ऊपर चढने से श्री आदीश्वर भगवान् का छोटा मंदिर मिलता है तथा वहां से जरा और ऊंचे चढने से शिखर की शिखा पर चौमुखजी का बड़ा मंदिर आता है। इस स्थान को यहां के लोग 'नवंता जोध' कहते हैं।

बड़ी धर्मशाला के दरवाजे के पास से ऊपर जाने का रास्ता है। वहां से थोड़ी दूर आगे एक गिरा हुआ प्राचीन दरवाजा है। यह कुंभा राणा के समय का छठा दरवाजा कहा जाता है। यहां से थोडी दूर आगे 'सावन-भादों' नाम के दो कुंड हैं। इनमें हमेशा पानी रहता है। फिर थोड़ा ऊंचे चढने पर पर्वत के शिखर के पास अचलगढ़

नामक प्राचीन टूटा किला मिलता है। किले के एक तरफ से थोड़ा नीचे उतरने से पहाड़ को खोद कर बनाई हुई दो मंजली गुफा मिलती है। इसको लोग सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की अथवा गोपीचंद की गुफा कहते हैं। इस गुफा के ऊपर एक पुराना मकान है। इसको लोग कुंभाराणा का महल कहते हैं। यहां से, सीधे रास्ते से नीचे उतर कर, अचलगढ़ आ सकते हैं।

'श्रावण-भादों कुंड' के एक तरफ के किनारे के ऊपरी हिस्से में थोड़ी दूरी पर चामुंडादेवी का एक छोटा मंदिर है।

उपर्युक्त कथनानुसार अचलगढ़ में चार जैन मंदिर, दो जैन धर्मशालाएँ, कार्यालय का मकान व एक बगीचा वगैरः जैन श्वे० कार्यालय के स्वाधीन है। यहां श्रावक का सिर्फ एक ही घर है। कार्यालय का नाम शाह अचलशी अमरशी (अचलगढ़) है। जैन यात्रियों के लिये यहां सब प्रकार की व्यवस्था है। यात्री चाहें तो यहां ज्यादा समय भी रह सकते हैं। किराया कुछ नहीं देना पड़ता। कार्यालय का नौकर हमेशा डाक लाता—ले जाता है। थोड़े समय से कार्यालय वालों ने भोजनालय खोल रक्खा है। जिससे

यात्रियों को बहुत सुविधा हो गई है। एक आदमी के एक वक्त के भोजन का मूल्य चार आना है। यहाँ की आबोहवा अच्छी है। प्रतिवर्ष माघ शुक्ला पंचमी को बड़ा भारी मेला होता है। यहाँ का कार्यालय, रोहिड़ा श्री संघ की कमेटी की देखरेख में है। ओरिया के रास्ते की प्याऊ, ओरिया के जैन मंदिर की संभाल, आबू रोड के रास्ते की जैन धर्मशाला (आरणा तलहट्टी) और वहाँ यात्रियों को जो भाता-नाश्ता दिया जाता है, ये सब अचलगढ़ के कार्यालय की तरफ से होते हैं।

उपर्युक्त गढ़, मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) ने वि० सं० १५०९ में बनवाया था। महाराणा इस किले में बहुत दफे रहते थे। ऊपर कथित चौमुखजी का दो मंजिला मंदिर, अचलगढ के ही रहने वाले संघवी सहसा ने बनवाया है। जिस समय मेवाड़ाधीश कुंभाराणा व उनके सामंत, योद्धा लोग तथा संघवी सहसा जैसे अनेक धनाढ्य यहां अचलगढ़ में वास करते होंगे, उस समय अचलगढ़ की कीर्त्ति व उन्नति कितनी होगी? और यहां धनाढ्य और सुखी श्रावकों की आबादी भी कितनी होगी? इसकी वाचक स्वयं कल्पना कर सकते हैं, इसलिये इस वस्तु पर विशेष वर्णन करने की आवश्यक्ता नहीं है।
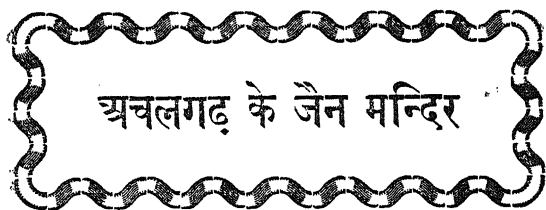
अचलगढ़ के जैन मन्दिर

(१) चौमुखजी का मुख्य मंदिर—

यह मंदिर, राजाधिराज श्री जगमाल के शासनकाल में अचलगढ़ निवासी प्राग्वाट (पौरवाल) ज्ञातीय संघवी सालिग के पुत्र संघवी सहसा ने बनवाया तथा उन्होंने श्री ऋषभदेव भगवान् की धातुमयी बहुत बड़ी और भव्य मूर्त्ति को इस मंदिर में उत्तर दिशा के सन्मुख, मुख्य मूलनायकजी के स्थान पर विराजमान करने के लिये बनवाकर, इसकी प्रतिष्ठा तपगच्छाचार्य्य श्री जयकल्याण-सूरिजी से सं० १५६६ के फाल्गुन शुक्ला १० के दिन कराई। इस समय पर संघवी सहसा के काका आसा ने बड़ी धूम धाम से महोत्सव किया। यह मूर्त्ति (और शायद यह मंदिर भी) मिस्त्री वाच्छा के पुत्र मिस्त्री देपा, इसके पुत्र मिस्त्री अर्बुद, इसके पुत्र मिस्त्री हरदास ने बनाई है। मूर्त्ति पर वि० सं० १५६६ का उक्त आशय वाला लेख है।

दूसरे (पूर्व दिशा के) द्वार में मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् की धातु की मनोहर मूर्त्ति विराजमान है। यह मूर्त्ति; मेवाड़ के राजाधिराज कुंभकर्ण के राज्य में, कुंभलमेरु गांव के, तपगच्छीय श्री संघ ने अपने बनवाये हुए चौमुखजी के मंदिर के मुख्य‡ द्वार को छोड़कर अन्य द्वारों में विराजमान करने के लिये बनवाई और डूंगरपुर नगर में, राजा सोमदास के राज्य काल में, ओसवाल साह साल्हा के किये हुए आश्चर्यकारी प्रतिष्ठा महोत्सव में तपगच्छाचार्य श्री लक्ष्मीसागरसूरिजी से वि० सं० १५१८ के वैशाख बदि ४ के दिन इसकी प्रतिष्ठा कराई। यह मूर्त्ति डूँगरपुर निवासी मिस्त्री लुंभा और लांपा वगैरः ने बनाई है। इस पर उक्त सम्वत् का बड़ा लेख है।

तीसरे (दक्षिण दिशा के) द्वार में श्री शान्तिनाथ भगवान् मूलनायक हैं। यह मूर्त्ति भी धातु की बड़ी एवं रमणीय है। इसको कुंभलमेरु के चौमुखजी के मंदिर में स्थापन करने के लिये वि० सं० १५१८ में उपर्युक्त शाह साल्हा की माता श्राविका कर्मादे ने बनवाई है। इस मूर्त्ति

‡ इस मन्दिर के मुख्य द्वार में, आबू से लाई गई, धातु की बड़ी और मनोहर श्री आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति मूलनायकजी के स्थान पर विराजमान की थी।

पर भी उपर्युक्त सं० १५१८ वैशाख बदि ४ का लेख है। दूसरे व तीसरे द्वार के मूलनायकजी की तथा और भी कई एक मूर्त्तियाँ पीछे से किसी कारण से कुंभलमेरु से यहाँ लाकर विराजमान की गई है ऐसा मालूम होता है।

चौथे (पश्चिम दिशा के) द्वार में मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् की धातुमयी रमणीय बड़ी मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति सं० १५२९ में डूंगरपुर के श्रावकों ने बनवाई है। इसी मतलब का उस पर लेख है।

ये चारों मूलनायकजी की मूर्त्तियाँ धातु की, बहुत बड़ी और मनोहर आकृतिवाली हैं। चारों मूर्त्तियों की बैठकों (गद्दी) पर पूर्वोक्त संवत् के बड़े और सुस्पष्ट लेख खुदे हुए हैं।

प्रथम द्वार के मूलनायकजी के दोनों ओर धातु के बड़े और मनोहर दो काउस्सग्गिये हैं। इन पर वि० सं० ११३४ के लेख हैं। लेख पुराने होने से घिस गये हैं। स्थान की विषमता एवं प्रकाश का अभाव भी लेख पढ़ने में बाधारूप है। अधिक परिश्रम से थोड़े बहुत पढ़ने में आ भी सकते हैं।

दूसरे द्वार के मूलनायकजी के दोनों तरफ संगमरमर के दो काउस्सग्गिये हैं। प्रत्येक काउस्सागिये में, मुख्य

काउस्सग्गिया और दोनों तरफ तथा ऊपर की मूर्त्तियाँ मिलाकर कुल बारह जिन मूर्त्तियाँ, दो इन्द्र, एक श्रावक व एक श्राविका की मूर्त्तियाँ बनी हैं। दोनों श्री पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्त्तियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि—ये दोनों मूर्त्तियाँ एक ही महानुभाव ने बनवाई हैं। इनमें बांई तरफ के काउस्सग्गिये पर वि० सं० १३०२ का लेख है।

तीसरे द्वार के मूलनायकजी के बांई तरफ की धातु-मयी मूर्त्ति पर वि० सं० १५६६ का और दाहिनी ओर की संगमरमर की मूर्त्ति पर वि० सं० १५३७ का लेख है।

चौथे द्वार के मूलनायकजी के दोनों तरफ की धातु की दोनों मूर्त्तियों पर वि० सं० १५६६ के लेख हैं।

इस प्रकार नीचे के मूल गंभारे में मूलनायकजी की धातु की मूर्त्तियाँ ४, धातु के बड़े काउस्सग्गिये २, धातु की बड़ी एकल मूर्त्तियाँ ३, संगमरमर की मूर्त्ति १ और संगमरमर के काउस्सग्गिये २ हैं। मूलगंभारे के बाहर गूढ़ मंडप के दोनों तरफ के गोखले-ताकों में भगवान् की कुल ३ मूर्त्तियाँ हैं।

सभा मंडप में दोनों तरफ एक एक देहरी है। दाहिनी तरफ की देहरी के बीच में मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ भगवान्

हैं। उनकी दाहिनी तरफ शान्तिनाथ भगवान् और बांई तरफ नेमिनाथ भगवान् की मूर्त्तियाँ हैं। ये तीनों मूर्त्तियाँ वि० सं० १६६८ में सिरोही निवासी पौरवाल शाह वणवीर के पुत्रों (राउत, लखमण और कर्मचन्द) ने बनवाई हैं। इस मतलब के इन तीनों मूर्त्तियों पर लेख हैं। इस देहरी में कुल ३ मूर्त्तियाँ हैं।

बांई तरफ की देहरी में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान् की धातु की सुन्दर मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति पर के लेख से प्रकट होता है कि—वि० सं० १५१८ में प्राग्वाट (पौरवाल) ज्ञातीय दोसी डूंगर पुत्र दोसी गोइंद (गोविंद) ने यह मूर्त्ति बनवाई है। यह मूर्त्ति भी कुंभलमेरु से यहां पर लाई गई है। मूलनायकजी के दोनों तरफ एक एक मूर्त्ति है। इन दोनों मूर्त्तियों पर वि० सं० १६६८ के लेख हैं। इस देहरी में भी कुल ३ मूर्त्तियाँ हैं।

इस मंदिर की भमती में, दूसरी मंजिल पर जाने के लिये एक रास्ता है। इस रास्ते के पास संगमरमर की छत्री है, जिसमें एक पादुका-पट्ट है। इसमें एकही पत्थर में नव जोड़ी चरण-पादुका बनी हैं। पट्ट के बिलकुल मध्य भाग में (१) जंबूस्वामि की पादुका है। इसके चारों तरफ (२) विजयदेव सूरि, (३) विजयसिंह सूरि,

(४) पं० सत्यविजयगणि, (५) पं० कपूरविजय-गणि, (६) पं० क्षमाविजयगणि, (७) पं० जिन-विजयगणि, (८) पं० उत्तमविजयगणि, (६) पं० पद्मविजयगणि, के चरण हैं। यह पट्ट अचलगढ़ में स्थापन करने के लिये बनवाया है। बनवाने वाले के नाम का उल्लेख नहीं है। इस पट्ट की प्रतिष्ठा वि० सं० १८८८ के माघ शुक्ला ५ सोमवार को पं० रूपविजयगणि ने की है। पट्ट पर इस मतलब का लेख है। इस पट्ट के प्रतिष्ठक और छत्री बनाने के उपदेशक पं० श्री रूपविजयजी होने से इस छत्री को लोग रूपविजयजी की देहरी कहते हैं।

दूसरी मंजिल पर चौमुखजी हैं। जिसमें (१) पार्श्वनाथ भगवान्, (२) आदिनाथ भगवान्, (३) आदिनाथ भगवान् और (४) आदिनाथ भगवान् ऐसे चार मूर्त्तियाँ हैं। चारों मूर्त्तियाँ धातुमयी हैं। पूर्व द्वार की मूर्त्ति पर लेख नहीं है। यह मूर्त्ति अति प्राचीन मालूम होती है। शेष तीनों मूर्त्तियों पर सं० १५६६ के लेख हैं। इस खंड में कुल ४ ही मूर्त्तियाँ हैं।

इस मंदिर में ऊपर नीचे होकर धातु की कुल १४ मूर्त्तियाँ हैं। जिनका वजन १४४४ मन होने का लोगों में कहा जाता है। किन्तु पाठकों को मालूम हो ही गया

है कि—ये सब मूर्त्तियाँ भिन्न २ वर्षों में भिन्न २ व्यक्तियों के द्वारा बनी हैं।

यह मंदिर ‡ पहाड़ के एक ऊंचे शिखर पर बना है, इसकी दूसरी मंजिल से आबू पर्वत की प्राकृतिक रमणीयता, आबू पर्वत की नीचे की भूमि, और दूर दूर के गांवों के दृश्य अत्यन्त मनोहर मालूम होते हैं।

इस मंदिर की दोनों मंजिलों में कुल मूर्त्तियां इस प्रकार हैं:—

धातु की मनोहर मूर्त्तियाँ १२, धातु के बड़े काउस्सग्गिये २, संगमरमर के काउस्सग्गिये २ और संगमरमर की मूर्त्तियां ९—इस प्रकार कुल २५ मूर्त्तियाँ व एक पादुका पट्ट है।

---

‡ यहां के लोगों में दन्त कथा है कि—मेवाड़ के महाराणा कुंभकरण, अचलगढ नामक किले के अपने महल के गवाक्ष में बैठ कर उपर्युक्त चौमुखजी के मंदिर की दूसरी मंजिल मूलनायक भगवान् के दर्शन कर सकें, इस प्रकार यह मंदिर बनवाया गया है। परन्तु—यह दन्त कथा निर्मूल मालूम होती है। क्योंकि—महाराणा कुंभकरण का स्वर्गवास वि० सं० १५२५ में हुआ है और यह मंदिर वि० सं० १५६६ में बना है। शायद यह दन्त कथा सिरोही के उस समय के शासक महाशय जगमाल के संबंध में हो, क्योंकि—उस समय आबू पर्वत पर उनका आधिपत्य था।

(२) आदीश्वर भगवान का मंदिर

यह मंदिर चौमुखजी के मंदिर से थोड़ी दूर नीचे की तरफ है। इसमें मूलनायकजी की जगह पर आदीश्वर भगवान् की मूर्त्ति है, जिसपर वि० सं० १७२१ का लेख है। मूलनायकजी के दोनों तरफ एक एक मूर्त्ति है। अहमदाबाद निवासी श्रीश्रीमाल ज्ञाति के दोसी शान्तिदास सेठ ने यह मूलनायकजी की मूर्त्ति बनवाई है। संभव है यह मंदिर भी उन्हीं ने बनवाया हो, या उन्हीं की बनवाई हुई यह मूर्त्ति कहीं से लाकर यहां स्थापित की गई हो।

इस मंदिर की भमती में छोटी छोटी २४ देहरियाँ, चरण-पादुका आदि की चार छत्रियां, तथा एक चक्रेश्वरी देवी की देहरी है। भमती की प्रत्येक देहरी में एक एक जिन मूर्त्ति है। इनमें की एक देहरी में पंचतीर्थी के परिकर वाली श्री कुंथुनाथ भगवान् की मूर्त्ति है, जिस पर वि० सं० १३८० का छोटा लेख है। चार छत्रियों में चार जोड़ चरण-पादुका की हैं। इन पादुकाओं पर अर्वाचीन छोटे छोटे लेख हैं। प्रायः ये चारों पादुकायें यतिओं की हैं और उसमें सरस्वती देवी ‡ की एक छोटी

‡ सरस्वती देवी का देवस्थान बहुत वर्षों से अचलगढ पर होने का ज्ञात होता है। यह मूर्त्ति प्रथम उपर्युक्त चक्रेश्वरी देवी की देहरी में

मूर्त्ति तथा पाषाण का एक यंत्र है। एक देहरी में चक्रेश्वरी देवी ‡ की एक मूर्त्ति है। एक कोठड़ी में काष्ट की बनी हुई भगवान् की सुन्दर किन्तु अप्रतिष्ठित चार मूर्त्तियाँ हैं। इस मंदिर पर कलश तथा ध्वजा-दंड नहीं हैं। श्रीमान् सेठ शान्तिदास के उत्तराधिकारियों को अथवा श्रीसंघ को ध्वजादंड के लिये अवश्य ध्यान देना चाहिये।

अथवा अन्य किसी खास स्थान में होनी चाहिए। और उसका उस समय में विशेष महात्म्य प्रचलित होना चाहिए। क्योंकि—महाराणा कुंभकरण जैसे भी उसके सामने बैठ कर धार्मिक पंचायतें करते थे। जैसे कि— आबू की यात्रा के लिये आते हुए किसी भी जैन यात्री से मुंडका अथवा वोलावा (चोकी) नहीं लेने के विषय में मेवाड़ के महाराणा कुंभकरण (कुंभाराणा) का वि० सं० १५०६ का लेख, जो कि अब तक देलवाड़े में लूणवसहिं मंदिर के बाहर के कीर्त्तिस्तंभ के पास है, वह लेख अचलगढ़ के ऊपर सरस्वती देवी के सामने बैठ कर निर्णय करके लिखा गया है।

‡ इस देहरी में चक्रेश्वरी देवी की मूर्त्ति होने का कहा जाता है। लेकिन सचमुच में वह मूर्त्ति चक्रेश्वरी देवी की नहीं है। क्योंकि—चार हाथ वाली इस मूर्त्ति के एक हाथ में खड्ग, दूसरे हाथ में त्रिशूल, तीसरे हाथ में बीजोरा (फल) और चौथे हाथ में ग्लास के जैसा कुछ है और व्याघ्र का वाहन है। जब कि—चक्रेश्वरी देवी के दाहिने चार हाथ में वरदान, बाण, चक्र व पाश और बांये चार हाथों में धनुष्य, वज्र, चक्र और अंकुश होते हैं और गरुड़ का वाहन होना चाहिये, किन्तु इस में ऐसा नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि—यह मूर्त्ति किसी अन्य देवी की होनी चाहिये। लेकिन यहां पर तो यह चक्रेश्वरी देवी के नाम से पूजी जाती है।

इस मंदिर में कुल जिन मूर्त्तियाँ २७, पादुका जोड़ी ४, सरस्वती देवी की मूर्त्ति १, चक्रेश्वरी देवी की मूर्त्ति १ और पाषाण का यंत्र१ है।

---

(३) श्री कुंथुनाथ भगवान् का मंदिर

कार्यालय के मकान के पास देरासर जैसा यह मंदिर बना है। इस मंदिर को किसने और कब बनवाया ? यह मालूम नहीं हुआ। इस मंदिर में वि० सं० १५२७ के लेखवाली श्रीकुंथुनाथ भगवान् की धातु की मनोहर मूर्त्ति मूलनायकजी के स्थान पर बिराजमान है। मूलनायकजी के दोनों तरफ धातु के काउस्सग्गिये २, संगमरमर की मूर्त्ति १, धातु की बड़ी एकल मूर्त्तियाँ २, चौमुखजी स्वरूप धातु की संयुक्त चार मूर्त्तियां वाला समवसरण १, और धातु की छोटा मूर्त्तियाँ (एकतीर्थी, त्रितीर्थी, पंच-तीर्थी तथा चौवीसी मिलाकर) १६४ हैं। इन छोटी मूर्त्तियों में कई एक मूर्त्तियाँ अति प्राचीन है। चूने से ये छोटी मूर्त्तियाँ स्थिर करदी गई हैं ‡। इस प्रकार इस मंदिर

‡ यहां धातु की ये छोटी मूर्त्तियां अधिक हैं। इसलिये अन्य किसी जगह नये मंदिरों में जहां मूर्त्तियों की आवश्यकता हो वहां दी जानी चाहिये

(देरासर) में, (समवसरण की संयुक्त चारों मूर्त्तियों को जुदी जुदी गिनने से) कुल १७४ मूर्त्तियाँ हैं।

इस मंदिर में मूलनायकजी की बांई तरफ धातु की पंचतीर्थियों की पंक्ति के मध्य में पद्मासन वाली धातु की एक एकल मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के दाहिने कंधे पर मुंहपत्ति और शरीर पर वस्त्र का चिन्ह है। इस समय ओघा (रजोहरन) नहीं है, परन्तु गरदन के पीछे बना हुआ होगा, पीछे से टूटकर निकल गया होगा, ऐसा अनुमान हो सकता है। यह मूर्त्ति, देलवाड़ा में भीमाशाह के मंदिर के अन्तर्गत श्री सुविधिनाथजी के मंदिर में श्री पुंडरीक स्वामि की मूर्त्ति है, उसके सदृश प्रतीत होती है, शायद यह मूर्त्ति पुंडरीक स्वामी या अन्य किसी गणधर की होगी। मूर्त्ति पर लेख नहीं है।

कार्यालय के मकान में गद्दी की छत्री के पास पीतल के तीन सुन्दर घोड़े हैं। इन घोड़ों पर तलवार, ढाल और भालादि शस्त्रों से सुसज्जित सवार बैठे हैं। बीच के सवार के सिर पर छत्र है। अन्य दो घोड़ों के सवारों के मस्तक पर भी छत्र के चिन्ह हैं। परन्तु पीछे से छत्र

ताकि—उपयोग पूर्वक पूजन हो सके। इसलिये इस बात पर प्रबंधकों को खास ध्यान देना चाहिये।

निकल गये हैं। प्रत्येक घोड़े का सवार सहित वजन २॥ मन है। प्रत्येक घोड़े के बनवाने में १०० महमुंदी ‡ खर्च हुए हैं। ये घोड़े डूँगरपुर में बनवाये गये हैं।

बीच का छत्रवाला घोड़ा, कल्की (कलंकी) अवतार के पुत्र धर्मराज दत्त राजा का है और वह, मेवाड़ देश में कुंभलमेरु नामक महादुर्ग में महाराणा कुंभकरण के राज्य में, चौमुखजी को पूजने वाले शाह पन्ना के पुत्र शाह शार्दूल ने वि० सं० १५६६ के मार्गशीर्ष शुक्ला १५ के दिन बनवाया है। इस मतलब का उस पर लेख है §। इस लेख से यह घोड़ा कुंभलमेरु महादुर्ग के चौमुख श्री आदिनाथजी के मंदिर में रखने के लिये बनवाया हो और वहाँ से अन्य मूर्त्तियों के साथ यहीं लाया गया हो, ऐसा अनुमान होता है।

---

‡ महमुंदी, उस समय का प्रचलित चांदी का सिक्का।

§ इस लेख में "श्रीमेदपाटदेश कुंभलमेरमहादुर्गे श्रीराणाश्री कुंभकरणविजयराज्ये" इस प्रकार लिखा है। परन्तु यह असंबद्ध मालुम होता है। क्योंकि महाराना कुंभकरण का स्वर्गवास १५२५ में हो चुका था। तथापि–कुंभाराणा ने मेवाड़ को खूब उन्नत और आबाद बनाया था, इस कारण से उनके पुत्र-पौत्रादि के राज्य काल में भी महाराणा 'कुंभकरण विजयराज्ये' ऐसा कहने लिखने की प्रथा लोगों में प्रचलित हो, और इस लिये ऐसा लिखा गया हो, तो यह संभावित है।
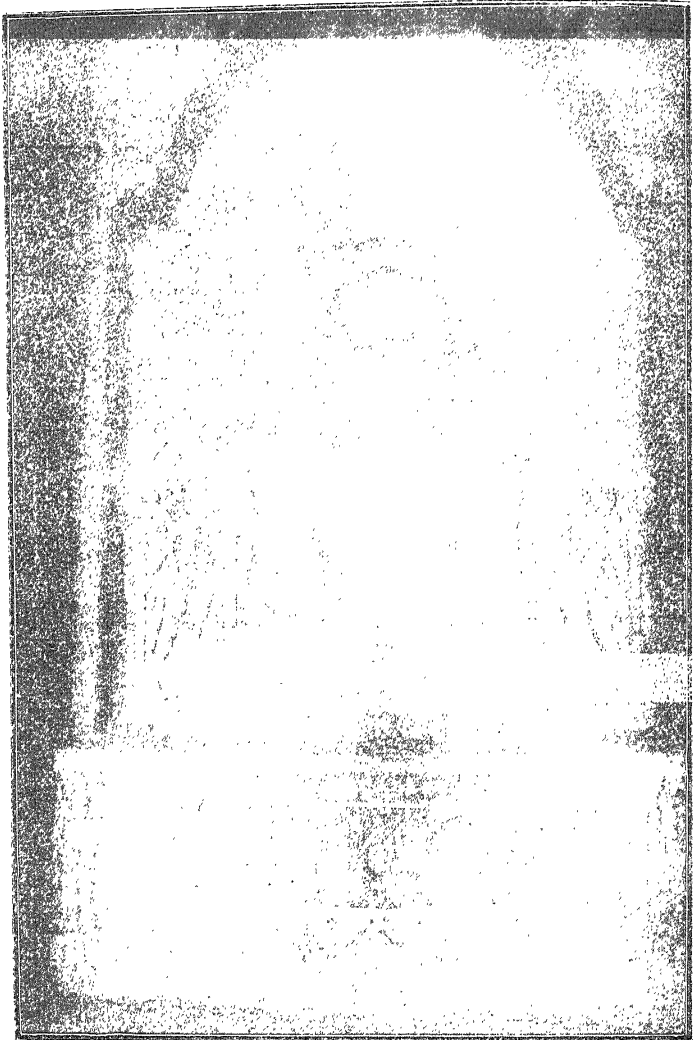
इसके दोनों तरफ के घोड़े सिरोही राज्य के किसी दो क्षत्रिय राजाओं (ठाकुरों) के हैं। दोनों घोड़ों के लेखों से मालूम होता है कि—ये घोड़े खुद के बनवाये हुए मंदिरों में रखने के लिये उपर्युक्त खुद ने ही वि० सं० १५६६ में बनवाये थे। लोग इन तीनों घोड़ों को कुंभाराणा के कहते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं हैं सत्य हकीकत उपर्युक्त कथनानुसार है‡।

श्री शान्तिनाथजी का मंदिर

यह मंदिर अचलगढ़ की तलहट्टी में सड़क से थोड़ी दूर एक छोटी टेकरी पर बना हुआ है। लोग इसको महाराजा **कुमारपाल का मंदिर** कहते हैं। श्री जिनप्रभसूरि 'तीर्थकल्प' अन्तर्गत श्री 'अर्बुदकल्प' में और श्री सोमसुंदरसूरि श्री 'अर्बुदागिरिकल्प' में लिखते हैं कि—"आबू पर्वत पर गुजरात के सोलंकी महाराजा **कुमारपाल** का बनवाया हुआ महावीर स्वामी का सुशो-

‡ ये तीनों घोड़े, कार्यालय से बड़ी जैन धर्मशाला की ओर के रास्ते पर बांई तरफ की देहरी में रक्खे रहते थे, जो देहरी प्राय: इन घोड़ों के लिये ही बनवाई गई थी। परन्तु वहां पर ठीक २ सँभाल नहीं होती थी, इस लिये ये घोड़े कई वर्षों से कार्यालय में रक्खे हैं। देहरी अभी खाली पड़ी है।

भित मंदिर है।" इस पर से और मंदिर की बनावट‡ से भी मालूम होता है कि—महाराजा कुमारपाल का आबू पर बनवाया हुआ मंदिर यही होना चाहिए। इस मंदिर में पहले मूलनायक श्री महावीर स्वामी होंगे, परन्तु पश्चात् जीर्णोद्धार के समय श्री शान्तिनाथ भगवान् की स्थापना की होगी। यद्यपि इस कथन की पुष्टि में यहाँ एक भी लेख नहीं है, तथापि यह निश्चय होता है कि—यह मंदिर कुमारापल का बनवाया हुआ है।

इस मंदिर में शान्तिनाथ भगवान् की परिकरवाली सुन्दर विशाल मूर्त्ति मूलनायकजी के स्थान पर विराजमान है। मूलगम्भारे में परिकर रहित एक दूसरी मूर्त्ति है। रंगमंडप में काउस्सग्ग ध्यानस्थित सुन्दर खड़ी दो बड़ी मूर्त्तियाँ † हैं। प्रत्येक में बीच में मूलनायकजी के तौर पर काउस्सग्गिया और आस पास में २३-२३ छोटी जिन मूर्त्तियाँ बनी हैं। अर्थात् दोनों में एक एक चौबीसी की रचना है। इस प्रकार इस मंदिर में भगवान् की मूर्त्तियाँ २

‡ सुना है कि—जैन शिल्प शास्त्रों में राजा, मंत्री और सेठ-श्रावक के बनवाये हुए जैन मंदिरों में सिंहमाल, गजमाल और अश्वमाल आदि भिन्न भिन्न चिह्न होने का लिखा है।

और काउस्सग्गिये २, मिलाकर कुल मूर्त्तियाँ ४ हैं। इनमें एक काउस्सग्गिये पर वि० सं० १३०२ का लेख है।

मूलनायकजी के पास गम्भारे में सुन्दर नकशी वाले दो खंभों के ऊपर नकशीदार पत्थर की महराब वाला एक तोरण है। इन दोनों स्तंभों में भगवान् की १० मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं।

गर्भागार (मूलगम्भारा) के दरवाजे के बारशाख की दोनों तरफ की खुदाई में श्रावक हाथ में पुष्पमाला, कलशादि पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं।

गूढमंडप के मुख्य प्रवेश-द्वार की मंगल मूर्त्ति के ऊपर भगवान् की अन्य तीन मूर्त्तियाँ बनी हैं। दरवाजे के आसपास की नक्शी–काम में दोनों ओर कुल चार काउस्सग्गिये और अन्य देव-देवियों की मूर्त्तियाँ बनी हैं।

मंदिर की बाहिरी (भमती की तरफ की) दीवार में कुर्सी के नीचे चारों तरफ गजमाल और सिंहमाल की पंक्तियों के ऊपर की लाइन में नाना प्रकार की कारीगरी है। जिसमें स्थान २ पर जिन मूर्त्तियाँ, काउस्सग्गिया आचार्यों तथा साधुओं की मूर्त्तियाँ, पांच पांडव, मल्ल कुश्ती, लड़ाई, सवारी, नाटक आदि कई एक मनोहर दृश्य चित्रित हैं।

मूल गम्भारे के पीछे के सारे भाग में अत्यन्त रमणीय शिल्प कला के नमूने खुदे हुए हैं, जिनमें काउस्सग्गिये और देव-देवियों की मूर्त्तियाँ भी हैं।

अचलेश्वर महादेव के मंदिर के कम्पाउण्ड के मुख्य दरवाजे के सामने महादेव का एक छोटा मंदिर है। उसके दरवाजे पर मंगल मूर्त्ति के स्थान में तीर्थंकर भगवान् की मूर्त्ति खुदी हुई है। इससे, यह मंदिर पहिले जैन मंदिर हो अथवा इस दरवाजे के पत्थर किसी जैन मंदिर से लाकर यहां पर लगाये गये हों, ऐसा मालूम होता है।

अचलगढ़ और ओरिया के जैन-मन्दिरों की मूर्त्तियों की संख्या

	मूर्त्ति आदि	चौमुखजी	आदीश्वरजी	कुंथुनाथजी	शांतिनाथजी	ओरिया महावीर स्वामी	कुल संख्या
१	चौमुखजी के मंदिर के नीचे के खंड के मूलनायकजी की धातुमयी विशाल मूर्त्तियाँ ...	४	...	...	...	...	४
२	धातु के बड़े काउसग्गिये	२	...	२	...	...	४
३	धातु की एकल बड़ी मूर्त्तियाँ	८	...	३	...	...	११
४	संगमरमर के काउस्सग्गिये	२	...	...	२	...	४
५	संगमरमर की परिकर रहित मूर्तियाँ ...	६	२६	१	१	३	४०
६	परिकर वाली मूलनायक श्री शान्तिनाथ भगवान् की मूर्त्ति ...	...	...	...	१	...	१
७	पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति	...	१	...	...	...	१

नम्बर	मूर्त्ति आदि	चौमुखजी	आदीश्वरजी	कुंथुनाथजी	शांतिनाथजी	श्रोरिया महावीर स्वामी	कुल संख्या
८	धातु के चौमुखजी युक्त समवसरण ...	...	...	१	...	...	१
९	धातु की छोटी पंच-तीर्थी, त्रितीर्थी, एक-तीर्थी व चौबीसियां...	...	...	१६४	..	...	१६४
१०	चौवीसी के पट्ट में से अलग हुई छोटी मूर्त्तियां	...	...	...	...	३	३
११	जिन-माता चौवीसी का खंडित पट्ट ...	...	...	...	...	१	१
१२	जंबू स्वामि व आचार्यों की नव पादुका जोड़ी का पट्ट	१	...	...	...	...	१
१३	चरण जोड़ी ...	...	४	...	...	...	४
१४	सरस्वती देवी की मूर्त्ति	...	१	...	...	...	१
१५	चक्रेश्वरी देवी की मूर्त्ति	...	१	...	...	...	१
१६	पाषाण यंत्र ...	...	१	...	...	...	१
१७	कार्यालय के मकान में पित्तल के सवार युक्त घोड़े ३	...	...	...	..	...	३

हिन्दू तीर्थ तथा दर्शनीय स्थान

(अचलगढ़)

(१) श्रावण–भाद्रपद (सावन–भादों) अचल-गढ़ के ऊपर की बड़ी जैन धर्मशाला के मुख्य दरवाजे के पास से किले की तरफ कुछ ऊँचाई पर जाने से दो जलाशय आते हैं। इनको लोग 'श्रावण–भाद्रपद' कहते हैं। बिना प्रयत्न ये पहाड़ में स्वाभाविक बने हुए नजर आते हैं। किनारे का कुछ हिस्सा बांधा हुआ दृष्टि-गोचर होता है, बाकी का सब हिस्सा प्राकृतिक मालूम होता है। इन दोनों में बारह मास जल रहता है।

(२) चामुंडा देवी–श्रावण-भाद्रपद के एक ओर के किनारे के ऊपरी हिस्से में, किनारे से कुछ हट कर चामुंडा देवी का एक छोटा मन्दिर है।

(३) अचलगढ़ दुर्ग—श्रावण-भाद्रपद से कुछ ऊंचाई पर जाने से पहाड़ के एक शिखर के पास अचलगढ़ नामक एक टूटा फूटा किला है। यह किला मेवाड़ के महाराणा कुंभकरण (कुंभा) ने वि० सं० १५०९ में

बनवाया था। महाराणा कुंभकरण कभी कभी अपने परिवार के साथ इस दुर्ग में रहते थे। कहा जाता है कि- महाराणा कुंभकरण के समय में इस दुर्ग के मुख्य दरवाजे से लेकरअचलेश्वर महादेव के मन्दिर तक में सात दरवाजे (पोल) थे।

(४) **हरिश्चन्द्र गुफा**—उस किले के पास से कुछ नीचाई पर जाने से पहाड़ में से खोदकर बनाई हुई एक गुफा आती है। यह गुफा दो मंजिल की है। नीचे की मंजिल में दो तीन खण्ड बनाये हैं। कोई इस गुफा को सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की गुफा कहते हैं, तो कोई इसको **गोपीचन्दजी** की गुफा कहते हैं। इस गुफा में दो धुणियाँ बनी हुई हैं। इससे ख़याल होता है कि प्रथम इसमें हिन्दू साधू-सन्त रहते होंगे। इस गुफा के ऊपरी हिस्से में एक पुराना मकान है, लोग इसे कुंभा राणा का महल कहते हैं।

अचलेश्वर महादेव का मन्दिर— ‡ अचलगढ से नीचे तलहट्टी में अचलेश्वर महादेव का बिलकुल सादा

---

‡ गुजराती साहित्य परिषद् के सभ्य श्रीमान् दुर्गाशंकर केवल-राम शास्त्री 'गुजरात' मासिक के पृ० १२ अं० २ में प्रकाशित अपने आबू-अर्बुदगिरि नामक लेख में लिखते हैं कि-"(अचलगढ के पास)

किन्तु प्राचीन मन्दिर है। यह मन्दिर एक विशाल कम्पाउण्ड में है। उसके आस पास में अन्य छोटे छोटे मन्दिर, मन्दाकिनी कुण्ड और बावड़ी आदि हैं। हिन्दू प्रजा अचलेश्वर महादेव को आबू के अधिष्ठायक देव कहती है। पहिले आबू के परमार राजाओं के तथा जब से आबू पर चौहाण वंशीय राजाओं का आधिपत्य हुआ तब से उन राजाओं के भी अचलेश्वर महादेव कुलदेव माने जाते हैं।

अचलेश्वर महादेव का यह मूल मन्दिर बहुत प्राचीन है और कई बार इसका जीर्णोद्धार ‡ भी हुआ है। इसमें शिवलिंग नहीं किन्तु शिवजी के पैर का अगूंठा पूजा जाता है। मूल गंभारे के मध्य भाग में शिवजी के पैर का अगूंठा अथवा अगूंठे का चिह्न है। सामने दीवार

अचलेश्वर महादेव का बड़ा देवालय है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि —पहिले यह जैन मन्दिर था"।

‡ चन्द्रावती के चौहाण महाराव लुंभा ने वि० सं० १३७७ में अथवा इसके करीब श्री अचलेश्वर महादेव के मन्दिर के मंडप का जीर्णोद्धार करवाया और मन्दिर में अपनी रानी की मूर्त्ति स्थापन की। इसके साथ हेठुंजी गांव (जो कि आबू के ऊपर है), अचलेश्वर के मन्दिर को अर्पण किया। ऊपर्युक्त महाराव लुंभा के पुत्र महाराव तेजसिंह के पुत्र महाराव कान्हड़देव की पत्थर की मनोरम मूर्त्ति अचलेश्वरजी के सभामण्डप में है। उसके ऊपर वि० सं० १४०० का लेख है।

के बीच में पार्वतीजी की तथा दोनों बाजू में एक ऋषि व दो राजाओं की अथवा किसी दो गृहस्थ सेवकों की मूर्त्तियाँ हैं।

इस मन्दिर के गूढ़ मण्डप (मूल गंभारे के बाहर के मंडप) में दाहिने हाथ की ओर आरसका अस्टोतरशत शिवलिंग का एक पट्ट है। उसमें छोटे छोटे १०८ शिवलिंग बनाये हैं। इनके सिवाय गूढ मण्डप में अन्य देव-देवियों की मूर्त्तियाँ आदि हैं। मन्दिर के भीतर और बाहर की चौकी में शिवभक्त राजा तथा गृहस्थों की बहुतसी मूर्त्तियाँ हैं। उनमें से बहुतसी मूर्त्तियों पर १३ वीं से १८ वीं शताब्दि तक के लेख हैं।

मन्दिर के बाहर के हिस्से में दाहिने हाथ तरफ की दीवार में महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल का एक बड़ा शिला-लेख वि० सं० १२९४ के कुछ पहिले का लगा हुआ है। यह लेख, खुली जगह में होने से इसके ऊपर हमेशा वर्षा ऋतु में पानी गिरने से बहुत बिगड़ गया है, कुछ हिस्सा घिस भी गया है तथापि उसमें से आबू के परमार राजाओं का, गुजरात के सोलंकी राजाओं का और उनके मन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल के वंश का विस्तृत वर्णन पढ सकते हैं। बाकी का हिस्सा घिस जाने से महामन्त्री वस्तुपाल-तेज-

पाल ने इस मन्दिर में क्या बनवाया, यह पता नहीं लगा सकते। तथापि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार या ऐसा कोई अन्य महत्त्व का कार्य अवश्य किया है‡। इस लेख के प्रारंभ में अचलेश्वर महादेव को नमस्कार किया है। इसलिये यह लेख इसी मन्दिर के लिये ही बनाया है ऐसा निश्चय होता है।

इस मन्दिर के पास ही के मठ में एक बड़ी शिला के ऊपर मेवाड़ के महारावल समरसिंह का वि० सं० १३४२ का लेख है। इस लेख से मालूम होता है कि-महारावल समरसिंह ने यहाँ के मठाधिपति भावशंकर (जो कि बड़ा तपस्वी था) की आज्ञा से इस मठ का जीर्णोद्धार करवाया तथा अचलेश्वर महादेव के मन्दिर के ऊपर सुवर्ण का ध्वजदण्ड चढ़ाया, और यहाँ निवास करने वाले तपस्वियों के भोजन के लिये व्यवस्था की। तीसरा लेख चौहाण महाराव लुंभा का, वि० सं० १३७७ का, मन्दिर के बाहर एक ताख में लगा हुआ है। उसमें चौहाणों की वंशावली

‡ महामात्य वस्तुपाल तथा तेजपाल ने, दृढ श्रावक होने पर भी, बहुत से शिवालय तथा मस्जिदें नई बनवाई थी या उनकी मरम्मत करवाई थी। उसके प्रमाणस्वरूप इस दृष्टान्त के सिवाय अन्य भी बहुत प्रमाण मिलते हैं। ये उनकी तथा जैनधर्म की उदारता को अच्छी तरह से जाहिर करते हैं।

तथा महाराव लुंभाजी ने आबू का प्रदेश तथा चंद्रावती का प्रदेश अपने स्वाधीन किया उसका उल्लेख है। मन्दिर के पीछे की वापिका (बावड़ी) में महाराव तेजसिंह के समय का वि० सं० १३८७ के माघ शुक्ला तृतीया का लेख है। मन्दिर के सामने ही पित्तल का बना हुआ एक बड़ा नंदि (पोठिया) है। उसकी गद्दी पर वि० सं० १४६४ के चैत्र शुक्ला ८ का लेख है। नंदि के पास में ही प्रसिद्ध चारण कवि दुरासा आढा की पित्तल की—खुद की ही बनवाई हुई मूर्त्ति है, उसके ऊपर वि० सं० १६८६ के वैशाख शुक्ला ५ का लेख है। नंदि की देहरी के बाहरी हिस्से में लोहे का एक बड़ा त्रिशूल है, उसके ऊपर वि० सं० १४६८ के फाल्गुन शुक्ला १५ का लेख है। इस त्रिशूल को राणा लाखा, ठाकुर मांडण तथा कुँवर भादा ने धाणेराव गाँव में बनवा कर अचलेश्वरजी को अर्पण किया है। ऐसा बड़ा त्रिशूल और कहीं देखने में नहीं आया।

अचलेश्वर महादेव के मन्दिर के कम्पाउण्ड में अन्य कितनेक छोटे २ मन्दिर हैं, जिनमें विष्णु आदि भिन्न २ देव-देवियों की मूर्त्तियाँ हैं। मंदाकिनी कुंड की ओर कोने में महाराणा कुम्भकरण का बनवाया हुआ कुंभस्वामी का मन्दिर है। अचलेश्वर के मन्दिर की बाजू में मंदा-

अचलगढ़—अचलेश्वर महादेव का नन्दी और
कवि दुरासा आढा.

D. J. Press. Ajmer.
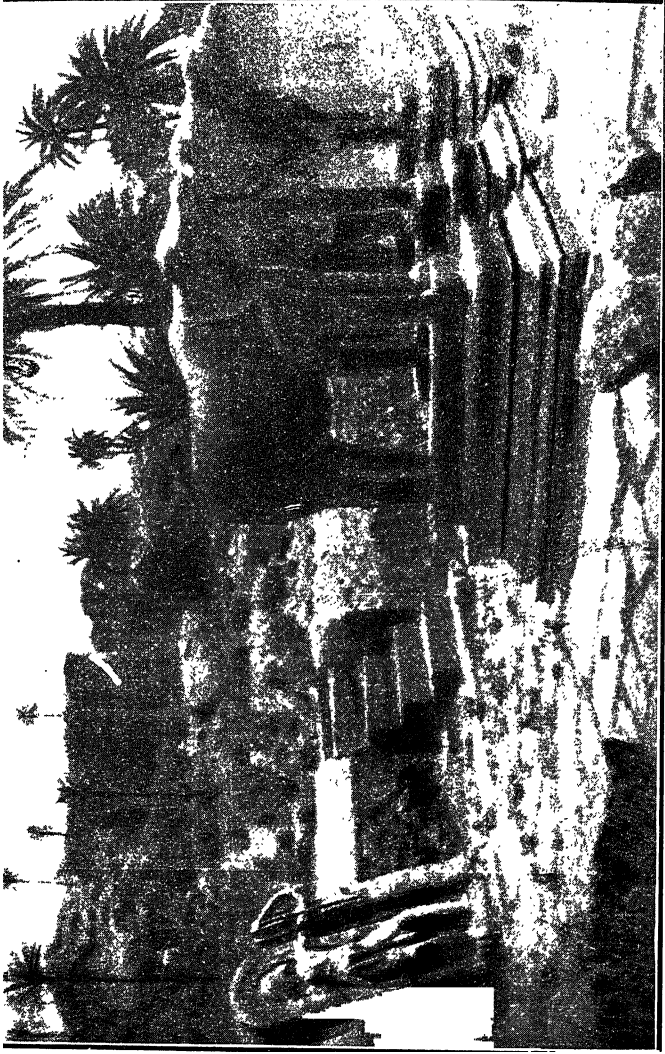
परमार धारावर्षा देव और तीन महिश (पाड़े)

किनी नाम का एक बड़ा कुण्ड है‡। जिसकी लम्बाई ६०० फीट तथा चौड़ाई २४० फीट है। ऐसा विशाल कुण्ड दूसरी जगह शायद ही किसी के देखने में आया होगा। इस कुण्ड को लोग मंदाकिनी अर्थात् गंगा नदी भी कहते हैं। यह कुण्ड हाल में बहुत ही जीर्ण होगया है। इसके किनारे के ऊपर परमार राजा धारावर्ष के धनुष के सहित मकराणा पत्थर की बनी हुई सुंदर मूर्त्ति§ है। इसके अग्र भाग में काले पत्थर के, पूरे कद के तीन बड़े २ पाडे (भैंसे) एक ही लाइन में खड़े हैं। उनके शरीर के

---

‡ चित्तौड़ के कीर्त्तिस्तंभ की प्रशस्ति में महाराणा कुंभा ने आबू के ऊपर कुम्भस्वामी का मन्दिर और उसके नजदीक एक कुण्ड बनवाया है, ऐसा लिखा है। कुंभस्वामी के मन्दिर के पास यह मंदाकिनी नाम का ही कुण्ड है, इससे सम्भव है कि महाराणा कुम्भा ने इसका जीर्णोद्धार करवाया होगा। (सिरोही राज्य का इतिहास पृ० ७४)

§ यह मूर्ति कब निर्माण की गई यह निश्चित नहीं हो सकता। इस मूर्त्ति के धनुष पर वि० सं० १५३३ के फाल्गुन कृष्णा ६ का एक लेख है। किन्तु मूर्त्ति उस समय से भी ज्यादा पुरानी मालूम होती है, इसलिये सम्भव है कि—धनुष वाला पत्थर का हिस्सा टूट गया होगा और फिर उस भाग को किसी ने नया बनवाया होगा। यह मूर्त्ति करीब ५ फीट ऊंची है और देलवाड़ा के मन्दिर में जो वस्तुपाल आदि की मूर्त्तियाँ हैं उनके सदृश है। इससे सम्भव है कि—वह उस समय के करीब बनी होगी। ('सिरोही राज्य का इतिहास' पृ० ७४)

मध्य भाग में एक २ सुराख़ है। उसका मतलब यह है कि–धारावर्ष राजा ऐसा पराक्रमी था कि–एक साथ खड़े हुए तीन भैंसों को एक ही तीर (बाण) से बेध देता था। कितनेक लोग कहते हैं कि–ये तीनों भैंसे नहीं हैं, किन्तु दैत्य हैं, मगर यह कहना ठीक नहीं है। इस मन्दाकिनी कुण्ड के किनारे के नज़दीक सिरोही के महाराव मानसिंह के स्मरणार्थ बनाया हुआ श्री सारणेश्वरजी महादेव का एक मन्दिर है। (महाराव मानसिंह आबू पर एक परमार राजपूत के हाथ से कत्ल किये गये थे और उनको इस मन्दिर वाले स्थान पर अग्नि दाह दिया गया था) इस शिव मन्दिर को उसकी माता धारबाई ने वि० सं० १६३४ में बनवाया था। उसमें अपनी पांचों राणियों के सहित महाराव मानसिंहजी की मूर्त्ति शिवजी की आराधना करती हुई खड़ी है। ये पांचों राणियाँ उसके साथ सती हुई होंगी ऐसा मालूम होता है‡।

(६) भर्तृहरि गुफा—मंदाकिनी कुण्ड के एक किनारे से कुछ दूरी पर एक गुफा है। लोग उसे भर्तृहरि

---

‡ अचलेश्वरजी महादेव तथा उनके कम्पाउण्ड के अन्य मन्दिरों को मिलाकर सब में से तीस लेख प्राप्त हुए हैं। उनमें सब से प्राचीन वि० सं० ११८६ का लेख है। अन्य लेख उसके पीछे के हैं। (देखो–'प्राचीन जैन लेख संग्रह', अवलोकन—पृ० १४०)

की गुफा कहते हैं। यह गुफा पक्के मकान के रूप में बनाई गई है। थोड़े ही वर्ष पूर्व किसी सन्त ने इसमें कुछ नये मकानात व मंदिर आदि बनवाना शुरू किया था, जिनका कुछ २ हिस्सा बन गया, कुछ हिस्सा बाकी रह गया है।

(७) **रेवती कुण्ड**—मंदाकिनी कुण्ड के पीछे रेवती कुण्ड नामक एक कुण्ड है। उसमें हमेशा जल रहता है।

(८) **भृगू आश्रम**—भर्तृहरि की गुफा से करीब एक मील की दूरी पर भृगु-आश्रम है। वहां महादेवजी का मन्दिर, गौमुख (गोमती) कुण्ड, ब्रह्माजी की मूर्त्ति और मठ आदि हैं। मठ में महन्त और साधु सन्त रहते हैं।

ओरिया

(९) **कोटेश्वर (कनखलेश्वर) शिवालय**—ओरिया गांव के बाहर कोटेश्वर (कनखलेश्वर) महादेव का प्राचीन मंदिर है। यह हिन्दुओं का **कनखल** नामक तीर्थ है। यहाँ के वि० सं० १२६५ वैशाख सुदी १५ के लेख से मालूम होता है कि—**दुर्वासा ऋषि के शिष्य केदार ऋषि** नामक साधु ने सं० १२६५ में इस मंदिर का जीर्णोद्धार

कराया था। उस समय गुजरात के सोलंकी महाराजा द्वितीय भीमदेव का सामंत परमार धारावर्ष आबू का राजा था। इस मंदिर के आसपास देव-देवियों के तीन चार पुराने खंडित मंदिर हैं।

(१०) भीमगुफा—कनखलेश्वर शिवालय से लगभग २५ कदम की दूरी पर एक गुफा है। लोग इसको भीमगुफा कहते हैं।

(११) गुरुशिखर—ओरिया से वायव्य कोण की तरफ लगभग २॥ मील की दूरी पर गुरुशिखर नामक आबू का सर्वोच्च शिखर है। ओरिया से करीब आधे मील पर जावाई नामक छोटा गांव है, जिसमें राजपूतों के अन्दाज २० घर हैं। यहाँ से गुरुशिखर करीब दो मील रहता है। जावाई से चढ़ाव शुरू होता है। यह रास्ता अत्यन्त विकट और चढ़ाई वाला है। बहुत दूर ऊपर चढ़ने के बाद एक छोटा शिवालय, कमंडल कुंड और गौशाला आती है। गौशाला के नीचे छोटासा बगीचा है। यहाँ से थोड़ी दूर आगे एक ऊँची चट्टान पर एक छोटी देहरी में गुरु दत्तात्रेय (जिनको लोग विष्णु का अवतार कहते हैं) के चरण हैं। गुरु दत्तात्रेय के दर्शनार्थ प्रतिवर्ष बहुत से यात्री आते हैं। यहाँ एक बड़ा घंट है,
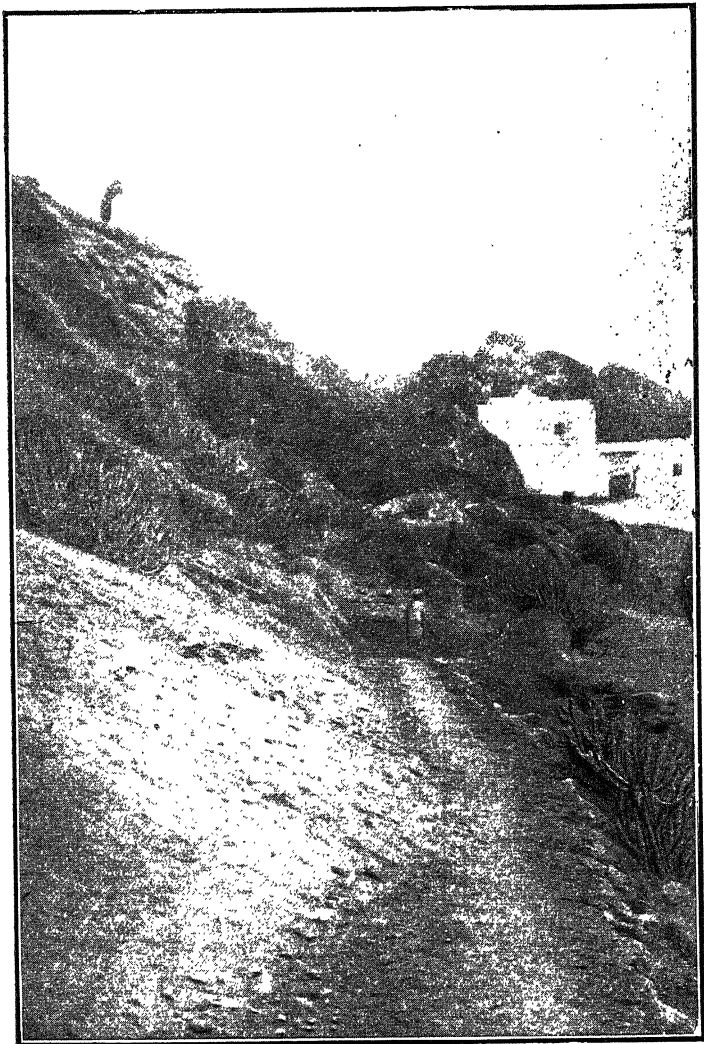
गुरुशिखर—गुरु दत्तात्रेय की देहरी और वहां की धर्मशाला।

D. J. Press, Ajmer.

जिसकी आवाज बहुत दूर तक सुनाई देती है। थोड़े वर्ष पहिले से ही यह घंट यहाँ लटकाया गया है। परन्तु यहाँ पर इसके पहिले एक पुराना घंट था, जिस पर सं० १४६८ का लेख है। पुराने घंट के स्थान में किसी कारण से नया घंट लगाया है। ऐसा सुना जाता है कि—पुराना घंट यहाँ के महंतजी के पास है।

गुरु दत्तात्रेय के मंदिर से वायव्य कोण में गुरु दत्तात्रेय की माता की एक रमणीय टेकरी है।

गुरु शिखर पर धर्मशाला के तोर पर दो कोठड़ियाँ हैं, इनमें यात्री ठहर सकते हैं। तथा रात्रि निवास भी कर सकते हैं। यहाँ पर छोटी छोटी गुफाएँ हैं। इन गुफाओं में साधु-संत रहते हैं। यात्रियों को बरतन, सीधा-सामान तथा बिस्तर आदि यहां के महंत से मिल सकते हैं और इनही महंत के साथ यात्रियों के लिये एक नई धर्मशाला बनवाने की योजना हो रही है। इस ऊंचे स्थान से बहुत दूर दूर के स्थान दिखाई देते हैं और देखने से बड़ा आनंद प्राप्त होता है। नीचाई में बसा हुआ बहुत दूर का सिरोही शहर भी यहाँ से दिखाई देता है। पूर्व दिशा में अर्बली पर्वत श्रेणी के दूसरी टेकरी पर की अंबा माता का मंदिर भी दिखता है। प्राकृतिक सुन्दरता अत्यन्त

रमणीय है। गुरुशिखर, राजपूताना होटल से लगभग ७ मील और देलवाड़े से ६ मील दूर है। गुरुशिखर, समुद्र की सतह (लेवल) से ५६५० फीट ऊँचा है।

देलवाड़ा

(१२) **ट्रेवर ताल (ट्रेवर तालाब)**—देलवाड़े से अचलगढ़ की सड़क पर दो तीन फर्लांग दूर जाने से एक जुदा रास्ता फटता है, जो इस ताल को जाता है। यहाँ से १ मील की दूरी पर यह तालाब बना हुआ है। लोगों के चलने के लिये सकड़ी सुन्दर सड़क बनी है। रिकसा‡ तालाब तक जा सकती है। गवरनर जनरल-राजपूताना के उस समय के एजण्ट के नाम से इस तालाब का नाम ट्रेवर रक्खा गया है। यह तालाब छोटा परन्तु पक्का और गहरा है। पानी बहुत भरा रहता है। यूरोपियन यहाँ नहाने और हवा खाने को आते हैं। सिरोही दरबार ने, आबू के लोगों को आसानी से पानी मिले, इसलिये बेंतीस हजार रुपये खर्च करके इसको बंधवाया था, परन्तु पीछे से इस उद्देश्य को छोड़ दिया गया और बाद में यह स्थान यूरोपियनों की अनुकूलता के लिये निश्चित किया गया

‡ टमटम जैसा वाहन, जिसको आदमी खेंचते हैं।
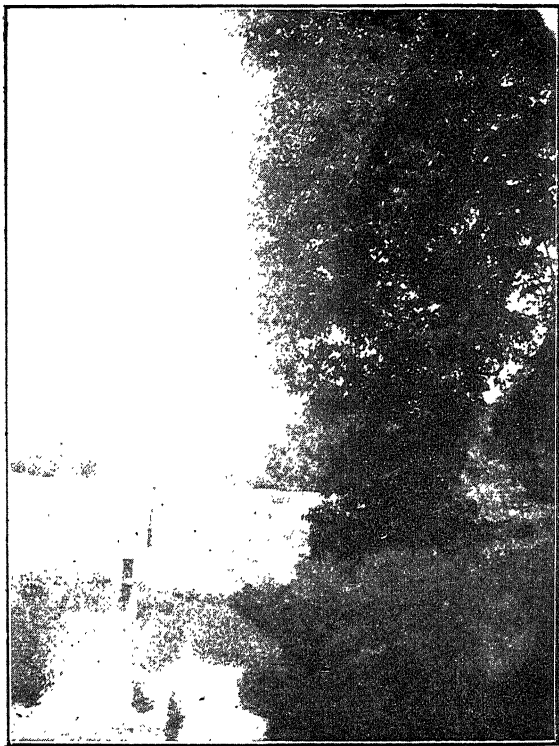
देलवाड़ा, ट्रेवरतॉल.

D. J. Press. Ajmer.

हो, ऐसा मालूम होता है। चारों तरफ झाड़ी जंगल घना होने से यह स्थान रमणीय मालूम होता है यह तालाब देलवाड़े से करीब सवा मील की दूरी पर है।

(१३-१४) **कन्या कुमारी और रसिया वालम**—देलवाड़े में विमलवसहि मंदिर के पीछे अर्थात् देलवाड़ा गांव से बाहर पिछले हिस्से में हिन्दुओं के जीर्ण दशा वाले दो चार मंदिर है। इनमें एक श्रीमाता का भी जीर्ण मंदिर है। इसमें श्रीमाता की मूर्त्ति है, इसे लोग कुमारी कन्या (कन्या कुमारी) की मूर्त्ति कहते हैं‡। यहां वि०

---

‡ दन्तकथा इस प्रकार है—रसिया वालम मन्त्रवादी पुरुष था। वह आबू की राजकन्या से शादी करना चाहता था परन्तु कन्या के माता-पिता इस बात पर राजी नहीं थे। अन्त में राजा ने उसे कहा—"संध्या समय से लेकर प्रात: काल मुर्गा बोले तब तक में—अर्थात् एक ही रात्रि में आबू पर चढ़ने उतरने के लिये बारह रास्ते बनादे तो मैं अपनी कन्या का लग्न तेरे साथ करूँ। रसिया वालम ने यह बात मंजूर करली। और मन्त्र शक्ति से अपना कार्य प्रारम्भ किया। रानी किसी भी प्रकार इसके साथ अपनी पुत्री की शादी नहीं करना चाहती थी। उसने सोचा कि—यदि काम पूरा होगया तो लड़की की शादी इसके साथ करनी पड़ेगी। ऐसा विचार कर उसने समय होने के पहले ही मुर्गे की आवाज की। रसिया वालम ने निराश होकर कार्य को छोड़ दिया, जो कि काम लगभग पूरा होने आया था। पीछे से जब उसको इस छल का हाल मालूम हुआ, तो उसने अपने शाप से माता-पुत्री दोनों को पत्थर के रूप में परिवर्त्तित

सं० १४७९ का एक लेख है। श्रीमाता के मंदिर के बाहर बिलकुल सामने एक टूटे मंदिर के गुम्बज के नीचे पुरुष की एक खड़ी मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति को लोग **रसिया वालम** की मूर्त्ति कहते हैं। इसके हाथ में पात्र है। कई लोगों का अनुमान है कि-रसिया वालम यह ऋषि वाल्मिक है। इस मन्दिर के पास शेष शायी विष्णु, महादेव व गणपतिजी के छोटे २ और जीर्ण मन्दिर हैं।

(१५-१६-१७) **नल गुफा, पांडव गुफा और मौनी बाबा की गुफा**—श्रीमाता के स्थान से लगभग दो फर्लांग की दूरी पर एक गुफा है, उसको लोग नलराजा की गुफा कहते हैं, और उससे थोड़ी दूर एक दूसरी गुफा है, वह पांडव गुफा कहलाती है। इस गुफा से थोड़ी दूर एक और गुफा है। इसमें कुछ समय पहले एक मौनी बाबा रहता था। इसलिये इसको लोग मौनी बाबा की गुफा कहते हैं।

(१८) **सन्तसरोवर**—श्रीमाता से थोड़ी दूरी पर जैन श्वेताम्बर कारखाने का एक बगीचा है, यहाँ से अधर-

---

कर दिया। माता की मूर्त्ति तोड़ डाली गई। उस पर पत्थर का ढेर लगाया है। यह ढेर अब भी है। लोग पुत्री की मूर्त्ति को कुमारी कन्या अथवा श्रीमाता कहते हैं। रसिया वालम भी पीछे से विष खाकर वहीं मर गया। लोग कहते हैं कि उसकी मूर्त्ति के हाथ में जो पात्र है, वह विषपात्र है।

रसिआ वालम·

D. J. Press, Ajmer.
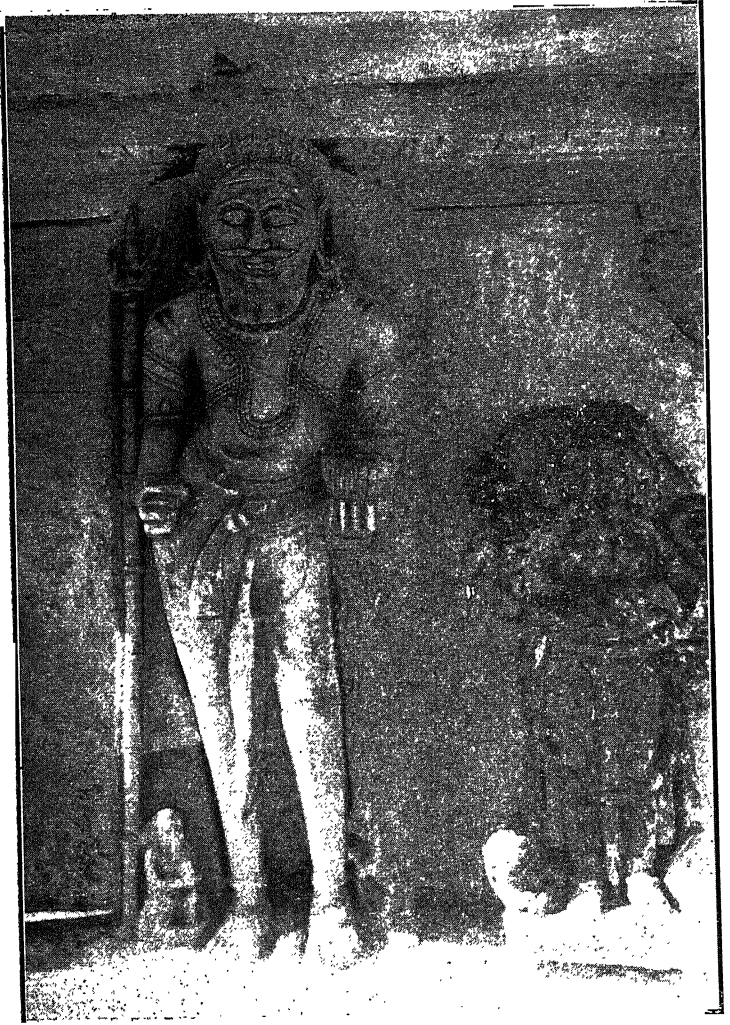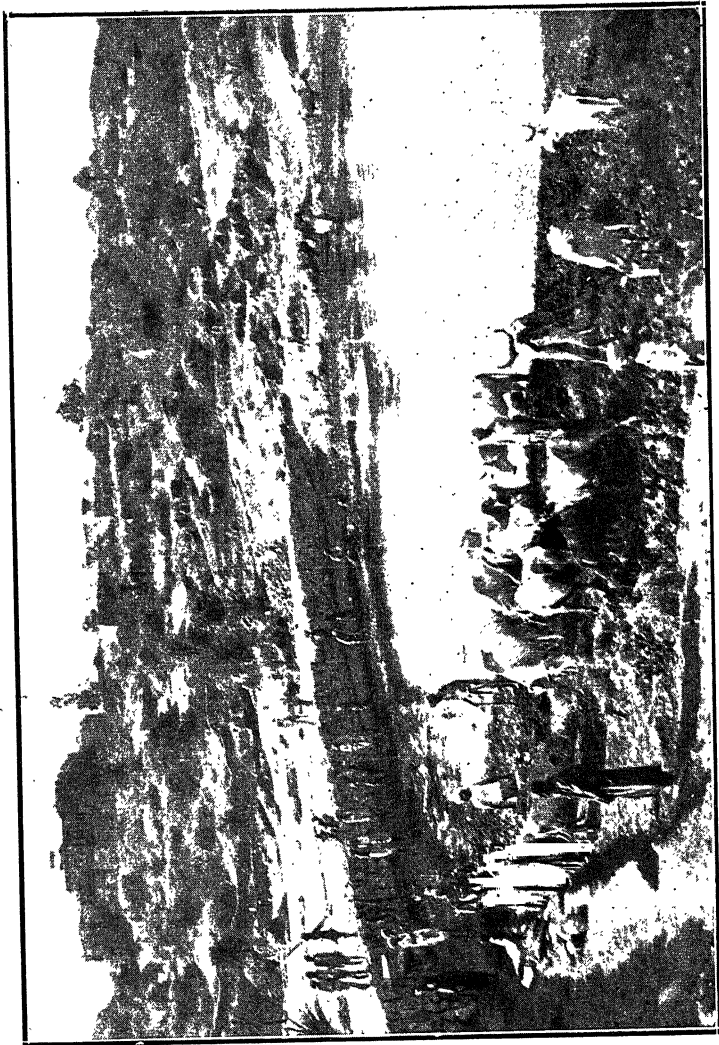
सन्त सरोवर और बीकानेर महाराजा की कोठी.

D. J. Press, Ajmer.

देवी की तरफ जाते हुए, थोड़ी दूर पर एक सरोवर है, जिसको लोग संत सरोवर कहते हैं।

(१६) **अधरदेवी**—देलवाड़े से आबू कैम्प के रास्ते पर लगभग आधे मील की दूरी पर अधरदेवी की टेकरी है। देलवाड़े से कच्चे रास्ते पर संत-सरोवर के पास से जाने पर और पक्की सड़क से बीकानेर महाराज की कोठी के फाटक के पास से पक्की सड़क छोड़कर कच्चे रास्ते से थोड़ी दूर चलने पर अधरदेवी की टेकरी मिलती है। यहां से ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियों की जगह पर पत्थर रक्खे हैं। कहीं-कहीं पक्की सीढ़ियां भी हैं। आबू कैम्प की तरफ से चढ़ने के लिये जुदा मार्ग है। नखी तालाब और राजपूताना क्लब की तरफ से आने वाले लोग इस रास्ते से आ सकते हैं। लींबड़ी दरबार की कोठी के पास सड़क से थोड़ी दूर दूध बावड़ी है। वहां से अधरदेवी की टेकरी पर जाने के लिये यह रास्ता शुरु होता है। यहां से ऊपर जाने के लिये पक्की सीढियां बनी हैं। लगभग ४५० सीढियां चढ़ने के बाद अधर देवी का स्थान आता है।

टेकरी के बीच में एक छोटी गुफा बनी हुई है। इसमें श्री **अम्बिका देवी** की मूर्त्ति है। लोग इसको **अर्बुदा देवी** अथवा **अधर देवी** कहते हैं। इस गुफा

में जाने की खिड़की सकड़ी है। लोगों की मान्यता है कि यह अम्बिका देवी आबू पर्वत की अधिष्ठायिका देवी है। यह स्थान अति प्राचीन माना जाता है ‡। टेकरी पर एक खाली छोटी देहरी बना रक्खी है, इसलिये कि लोग दूर से इसको देख सकें। वास्तव में अम्बिका देवी की मूर्त्ति तो गुफा में ही है। बहुत नजदीक जाने पर ही यह गुफा देख सकते हैं। इस गुफा के बाहर महादेव का एक छोटा मंदिर है। यह स्थान, दूर दूर के प्राकृतिक दृश्य देखने वालों को बहुत आनन्द देता हैं। यहां पर एक छोटी धर्मशाला और एक छोटी गुफा है। धर्मशाला में एकाध कुटुम्ब के रहने के योग्य स्थान है। यहां प्रतिवर्ष चैत सुदि १५ और आश्विन सुदि १५ इस प्रकार साल में दो मेले लगते हैं।

(२०) **पापकटेश्वर महादेव**—अधर देवी की गुफा से करीब आधा मील ऊपर जाने से जंगल में

---

‡ इस गुफा की प्राचीनता के प्रमाण में कोई लेख नहीं है। शायद अम्बिका देवी की मूर्त्ति पर लेख हो। परन्तु पंडे लोग देखने नहीं देते। इसलिये यह नहीं मालूम हो सकता कि यह मूर्त्ति कब बनी? संभव है विमल मंत्री या वस्तुपाल तेजपाल ने यह मूर्त्ति बनवाई हो क्योंकि उनके मंदिरों की अन्य मूर्त्तियों के साथ यह मूर्त्ति बहुत कुछ मिलती झुलती है।

नखी तालाव.

पापकटेश्वर महादेव का स्थान आता है। यहां आम के वृक्ष के नीचे महादेव का लिंग है। पास में जल से भरा हुआ छोटा कुण्ड और एक गुफा है। रास्ता विकट है। यह स्थान बहुत रमणीक और अच्छा है लोगों की ऐसी मान्यता है कि इन महादेव के दर्शन से मनुष्य के पापों का नाश हो जाता है। इसलिये ये पापकटेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है।

आबू कैम्प—आबू सेनेटोरियम

(२१) दूधबावड़ी—लींबड़ी दरबार की कोठी के पास, जहां से अधर देवी की टेकरी पर जाने का चढाव शुरु होता है, एक छोटा कूआ है। इसका पानी पतली छाछ जैसा सफेद और दूध जैसा स्वादिष्ट है, इसलिये इसको लोग दूधिया कुआ अथवा दूधबावड़ी कहते हैं। यहां साधुओं के रहने के लिये दो तीन कोटड़ियां बनी हैं। उनमें साधु सन्त रहा करते हैं।

(२२) नखी तलाव—देलवाड़े से पश्चिम दिशा में एक मील की दूरी पर नखी तलाव है। हिन्दूओं की मान्यता है कि यह देवताओं या ऋषियों के नखों से खोदा हुआ होने से नखी तलाव के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दू लोग इसको

पवित्र तीर्थ स्वरूप मानते हैं। म्युनिसिपैलिटी और सेनिटोरियम कमेटी की ओर से, इस तालाब के मंदिर व बाजार की तरफ के किनारे पर से शिकार करने का व मछली मारने का निषेध किया गया है। बर्तन मांजने व कपड़े धोने की भी मनादी है। यह तालाब लगभग आधा मील लंबा और पाव मील चौड़ा है। इसके चारों ओर पक्की सड़क व उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशा में पहाड़ की टेकरियां हैं। यह तालाब पश्चिम दिशा में २०-३० फीट गहरा है। पूर्व दिशा में उथला है। किनारे का बहुतसा भाग पक्का बना है। कई स्थानों में पक्के घाट भी बने हैं। राजपूताना क्लब की ओर से सर्व साधारण के लिये छोटी छोटी नावें व डोंगियें रक्खी गई हैं। लोग किराया देकर इनमें बैठ कर सैर कर सकते हैं। इस तालाब के पूर्व किनारे पर जोधपुर महाराजा का महल और नैऋत्य कोण में महाराजा जयपुर का सर्वोच्च दर्शनीय महल है। श्री रघुनाथजी का मंदिर श्री दुलेश्वरजी का मंदिर आदि इसी तालाब के किनारे पर हैं। लोग कहते हैं कि इस तालाब की बंधाई शुरु हुई, इसके पहिले इसके किनारे पर एक जैन मंदिर भी था।

(२३) **रघुनाथजी का मंदिर**—नखी तालाब के नैऋत्य कोण के किनारे पर श्री रघुनाथजी का मंदिर है।

यहाँ एक महन्त और कई साधु संत रहते हैं। महन्तजी की तरफ से साधु संतों को भोजन दिया जाता है। वैष्णव लोगों के ठहरने के लिये धर्मशाला भी है। ग्रीष्म ऋतु में बहुत दिनों तक रहने वाले यात्रियों को किराये पर मकान दिये जाने की व्यवस्था है। यात्रालुओं के भोजन के लिये ढाबा (वीसी) भी है। हिन्दु यात्रालुओं के लिये सब प्रकार की व्यवस्था है। रामोपासक श्री वैष्णवों का यह मुख्य स्थान है। ‡ सिरोही राज्य की स्थापना के आसपास (१४ वीं १५ वीं शताब्दि में) इस स्थान को ध्यानीजी की धूनी कहते थे। सिरोही राज्य के दफ़्तर में अभी भी इस स्थान का नाम ध्यानीजी की धूनी ही लिखा है। राम कुंड, राम झरोखा, चंपागुफा, हस्तिगुफा और

---

‡ भगवदाचार्य ब्रह्मचारी कृत रामानन्द दिग्विजदाय के १४ वें सर्ग के ४५-४६-४७ श्लोक में लिखा है कि-स्वामी रामानन्दजी (विद्वान् लोग, जिनका समय ई० सन् १३०० से १४४१ के बीच का निश्चित करते हैं) भ्रमण करते हुए आबू पर्वत पर आए। वहां भालिंदसुनु नामक तपस्वी तपस्या करते थे। उनके पास श्री रघुनाथजी की पूजाती मूर्ति थी। इस स्थान पर रामानन्दजी ने नया मंदिर बनवाकर उस मूर्त्ति की स्थापना की। महंतजी का कथन है कि यहां अभी तक उसी मूर्त्ति की पूजा होती है। और इसी कारण से इस स्थान को रघुनाथजी का मन्दिर कहते हैं।

गौरच्छिणी माता (अगाई माता) इन स्थानों के आसपास की जमीन श्रीरघुनाथजी के मंदिर के ताल्लुक में है। इस स्थान पर गवर्नमेण्ट का हक नहीं है।

(२४) दुलेश्वरजी का मंदिर—श्री रघुनाथजी का मंदिर और महाराजा जयपुर के महल के बीच में श्री दुलेश्वर महादेव का मंदिर है। इसके आस पास आश्रम वगैरः हैं।

(२५) चंपा गुफा—रघुनाथजी के मंदिर के पास से पहाड़ की टेकरी पर थोड़ा चढ़ने के बाद दो तीन गुफाएं मिलती हैं। इन गुफाओं के पास चंपा का वृक्ष होने के कारण लोग इसको चंपा गुफा कहते हैं। गुफा के नीचे के हिस्से में नखी तालाब है। जिससे यह स्थान मनोहर मालूम होता है।

(२६) राम झरोखा—चंपा गुफा से थोड़ी दूर आगे राम झरोखा है। यहां पर भी एक दो गुफाएं झरोखे के आकार वाली हैं। इसलिये लोग इस स्थान को राम-झरोखा कहते हैं। रामझरोखे के ऊपरी हिस्से में टोड रॉक (Toad Rock) (यानी मेंढक के आकार की चट्टान) है।

(२७) हस्ति गुफा—राम झरोखे से थोड़ी दूर पर हस्ति गुफा नामक रमणीय स्थान है। इसके नीचे के

हिस्से में नखी ताल है। इस गुफा के ऊपर का पत्थर बहुत विशाल है, और इसके ऊपरी हिस्से की आकृति हाथी जैसी दिखती है। संभव है कि इसी कारण से इस गुफा का नाम हस्ति गुफा पड़ा हो।

(२८) **राम कुण्ड**—हस्ति गुफा से थोड़ी दूरी पर राम कुण्ड नामक स्थान है। यहां पर श्री रामचन्द्रजी का मंदिर है। इसमें राम लक्ष्मण सीता और अन्य देव देवियों की छोटी २ मूर्त्तियाँ हैं। इसके पास एक पुराना कुँआ है। यह जमीन पहाड़ी है, तो भी इस कुए में बारहों महीने पानी रहता है, इसको लोग राम कुंड कहते हैं। पास में दो तीन छोटी छोटी गुफायें हैं। चंपा गुफा, रामझरोखा, हस्तिगुफा और रामकुंड पर अकसर साधु-संत रहते हैं। रामकुंड से आबू कैम्प के बाजार की तरफ नीचे उतरते जयपुर महाराज की कोठी मिलती है। इसके बाद सिरोही राज्य के दीवान का बंगला और इसके सामने नींबज (सिरोही) के ठाकुर का मकान है।

(२९) **गोरक्षिणी माता**—हस्ति गुफा से थोड़ी दूरी पर गोरक्षिणी माता का स्थान है। यहाँ पर गांवों के मजदूरों का फाल्गुन में मेला लगता है।

(३०) **टोड रॉक** (Toad Rock)—नखी ताल से नैऋत्य कोण में पहाड़ की टेकरी पर मेंढक के आकारवाली यह चट्टान है, इसलिये लोग इसको टोड रॉक कहते हैं।

(३१) **आबू सेनिटोरियम (आबू कैम्प)**-देलवाड़े से दक्षिण में लगभग एक मील की दूरी पर **आबू सेनिटोरियम** बसा है। इसको आबू कैम्प कहते हैं। **सिरोही** के महाराव श्रीमान् शिवसिंहजी ने वि० सं० १६०२ में गवर्नमेण्ट को आबू पर्वत पर सेनिटोरियम बनाने के लिये जगह दी। थोड़े समय के बाद **आबू** राजपूताना के **एजण्ट टू दी गवर्नर जनरल** का मुख्य निवास स्थान मुकर्रर हुआ। तब से यह स्थान प्रतिदिन उन्नति पर आता गया। वास्तव में **भारतवर्ष** के सरकारी लश्कर के रोगी सैनिकों के लिये यह स्थान बनाया गया है। अब भी यहाँ के कैम्प में बीमार सैनिक रहते हैं।

आबू कैम्प से आबूरोड स्टेशन तक १७॥ मील की पक्की सड़क बनी हुई है, इससे ऊपर आने जाने में सरलता होगई है। धीरे धीरे अब यहाँ रेसिडेन्सी, प्रत्येक विभाग के सरकारी ऑफिसरों के बंगले, प्रत्येक विभाग के ऑफिस, गिरजाघर, तार ऑफिस, पोस्ट ऑफिस, क्लब, पोलो आदि खेलों के स्थान, स्कूल, औषधालय, अंग्रेजी
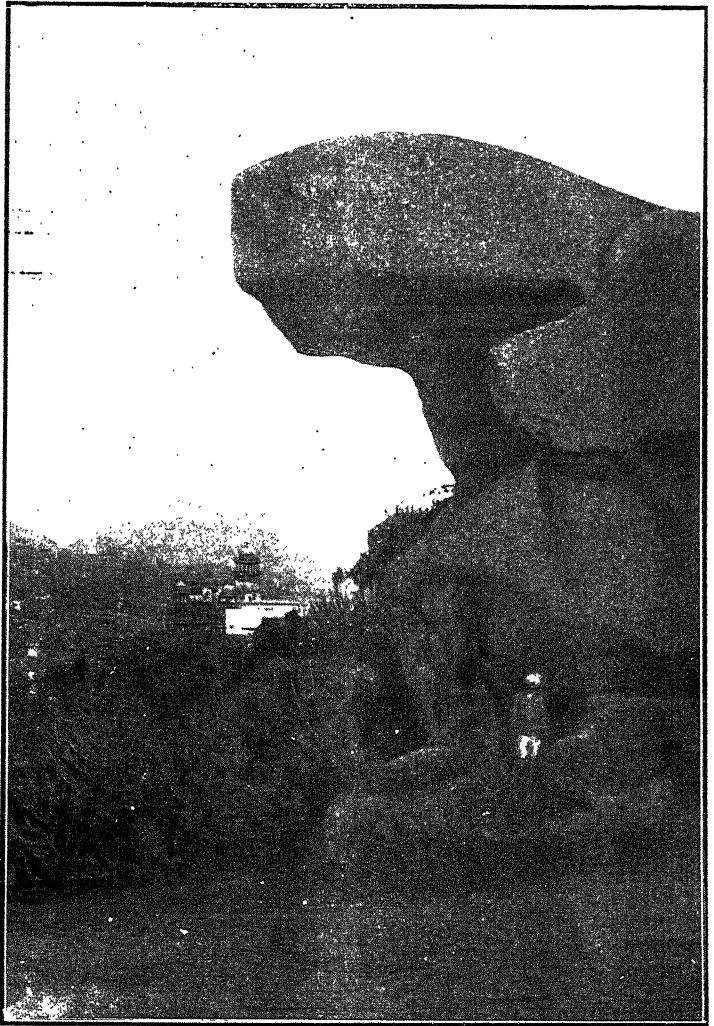
टॉड रॉक.

सैनिकों का सेनिटोरियम, राजपूताना के राजा-महाराजाओं की कोठियाँ, वकीलों और धनाढ्यों के बंगले, होटल, बाजार और पक्की सड़कें आदि भिन्न-भिन्न सुखदायक साधनों के अस्तित्व से आबू कैम्प की शोभा में अपूर्व वृद्धि हुई है। ग्रीष्म ऋतु के लिये यह स्थान स्वर्ग तुल्य माना जाता है। उन दिनों में यहाँ आबादी अच्छी बढ़ जाती है। कई राजा महाराजा, यूरोपियन्स, ऑफिसर्स और बड़े बड़े श्रीमन्त लोग यहाँ की शीतल और सुगन्धीमय वायु का सेवन कर आनन्द प्राप्त करते हैं। यहाँ की प्राकृतिक शोभा अत्यन्त रमणीय है। नखीताल ने छोटा होने पर भी यहाँ की शोभा में और वृद्धि की है।

आबू कैम्प में हमेशा निवास करने वाले जैनों की संख्या अधिक नहीं हैं। सिर्फ बाजार में मारवाड़ी जैनों की ५–६ दुकानें हैं। कोटावाले दीवान बहादुर श्रीमान् सेठ केशरीसिंहजी राय बहादुर का खजाना है, जिसमें मुनीम वगैरह रहते हैं। वर्त्तमान मुनीम और खजाञ्ची जैन हैं। गरमी के दिनों में कई श्रावक यहाँ पर रहने के लिये आते हैं।

आबू पर शरद ऋतु में ठंड की ओसत ४५ से ६५ डिग्री और गर्मी के दिनों में गर्मी की ओसत ८० से ६०

डिग्री तक रहती है। वर्षा ऋतु में वर्षाद की औसत ६० इंच होती है।

आबू कैम्प में जो कोठियाँ, बंगले व अन्य इमारतें हैं, उनमें मुख्य ये हैं—

१—महाराजा जैपुर का महल
२—म० रा० जोधपुर का ,,
क—विक्टोरिया हाउस
ख—केनोट हाउस
ग—लेक हाउस
घ—जोधपुर हाउस
३—म० रा० बीकानेर का महल
४— ,, अलवर का महल
५— ,, सिरोही का पुराना महल
६— ,, सिरोही का नया महल
७— ,, सिरोही के दी० का महल
८— ,, लींबड़ी का ,,

९—म० रा० भरतपुर का महल
१०— ,, धौलपुर का ,,
११— ,, खेत्री का ,,
१२— ,, सीकर का ,,
१३— ,, जैसलमेर का ,,
१४—राजपूताना के एजण्ट टू दी गवर्नर जनरल का महल
१५—सुपरिन्टेण्डेण्ट एजन्सी का महल
१६—एजन्सी ऑफिस
१७—रेसिडेन्सी
१८—सैक्रेटरिएट
१९—गवर्नमेण्ट प्रेस
२०—राजपूताना एजन्सी होस्पिटल

२१–एडम मेमोरियल हॉस्पिटल
२२–ट्रेजररी बिल्डिंग (लक्ष्मीदास गणेशदास)
२३–बंगला (लक्ष्मीदास गणेशदास)
२४–आबू हाई स्कूल
२५–लॉरेन्स स्कूल
२६–पोस्ट ऑफिस
२७–तार ऑफिस
२८–क्लबघर (राजपूताना क्लब)
२९–पोलो ग्राउण्ड
३०–गिरजाघर (चर्च देवल)
३१–डाक बंगला
३२–राजपूताना होटल
३३–विश्राम भुवन
३४–एदलजी हाउस
३५–मोदी हाउस
३६–दारशा हाउस
३७–करुणादास हाउस
३८–इब्राहीम हाउस
३९–लेक व्यू कोटेज (के. एस. कावसजी)
४०–ओल्ड चेरिटेबल डिस्पेन्सरी (मालिक धनजी भाई पारसी)
४१–प्रत्येक विभाग के सरकारी ऑफिसरों के बंगले
४२–सरकारी प्रत्येक विभाग के आफिसेस
४३–इनके सिवाय और भी कई एक राजा–महाराजाओं के तथा प्रजाकीय लोगों के बंगले, एवं राजपूताना के प्रत्येक स्टेट के वकीलों के लिये बने हुए मकान वगैरह वगैरह।

(३२) **बेलीज वॉक (बेलीज का रास्ता)**—यह रास्ता नखी तालाब के नैऋत्य-कोण से लेकर जयपुर महाराजा की कोठी के पास से पहाड़ के किनारे २ तीन मील तक चला गया है। इसको बेलीज़ वॉक कहते हैं। इस रास्ते से टेकरियों के नीचे के खुल्ले मैदानों का दृश्य अत्यन्त मनोहर मालूम होता है।

(३३) **विश्राम भवन**—एडम मेमोरियल होस्पिटल के पास यह स्थान है। इसमें उच्च वर्ण के हिन्दुओं के उतरने तथा भोजन की व्यवस्था है। वर्त्तन, गद्दा, रजाई आदि मिल सकते हैं।

(३४) **लॉरेन्स स्कूल**—हेनरी लॉरेन्स ने सन् १८५४ में इंग्लिश सोल्जरों के लड़कों और अनाथ लड़कों को पढ़ाने के लिये यह स्कूल स्थापित किया है। यहां पर ८४ विद्यार्थी रह सकते हैं। वार्षिक खर्च ३० तीस हजार रुपये का है। आधा खर्च गवर्नमेण्ट देती है। $\frac{१}{४}$ हिस्सा प्राइवेट फण्ड से और शेष $\frac{१}{८}$ हिस्सा फीस तथा धर्मादे की रकमों के ब्याज से मिलता है। यह स्कूल शहर के मध्य भाग में है। इसके एक तरफ शहर और गिरजाघर हैं व दूसरी तरफ पोस्ट-ऑफिस और सैक्रेटरिएट का बंगला है।
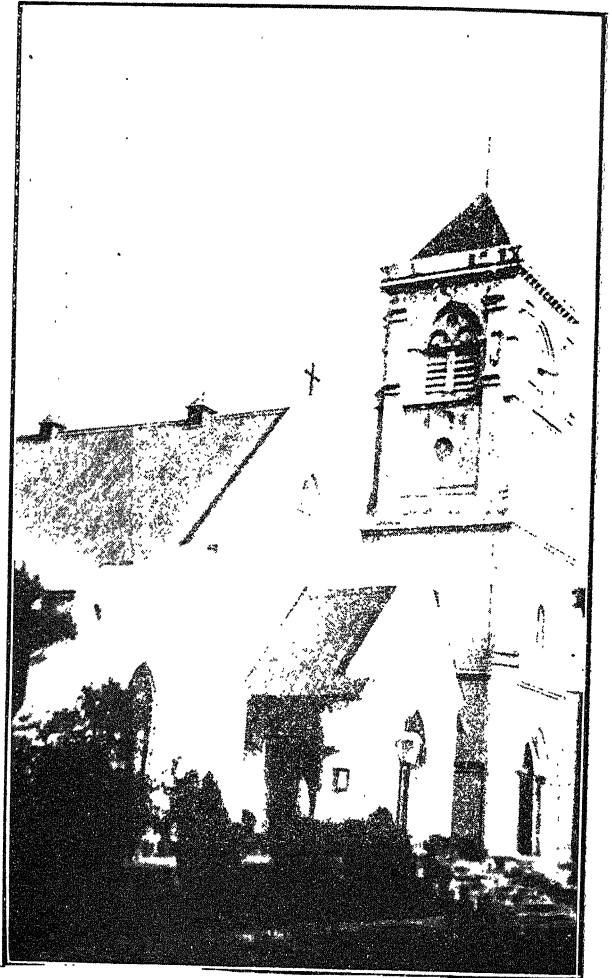
चर्च देवल (गिरजाघर)

राजपूताना क्लब.

नन् रॉक.
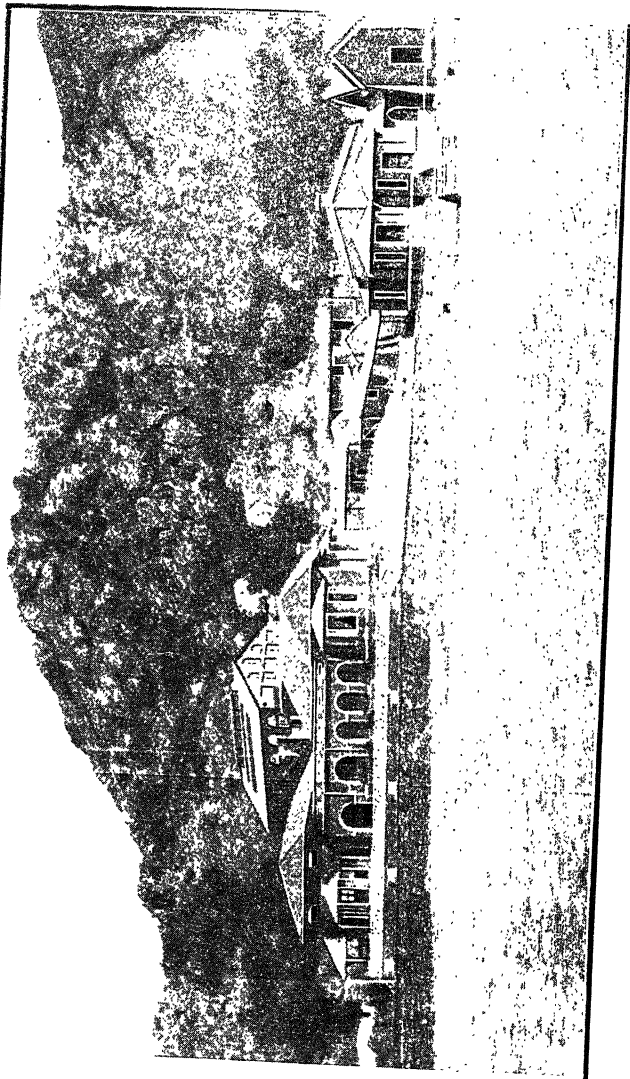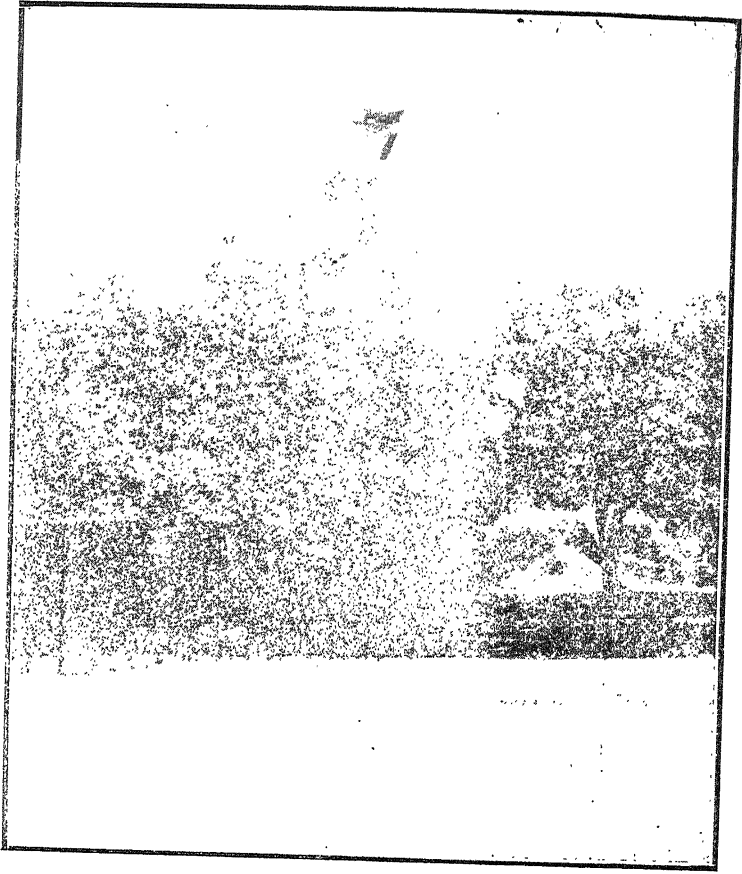
(३५) **गिरजाघर** (Church)—पोस्ट ऑफिस और लॉरेन्स स्कूल के पास क्रिश्चियन लोगों का एक बड़ा गिरजाघर है।

(३६) **राजपूताना होटल**—पोस्टऑफिस से थोड़ी दूरी पर राजपूताना होटल की बड़ी इमारत बनी है। इस होटल में राजा, महाराजा, यूरोपियन्स एवं हिन्दुस्थानी लोग भी ठहर सकते हैं।

(३७) **राजपूताना क्लब**—राजपूताना होटल के पास यूरोपियन्स और इस क्लब के खर्च में सहायता करने वाले देशी राजाओं के वास्ते खेलों के साधनों वाली एक क्लब है। इसमें एक छोटी लायब्रेरी और टेनिस कोर्ट आदि भी हैं।

(३८) **नन् रॉक** (Nun Rock)—राजपूताना क्लब के टेनिसकोर्ट के पास यह दर्शनीय रॉक (चट्टान) है। इस चट्टान का आकार प्रार्थना करती हुई साध्वी जैसा है। इस कारण से लोग इसको नन् रॉक (Nun Rock) कहते हैं।

(३९) **क्रेग़ज़ (चट्टानें)**—ये चट्टानें राजपूताना होटल से दो मील की दूरी पर हैं। वहां जाने के लिये

राजपूताना क्लब के पीछे से रास्ता है। रास्ते में ज्यादा चढ़ाव आता है। लेकिन ऊपर की ठंडी हवा से सब श्रम उतर जाता है। राजपूताना होटल से क्रेग्ज़ के रास्ते में नन् रॉक आजाती है।

(४०) **पोलो ग्राउंड**—राजपूताना होटल से लगभग ३/४ मील दूर, मोटर स्टेशन के पास मुख्य रास्ते के बांई तरफ पोलो ग्राउंड नाम का बड़ा मैदान है। इस ग्राउंड के एक किनारे पर घुड़दौड़ आदि खेलों को देखने को आने वाले राजा महाराजाओं और ऑफिसरों के बैठने के लिये एक बड़ा मकान है जिसको पोलो पेवीलियन कहते हैं।

(४१-४२-४३) **मसजिद, ईदगाह व कबर**—पोलो-ग्राउंड और मोटर स्टेशन के पास मुसलमानों की एक मसजिद है। आबूरोड की सड़क के लगभग मील नं० १ के पास ईदगाह है और नखी तालाब से थोड़ी दूर देलवाड़ा के रास्ते की तरफ एक कबर है।

(४४) **सनसेट पॉइन्ट (सूर्यास्त देखने का स्थान)**—पोलो-ग्राउंड से दक्षिण-पूर्व दिशा में पक्की सड़क से पौन मील दूर जाने से पहाड़ की टेकरी का
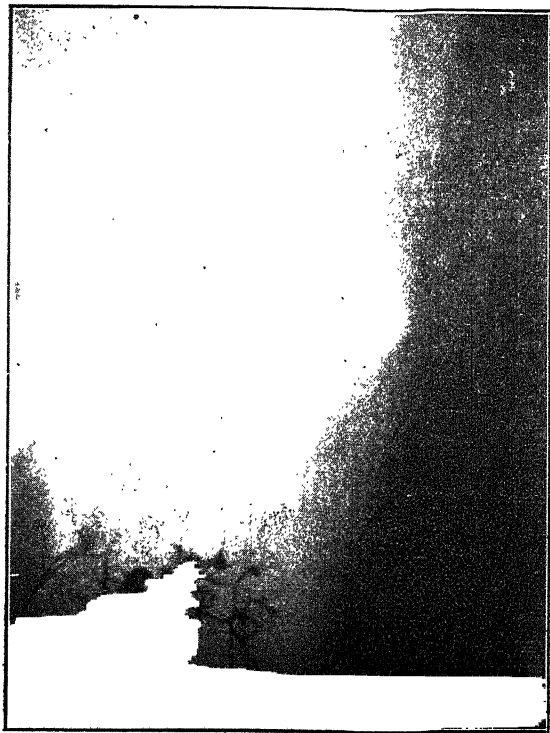
D. J. Press, Ajmer.

आबू—सनसेट पॉइण्ट

किनारा आता है। इस स्थान को लोग **सनसेट पॉइन्ट** कहते हैं। यह स्थान पहाड़ के बिलकुल पश्चिम भाग में है। यहां से सूर्यास्त समय के विविध रंग देखने से नेत्रों को प्रिय मालूम होते हैं। सूर्य होने पर भी सूर्य के सामने देखने से आंखें बंद नहीं होती हैं। यह स्थान राजपूताना होटल से १॥ मील दूर है।

(४५) **पालनपुर पॉइन्ट (पालनपुर देखने का स्थान)**—सिरोही की कोठी के दक्षिण दिशा में एक पगदंडी गई है। इस रास्ते से थोड़ी दूर जाने पर एक छोटी टेकरी मिलती है। इस टेकरी पर से पालनपुर, जो कि आबूरोड से ३२ मील दूर है, आकाश स्वच्छ हो तब, दिखाई देता है। दुरबीन की सहायता से ज्यादा स्पष्ट दिखाई देता है। यह स्थान राजपूताना होटल से ३ मील दूर है।

(देलवाड़ा तथा आबू कैम्प से आबूरोड)

देलवाड़ा से आबू केम्प की सड़क से एक फर्लाङ्ग जाने पर बाएं हाथ की ओर से दो माइल की एक नई सड़क अलग होती है। वह आबूरोड की सड़क को १ माइल, २ फर्लाङ्ग (ढुंढाई चौकी) के पास मिलती है।

मार्ग में सड़क के दोनों बाजू थोड़ी २ दूरी पर बंगले, लोगों की झोंपड़ियां, वृक्ष, नाले व झाड़ियां नजर आती हैं।

(४६) **ढुंढाई चौकी**—आबू-कैम्प से आबूरोड को जाने वाली सड़क के माइल नं० १, फर्लाङ्ग २ के पास ढुंढाई नामक गवर्नमेण्टी चौकी आती है। यहां चुंगी (कस्टम) तथा गाड़ियों का टोल-टैक्स लिया जाता है। देलवाड़े से निकली हुई नई सड़क यहां मिलती है।

(४७) **आबू हाईस्कूल**—ढुंढाई चौकी के निकट होकर करीब तीन फर्लांग की एक सड़क आबू हाई स्कूल को गई है। वहां पर सुन्दर समतल भूमि में आबू हाई स्कूल की इमारतें बनी हैं। सन् १८८७ में बोम्बे, बड़ोदा एण्ड सेन्ट्रल इन्डिया रेलवे, कम्पनी ने दो लाख रुपये के खर्च से रेलवे कर्मचारियों के लड़कों के लिये यह इमारतें बनवाई थीं। यह स्थान शहर के दक्षिण भाग में लगभग दो मील दूर एकान्त में होने से शान्ति और आनन्द-दायक है। इस हाई स्कूल की व्यवस्था गवर्नमेण्ट ऑफीसरों की एक कमेटी करती है। खर्च का कुछ हिस्सा गवर्मेण्ट, व कुछ हिस्सा बी. बी. एण्ड सी. आई. रेल्वे, कंपनी देती है और बाकी हिस्सा फंड द्वारा पूरा होता है।

(४८) **जैन धर्मशाला (आरणा तलेटी)**–आबूरोड के मा० नं० ४-४ के नजदीक में आरणा ग्राम के पास एक जैन धर्मशाला है। यह 'आरणा तलहटी' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां यात्रियों की सहुलियत के लिये एक घर मंदिर (देरासर) भी रक्खा है, जिसमें धातु की एक चौवीसी है। यात्रियों के लिये रसोई व ओढ़ने बिछाने का सामान यहां मिल सकता है। पीने के लिये गरम-जल की भी व्यवस्था रहती है। जैन यात्रियों को भाता-नास्ता भी दिया जाता है। अभ्यागतों को भूने चने दिये जाते हैं। साधु साध्वी या जैन यात्री वर्ग यहां रात्रि निवास भी कर सकते हैं। गरमी के दिनों में विश्रांति के लायक यह स्थल है। इस धर्मशाला की व्यवस्था अचलगढ़ जैन श्वेताम्बर कारखाना के हस्तक है। चारों तर्फ की मनोरम्य प्रकृति तथा दृष्टी की शक्ति भी कुण्ठित हो जाय ऐसी खीणें (Vally) प्रेक्षक को मुग्ध बनाती हैं। यहां से पगदंडी से थोड़ा नीचे उतरने पर मा० नं० ४-६ के पास सड़क मिलती है।

(४९) **सत घूम (सप्त घूम)**—मा० नं० ६ से एक ऐसी चढ़ाई शरु होती है जिस पर चढ़ने के लिये सड़क को सात सात दफा घुमाव लेना पड़ा है और इसी वजह से

उसका नाम सतघूम कहा जाता है। यह चढ़ाई, वाहन में जाते हुए और बोझ से लदे हुए जानवरों को तथा मोटर आदि वाहनों को भी त्रास दायक होती है। ऐसे तो यह पूरी सड़क पर्वत के किनारे किनारे पर चक्कर लगाती हुई जाती है, परन्तु इस स्थान में तो उसने नजदीक नजदीक में ऊपरा ऊपरी सात चक्कर किये हैं। नीचे की सड़क का प्रवासी ऊपर के मुसाफिर को देख सकता है और ऊपर की सड़क से नीचे की सड़क दृष्टि गोचर होती है। इस कारण से तथा झाड़ी और वनराजी का साम्राज्य होने से दृश्य रम्यता को प्राप्त होता है। यह सतघूम की चढाई मा० नं० ७ के नजदीक समाप्त होती है। वहां सड़क के किनारे पर एक आदमी खड़ा रह सके, ऐसी लकड़ी की एक कोठरी है जो कि बहुत नीचाई से बारंबार दृष्टि पथ में आया करती है।

(५०-५१) **छीपा बेरी चौकी और डाक बंगला**—मा० नं० ६—२ के पास एक बड़ा नाला आता है जिसको **छीपा बेरी नाला** कहते हैं। यहां बड़ के वृक्षों की सघन घन छाया होने से प्रवासी विश्रान्ति लेते हैं तथा बैल-गाड़ियां व अन्य वाहन भी यहां ठहरते हैं। यह स्थान पड़ाव के जैसा है। इसके नजदीक कुछ ऊंचे हिस्से पर

पीर का स्थान है, उसकी मानता होती नजर आती है। मा० नं० ६-४ के पास छीपा बेरी चौकी नामक गवर्नमेण्टी चौकी है। यहां सिरोही स्टेट की ओर से यात्रियों के पास से कर (मुंडका) टिकिट मांगते हैं। यहां चौकी के नजदीक एक छोटासा बंगला है। जो कि P. W. D. के स्वाधीन है। युरोपीयन यात्रियों की विश्रान्ति के लिये यहां व्यवस्था रक्खी जाती है।

(५२) बाघ नाला—मा० नं० ११-३ के नजदीक एक नाला आता है, जिसको बाघ नाला कहते हैं। वृक्षादि की घटाओं से प्रकृति सुशोभित नजर आती है।

(५३) महादेव नाला—मा० नं० १३ के नजदीक एक जल का प्रपात है जो कि दिन रात हमेशा बहता रहता है, उसको लोग महादेव नाला कहते हैं। स्थान रम्य है।

(५४) शांति आश्रम (जैन सार्वजनिक धर्मशाला)—मा० नं० १३—२ के पास, (जहां से पर्वत का चढ़ाव शुरू होता है) ऊपर जाते हुए, बांए हाथ की ओर वैष्णवों की छोटी धर्मशाला और पानी की प्याऊ (परब) है। यह धर्मशाला तथा पानी की प्याऊ आबू वाले सेठ छांजुलाल हीरालाल ने सं० १६५६ में बनवाई

थी। उसके पीछे के हिस्से में बिलकुल नजदीक ही कुछ ऊंचाई वाली एक ही बड़ी विशाल शिला पर योगनिष्ट श्री शान्ति विजयजी महाराज के उपदेश से श्री जैन श्वेताम्बर संघ की तरफ से 'शान्ति-आश्रम' नामका स्थान बनवाया जारहा है। जिसमें दो मंजिल के मकान के आकार में ध्यान करने योग्य बड़ी गुफा तैयार हो गई है। पास में शिवगंज वाले सेठ धन्नालाल कूपाजी की तरफ से यात्रियों के लिये, धर्मशाला के तौर पर चार कमरे तैयार किये गये हैं। वरण्डा और कम्पाउण्ड की दीवार वगैरह का काम जारी है। जैन साधु, साध्वी और यात्री लोग विश्राम और रात्रि निवास भी कर सकते हैं। धर्मशाला में बरतन गदेले और पीने को गरम जल की व्यवस्था की गई है। एक नौकर रात दिन धर्मशाला में रहता है। यात्रियों को भाता (नाश्ता) देने की व्यवस्था के लिये कोशिश हो रही है। शाह धन्नालाल कूपाजी के तरफ से यहां गरीबों को चने दिये जाते हैं। अभी और भी यहां पर जैन मन्दिर, तीन छोटी २ गुफाएं, जल का कुण्ड, बगीचा, धर्मशाला के पास रसोई घर, और अजैन साधु, संतों, फकीरों तथा हिन्दू, पारसी, मुसलमान वगैरह गृहस्थों को विश्राम के योग्य भिन्न २ मकान बनवाने के लिये यहां का कार्य-

परम योगी मुनिराज श्री शांतिविजयजी महाराज-आबू.
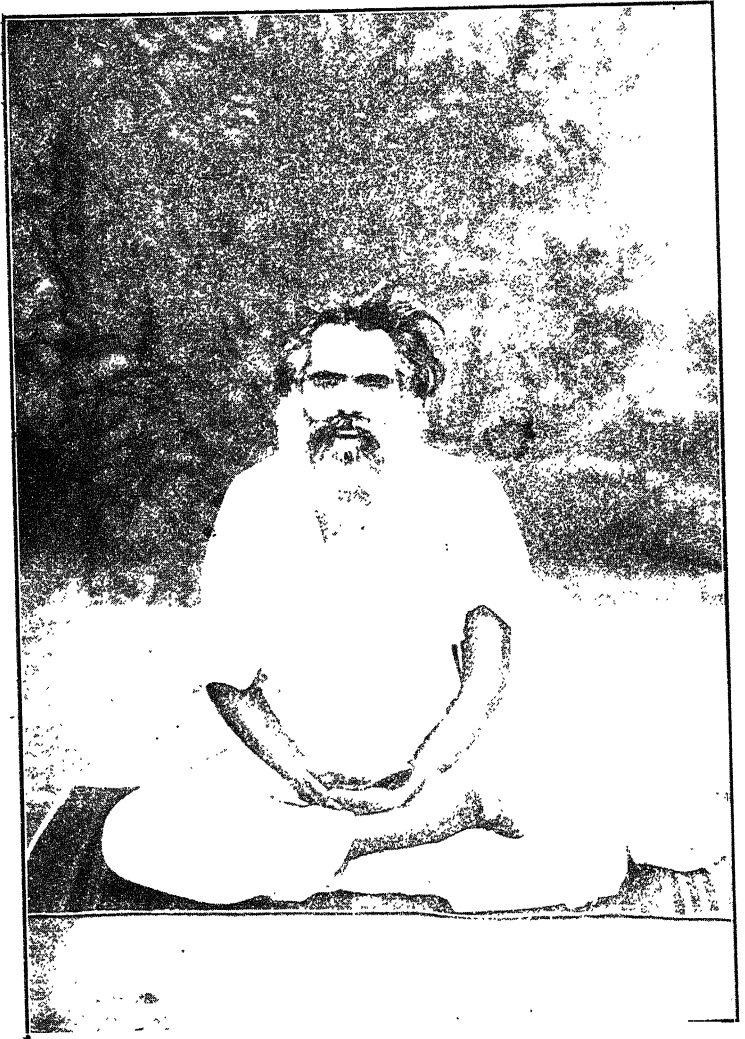
जन्म सम्वत १९४६ महा शुक्ल ५] [दीक्षा सम्वत १९६१ महा शुक्ल ५

ग्राहक मण्डल विचार कर रहा है। जैसे २ सहायता मिलती रहेगी, काम शुरु होता जायगा।

यहां से नजदीक ही, मा० नं० १३-१ के पास गवर्नमेण्ट की चौकी है। वहां चार पांच मकान हैं, जिनमें ५-७ आदमी हमेशा रहते हैं, जिससे शान्ति आश्रम में रात्रि निवास करने में किसी प्रकार का भय नहीं है। आश्रम के चौ तरफ प्राकृतिक जंगल और पहाड़ियां होने से स्थान अति मनोहर बन गया है। यह बहुत संभवित है कि "यथा नाम तथा गुणः" की कहावत चरितार्थ होगी।

(५५-५६) ज्वाला देवी की गुफा और जैन मंदिर के खण्डहेर—शांति आश्रम के नजदीक पश्चिम दिशा में, दूसरे एक पत्थर के ऊपर ज्वाला देवी की विशाल गुफा है, जिसमें करीब डेढ़ फुट ऊंची, चार हाथ और सुअर के वाहन युक्त ज्वाला देवी की एक मूर्त्ति है। इसका दाहिना हाथ खण्डित है। इस देवी को लोग ज्वाला देवी के नाम से पुकारते हैं। हिन्दूओं के रिवाज के मुताबिक लोग इसे तेल सिन्दुर से पूजते हैं और अधर देवी की बहिन मानते हैं। लोगों का ऐसा मन्तव्य है कि—ज्वाला देवी की गुफा ठीक अधर देवी की गुफा तक लम्बी

गई है, और ज्वाला देवी माता अधर देवी की गुफा से इसी गुफा के रास्ते से ही यहां आई थी।

इस गुफा के पास एक चौक है। चौक में जैन मन्दिर के दरवाजे के पत्थर पडे हैं। उनमें दरवाजे के दो उतरंग हैं। उन दोनों के मध्य भाग में मंगल मूर्त्ति के तौर पर श्री तीर्थंकर भगवान् की एक एक मूर्त्ति खुदी हुई है। एक ऊंबरा और दो शाखों के टुकड़े पड़े हैं। इस गुफा के दक्षिण दिशा में कुछ नीचे उतरते हुए पास ही दो खण्ड हैं जिनमें ईंटों के ढेर पड़े हैं। लोग इन दोनों को मन्दिरों के खण्डहेर बताते हैं।

इनको देखने से निश्चित रूप से यह माना जा सकता है कि ये दोनों खण्डहेर जैन मन्दिरों के होंगे। उन दोनों या उनमें से एक मन्दिर श्री चद्रप्रभ भगवान् का होगा। गत शताब्दि में, सिरोही और जोधपुर राज्यों के बीच, आबू के आस पास भारी लड़ाई हुई थी। उस समय में ऊंबरनी वगैरह गांवों के जैन मंदिरों का नाश हुआ था। उसी समय इन दोनों मन्दिरों और मूर्त्तियों का नाश हुआ होगा। श्री चंद्रप्रभ भगवान् की अधिष्ठायिका श्री ज्वाला-देवी की अवशिष्ट इस मूर्त्ति को पीछे से लोगों ने उन खण्डियरों में से ला करके इस गुफा में स्थापन की होगी।

साथ ही साथ उन मन्दिरों के दरवाजे के पत्थरों को भी वहां से लाकर के गुफा के इस चौक में रक्खे होंगे।

ज्वालादेवी की मूर्त्ति के पास अन्य देवियों की भी दो, तीन छोटी २ मूर्त्तियाँ हैं। इस गुफा के आस पास दूसरी दो गुफाएँ हैं, जिनमें एक साधु रहता है।

(५७) टॉवर ऑफ सॉयलेन्स, (पारसीओं का दोखमा—मा० नं० १५ के करीब सड़क से कुछ दूरी पर मोटा भाई भीकाजी नामक पारसी गृहस्थ ने इसको बनवाया है ऐसा पारसियों का टॉवर ऑफ सॉयलेन्स नामक स्थान आता है।

(५८) भट्टा (आकरा)—मा० नं० १५-२ के नजदीक भट्टा (आकरा) नामक गांव है। गांव के नजदीक में ही सड़क के पास सेठ जमनादासजी की बनवाई हुई वैष्णवों की छोटीसी धर्मशाला है। साधु सन्त वहां विश्रान्ति ले सकते हैं तथा रात्रि-निवास भी हो सकता है। धर्मशाला के सन्मुख ही जमनादासजी सेठ का पक्का मकान तथा बगीचा भी है।

(५९-६०) मानपुर जैन मंदिर व डाक बंगला—मा० नं० १६ के नजदीक मानपुर नामक गांव बसा

हुआ है। इस गांव के पास ही में माइल के पत्थर (Mile Stone) से एक या डेढ फर्लाङ्ग की दूरी पर रखी-किशन के मार्ग पर एक प्राचीन जैन मन्दिर है। यह मन्दिर प्रथम बहुत ही जीर्ण होगया था, इस कारण से सिरोही निवासी श्रीयुत् जवानमलजी सिंघी ने बहुत परिश्रम करके श्रीसंघ की आर्थिक सहायता से करीब ४० वर्ष पूर्व इसका जीर्णोद्धार करवाया था। किन्तु जीर्णोद्धार के बाद आज दिन तक उसकी प्रतिष्ठा नहीं हुई। इस मन्दिर में श्री ऋषभदेव भगवान् की एक खण्डित मूर्त्ति है। उस पर सं० १५८५ का लेख है। यह मन्दिर मूल गंभारा, गूढ मण्डप, अग्रभाग में एक चौकी तथा भमती (परिक्रमा) के कोट से युक्त शिखरबंदी बना है। मन्दिर के दरवाजे के बाहर, मंदिर के हक्क की थोड़ीसी जमीन है, उसके मध्य में एक छोटीसी धर्मशाला थी, किन्तु वर्त्तमान में केवल भग्न दिवालें ही अवशेष हैं। इसके उपरान्त मन्दिर के अधिकार में एक अरट (कूआ) अवेड़ा, बाग तथा कृषि के योग्य चार बीघा जमीन भी है। कूए में पानी कम होजाने से बाग शुष्क होगया है। इस मन्दिर की व्यवस्था रोहिड़ा के श्रीसंघ के अधिकार में है। रोहिड़ा श्री संघ को इस विषय पर लक्ष देना चाहिये

तथा मन्दिर की प्रतिष्ठा और धर्मशाला की मरम्मत जल्दी करवाना चाहिये। इस मन्दिर से कुछ ही दूरी पर सिरोही स्टेट का एक डाक बँगला है। मानपुर से पैदल पगडंडी से नदी को पार करके जाने पर 'खराड़ी' एक माइल रहती है।

(६१) हृषीकेश (रखीकिशन)— मा० नं० १२-२ (शान्ति-आश्रम) के पास से पर्वत के मार्ग से करीब डेढ माईल जाने पर हृषीकेश का मन्दिर आता है। किन्तु इस मार्ग से जाने पर पहाड़ को लांघना पड़ता है. मार्ग विकट है। इसलिये शान्ति-आश्रम से बैलगाड़ी के मार्ग से करीब डेढ मील चल कर पश्चात् पहाड़ के किनारे किनारे दाहिने हाथ की पगदण्डी से करीब एक माईल जाने पर भद्रकाली का मन्दिर आता है। यहां से आबू पहाड़ की ओर करीब आधा माईल जाने पर आबू पहाड़ की तलहट्टी में हृषीकेश नाम से प्रसिद्ध एक प्राचीन विष्णु मन्दिर है। यह मन्दिर, तीनों बाजू पहाड़ से आवेष्टित होने से तथा सघन झाड़ी में होने से बिलकुल नजदीक जाने पर ही दृष्टि गोचर होता है। यह स्थल, रखीकिशन अथवा रिषिकिशन के नाम से भी पहिचाना जाता है।

इसके विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि—श्रीकृष्णजी मथुरा से द्वारका की ओर जाते हुए यहां आराम करने के

लिये ठहरे थे तथा इस मन्दिर को प्रथम अमरावती नगरी के राजा अंबरीश ने बनवाया था। यह मन्दिर काले मजबूत पत्थरों का बना हुआ है। मन्दिर की एक बाजू में मठ और धर्मशाला है। दूसरी बाजू कुण्ड अरट (कूप) तथा गौशाला है। यहां मंहत **नाथूरामदासजी** रहते हैं। प्रवासी आराम से यहां रात्रि-निवास कर सकता है। बर्तन ओढने बिछाने का सामान तथा सीधा आदि मंहतजी से मिल सकता है। इस मन्दिर के कम्पाउण्ड के बाहर बाजू में ही एक छोटासा शिवालय तथा कुण्ड है। उक्त दोनों मन्दिरों के पीछे की एक पर्वत श्रेणी (मगरी) पर दृष्टि को आकर्षित करने वाली एक सुन्दर बैठक है। लोग कहते हैं कि "**अम्बरीश** राजा इस बैठक पर बैठ के तपश्चर्या करता था।" हृषीकेश स्थल के चारों तरफ पुराने मकानातों के खण्डहेर यत्र तत्र नजर आते हैं। इनको लोग **अमरावती** के खण्हेर कहते हैं। मन्दिर चारों ओर से पर्वत श्रेणियों तथा झाड़ी जंगल आदि से वेष्टित होने से यहां का दृश्य मनोहर मालूम होता है।

(६२) भद्रकाली का मन्दिर तथा जैन मन्दिर का खण्डहेर—रखीकिशन के उसी मार्ग से आध मील पीछे रह जाने पर दाहिने हाथ की ओर नाले के किनारे

के ऊपर श्री भद्रकाली देवी का एक मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत ही जीर्ण शीर्ण हो गया था, इसलिये सिरोही के भूतपूर्व महाराव श्रीमान् केसरीसिंहजी साहब बाहादुरजी ने सत्तावीस हजार रुपये खर्च कर बिलकुल प्रारम्भ से नया बनवा कर उसकी प्रतिष्ठा सं० १९७९ में कराई है। श्रीभद्रकाली माता के मन्दिर के सामने नाले से बांएं हाथ की ओर एक जैन मन्दिर था। यह बिलकुल भूमिशायी हो गया है। अवशेष के चिह्न स्वरूप टुटी फुटी दीवालें आज भी खड़ी हैं।

(६२) उबरनी‡—भद्रकाली माता के मन्दिर से कच्चे रास्ते से आधा मील जाने पर उमरनी नामक एक प्राचीन गांव आता है। आबू के शिला लेखों के आधार से तथा प्राचीन तीर्थमाला आदि से ज्ञात होता है कि–प्रथम यह गांव बहुत बड़ा था। श्रावक के घर तथा जैन मन्दिर अच्छी संख्या में थे। वर्त्तमान में यह बिलकुल छोटासा गांव है और उसमें एक भी जैन मन्दिर या श्रावक का घर

---

‡ ट्रिग्नोमेट्रिकल सर्वे के नकशे में इस गांव का नाम उमरनी सिरोही राज्य के इतिहास में ऊमरणी। वि० सं० १२८७ के लूणवसहि के शिला लेख में उम्बरनी और प्राचीन तीर्थमाला संग्रह में ऊम्बरणी लिखा है।

नहीं है। गांव के बाहर चारों ओर खण्डहर तथा पुराने पत्थरों के ढेर मिट्टी से दबे पड़े हैं। इतिहास प्रेमिवर्ग श्रम पूर्वक खोज करें तो उनमें से जैन मन्दिरों के खण्डहर तथा प्राचीन शिला लेख आदि प्राप्त कर सकें, ऐसा सम्भव है। यहां के निवासियों का मन्तव्य है कि-"प्रथम रखीकिशन से लेकर उमरनी गाँव के आगे तक अमरावती नामक नगरी बसी हुई थी और इसीलिए इस गाँव का नाम 'उमरनी' हुआ है।" यहाँ से कच्चे मार्ग से एक मील जाने पर मानपुर आता है।

(६४) बनास-राजवाड़ा पुल—मा० नं० १६-२ के पास बनास नदी के ऊपर राजवाड़ा पुल नामक एक बड़ा पुल बना हुआ है। यह पुल वि० सं० १६४३ से ४५ तक में राजपूताना के रईस-राजा, महाराजा और जागीर-दारों की सहायता से बनवाया गया है। जब यह पुल नहीं था तब बैलगाड़ी, मोटर आदि वाहनों को इस मार्ग से जाना बड़ा कठिन होता था।

(६५) खराड़ी (आबूरोड)—‡ मानपुर से कच्ची सड़क से एक मील जाने पर तथा पक्की सड़क से डेढ मील जाने पर खराडी नामक गाँव आता है। आबूरोड

---

‡ देखो पृष्ठ ८.

स्टेशन के पास ही तथा बनास नदी के तट पर ही यह गाँव बसा हुआ है। सिरोही राज्य में सब से ज्यादा आबादी वाला यही कस्बा है। राजपूताना मालवा रेल्वे के आबू विभाग का यह मुख्य स्थान है। ६० वर्ष पूर्व यह एक छोटासा गाँव था किन्तु रेल्वे स्टेशन हो जाने से तथा आबू पर जाने की पक्की सड़क यहाँ से निकलने के कारण इस गाँव की आबादी बहुत बढ़गई है। सिरोही के नामदार महाराव ने यहाँ एक सुन्दर कोठी तथा एक बाग बनवाया है। गाँव में अजीमगंज निवासी राय बहादुर श्रीमान् बाबू बुद्धिसिंहजी दुधेड़िया की बनवाई हुई एक विशाल जैन श्वे० धर्मशाला है। इसमें एक जैन देरासर है। यहाँ पर यात्रियों के लिये सब प्रकार की व्यवस्था है। इस धर्मशाला की व्यवस्था अहमदाबाद निवासी लालभाई दलपतभाई वाले रखते हैं। इसके सन्मुख ही दिगम्बर जैन धर्मशाला और मंदिर तथा पीछे के हिस्से में हिन्दुओं की बड़ी धर्मशाला आदि हैं। मोटरों और गाड़ियों से आबू पर जाने वाले यात्रियों के लिये केवल यहाँ (खराड़ी) से ही रास्ता है। कुंभारीयाजी तथा अंबाजी को भी यहीं से जाना होता है।

(देलवाड़ा तथा आबू केम्प [सेनीटोरियम] से अणादरा)

(६६) आबूगेट (अणादरा पॉइंट)—देलवाड़ा से नामदार लींबड़ी दरबार की कोठी, कबर तथा नखी-तालाब के पास से पक्की सड़क द्वारा दो माइल जाने पर तथा आबू केम्प से नखी तालाब के पास होकर करीब एक माईल चलने पर यह स्थान आता है। यहां पानी की प्याऊ (परब) लगती है। यहां से अणादरा को जाने के लिये नीचे उतरने का मार्ग शुरु होता है, उसके आरंभ में ही मार्ग के दोनों ओर स्वाभाविक एक २ ऊँचा पत्थर खड़ा होने से दरवजे के समान दृश्य मालूम होता है और इसीलिये इस स्थान को लोग आबू-गेट अथवा अणा-दरा-गेट कहते हैं। कोई अणादरा पॉइन्ट के नाम से भी पहिचानते हैं।

(६७) गणपति का मन्दिर—आबूगेट के नजदीक दांयें हाथ की ओर कुछ ऊँची जमीन पर गणपति का एक छोटा मन्दिर है। गणेश चतुर्थी (भाद्रपद शुक्ला ४) को आबू के रहने वाले दर्शनार्थ वहां जाते हैं।

(६८) क्रेग पॉइन्ट (गुरुगुफा)—उपर्युक्त गणपति के मन्दिर से कुछ दूर, ऊपर जाने से एक गुफा आती है, जो क्रेगपाँइन्ट या गुरुगुफा के नाम से प्रसिद्ध है। नामदार लींबड़ी दरबार के बँगले के पास से भी गुरुगुफा को एक रास्ता जाता है।

गुरुगुफा—यह गुफा लींबडी दरबार की नई कोठी से लगभग मील भर से कुछ कम दूरी पर है। महान् योगीराज [illegible] श्री धर्मविजयजी महाराज का स्वर्गवास मांडोली में हुआ था, उस समय अग्नि संस्कार हुआ तब ध्वजा नहीं जली तथा उस स्थान पर जो सूखे चार लकड़े गाड़े गये, वे चार नीम में परिणत हो गये थे, जो अबतक खड़े हैं। अग्नि संस्कार के लिये अग्नि दी नहीं गई थी किन्तु अँगूठे में से अग्नि प्रज्वलित हुई थी। इस गुरुगुफा से मांडोली में अग्नि संस्कार का स्थान साफ दिखता है, इस कारण इसे गुरुगुफा कहते हैं। अंग्रेज लोग इसको क्रेग पाँइन्ट कहते हैं।

(६९) प्याऊ (परब)—आबूगेट से अणादरा की ओर क़रीब आधा उतार उतरने पर सघन झाड़ी-जंगल के मध्य में एक नाला आता है। उसके पास एक छप्पर में

देलवाड़ा जैन श्वेताम्बर कारखाने की तर्फ से पानी की प्याऊ रहती है। यहां की एकान्त शान्ति, शीतलजल, सुगंध पूर्ण वायु तथा वृक्षों में से निकलती हुई कोकिल आदि पक्षियों की मीठी आवाजें तथा यत्र तत्र कूदते हुए वानरों का टोला वगैरः २ प्रवासी के दिल को आनंदित बनाते हैं।

(७०-७१) **अणादरा तलहट्टी और डाक बँगला**—आबूगेट से करीब तीन मील का उतार तय करने पर आबू की तलहट्टी आती है। यहां से **अणादरा** गांव नजदीक में होने से इसको **अणादरा** तलहट्टी कहते हैं। यहां राज की चौकी बैठती है। देलवाड़ा जैन श्वेताम्बर कारखाना की तर्फ से पानी की प्याऊ, भीलों की ५-७ झोंपड़ियाँ तथा कूआ आदि हैं, और जैन श्वेताम्बर धर्मशाला के लिये मकानात भी बनवाये जा रहे हैं। यहां से अणादरा की तर्फ कच्चे मार्ग से आधा मील जाने पर सिरोही स्टेट का एक डाक बँगला आता है।

(७२) **अणादरा**‡—अणादरा तलहट्टी से पश्चिम की तर्फ कच्चे मार्ग से करीब दो माइल जाने पर **अणादरा**

‡ देखो पृष्ठ ६—७।

नामक प्राचीन गांव आता है। प्राचीन शिलालेखों में तथा ग्रन्थों में इस गांव को नाम हणाद्रा अथवा हडादरा आदि नजर आते हैं और इनमें दिये हुए वर्णनों से मालूम होता है कि-प्रथम यहां श्रावकों के घर तथा जैन मन्दिर अच्छी तादाद में होंगे। वर्त्तमान में यहां श्री आदीश्वर प्रभु का प्राचीन और विशाल एक ही मन्दिर है जिसका हाल में ही जीर्णोद्धार हुआ है। मन्दिर के पास में दो उपाश्रय तथा अहमदाबाद निवासी सेठ हठीभाई की बनवाई हुई एक धर्मशाला है। श्रावकों के घर ३५ हैं। सार्वजनिक धर्मशाला, सूर्यनारायण का मन्दिर और पोस्ट-ऑफिस वगैरः हैं। यहां प्रथम अच्छी आबादी थी किन्तु आबूरोड स्टेशन तथा वहां से आबू को जाने की पक्की सड़क होजाने से यहां की आबादी कम होगई है।

आबू के ढाल और नीचे के भाग के स्थान

(७३-७४) **गौमुख और वशिष्ठाश्रम**—वशिष्ठाश्रम, देलवाड़े से पांच मील और कैम्प से चार मील दूर है। आबू कैम्प से आबूरोड की सड़क के मील नं० १ के पास ईदगाह है। वहाँ से इस सड़क को छोड़कर गौमुखजी के रास्ते पर लगभग दो मील जाने के बाद

हनुमानजी का मंदिर आता है। देलवाड़े से जानेवाले लोग आबू कैम्प में होकर उपर्युक्त रास्ते से जा सकते हैं। अथवा देलवाड़े से सीधे आबूरोड जाने के लिये दो मील लम्बी नई सड़क बनी है। इस सड़क पर दो मील चलने के बाद आबू कैम्प की (ओर की) सड़क से एक दो फर्लांग जाने पर वही ईदगाह आती है। यहां से इस सड़क को छोड़कर गौमुख के रास्ते से लगभग दो मील चलने के बाद हनुमानजी का मंदिर आता है। वहाँ से लगभग एक मील दूर गौमुख है।

हनुमान मंदिर से थोड़ा चलने के बाद ७०० सीढ़ियाँ नीचे उतरने की हैं। हनुमान मंदिर के (बाद के) रास्ते के चारों तरफ आम, करौंदा, केतकी, मोगरा आदि वृक्षों व लताओं की सघन झाड़ियों की छाया व सुगंधित शीतल वायु चढ़ने उतरने वालों के श्रम को दूर करती हैं। सात सौ सीढ़ियाँ उतरने के बाद एक पक्का कुंड मिलता है। इस कुंड के किनारे पर पत्थर के बने हुए गाय के मुख में से बारहों महीने पानी आता रहता है। इसी कारण से यह स्थान गौमुख अथवा गौमुखी गंगा के नाम से प्रसिद्ध है। इस कुंड के पास कोटेश्वर महादेव की दो छोटी देहरियाँ हैं। गौमुख से जरा नीचे 'वशिष्ठाश्रम' नाम का प्रसिद्ध
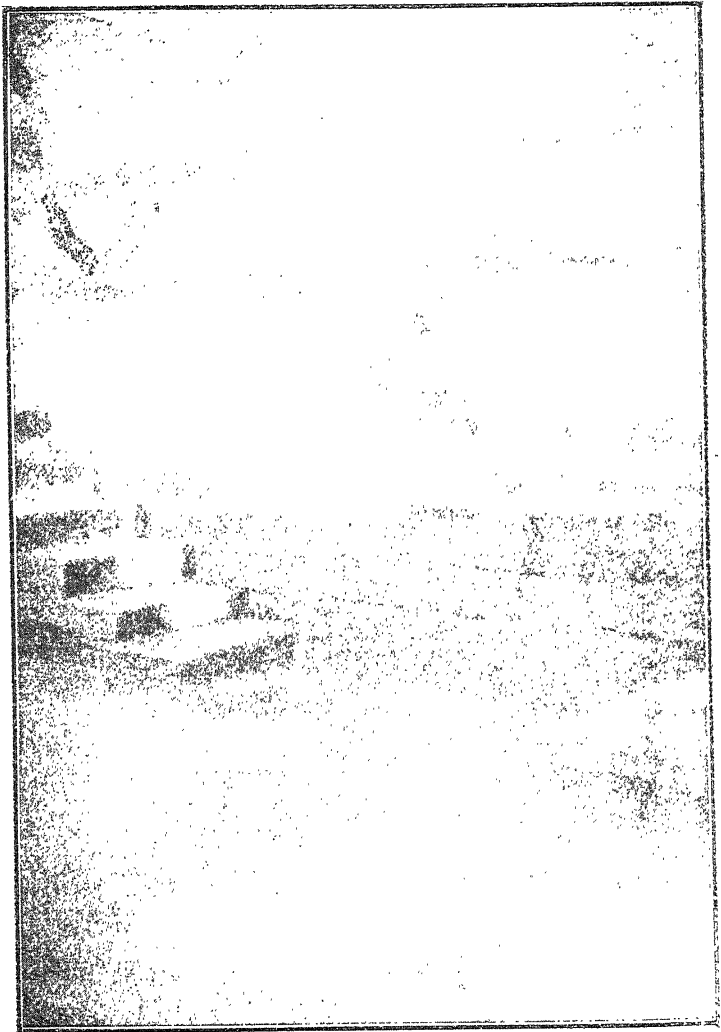
स्थान है (यहाँ वशिष्ठ ऋषि‡ का प्राचीन§ मंदिर है)। इस मंदिर के, बीच में वशिष्ठ ऋषिजी की मूर्त्ति है। इनकी एक ओर रामचन्द्रजी की व दूसरी ओर लक्ष्मणजी की मूर्त्ति है तथा यहाँ पर वशिष्ठजी की पत्नी अरुन्धती और कपिलमुनि की भी मूर्त्तियाँ हैं।

इस मंदिर के मूल गम्भारे के बाहर दाहिने हिस्से में वशिष्ठजी की नन्दिनी कामधेनु (गाय) की वाछिये युक्त संगमरमर की मूर्त्ति है। मन्दिर के सामने पित्तल की एक खड़ी मूर्त्ति है। कई लोग इसको इन्द्र और कई आबू के परमार राजा धारावर्ष की मूर्त्ति बतलाते हैं। इस मन्दिर में वशिष्ठ ऋषि का प्रसिद्ध अग्निकुण्ड है। राजपूत लोग मानते हैं कि—"परमार, पडिहार, सौलंकी

---

‡ वशिष्ठजी, राम-लक्ष्मण के गुरु थे, जो आबू पर्वत पर तपस्या करते थे। विशेष के लिये इसी पुस्तक का पृष्ठ ४-९. देखो

§ वशिष्ठजी का यह मन्दिर चन्द्रावती के चौहाण महाराव लुंभाजी के पुत्र महाराव तेजसिंह के पुत्र कान्हड़देव के समय में, लगभग वि० सं० १३९४ में बना था। महाराव कान्हडदेव ने इस मन्दिर को वीरवाड़ा नामक गांव अर्पण किया था। महाराव कान्हड़देव के पिता महाराव तेजसिंह ने भी वशिष्ठाश्रम के लिये झाबटूं (झांबटूं), ज्यातूली और तेजलपुर (तेलपुर)-ये तीन गांव भेट किये थे। कान्हड़देव के पुत्र सामन्तसिंह ने भी इस मन्दिर में लुहुंली, छापुली (सापोल) और किरणिया ये तीन गांव भेंट किये थे।

और चौहाण वंशों के मूल पुरुष इस कुंड में से पैदा हुए हैं‡।" वशिष्ठजी के मन्दिर के पास वराह अवतार, शेष-शायी (शेषनाग पर सोये हुए) नारायण, सूर्य्य, विष्णु, लक्ष्मी आदि देव-देवियाँ तथा भक्त मनुष्यों की मूर्त्तियाँ हैं। इनमें की कई एक मूर्त्तियों पर वि० सं० १३०० के आसपास के संक्षिप्त लेख हैं। मंदिर के दरवाजे के पास दीवार में दो लेख हैं। इनमें का एक वि० सं० १३९४ वैशाख शुक्ला १० का, चंद्रावती के चौहाण महाराव तेजसिंह के पुत्र कान्हड़देव के समय का है और दूसरा वि० सं० १५०६ का, महाराणा कुंभा का है। ये दोनों लेख छप चुके हैं। दरवाजे के पास के एक ताख में एक और लेख है, उस पर से मालूम होता है कि—वि० सं० १८७५ में सिरोही दरबार ने इन मंदिरों का जीर्णोद्धार व धर्मशाला कराई और सदावर्त्त देना शुरू किया।

मंदिर के पास आश्रम है। उसमें साधु-सन्त रहते हैं। यहाँ के महन्त, मुसाफिरों को रसोई के लिये बर्त्तन एवं सीधा-सामान वगैरह जो साधन चाहिये, देते हैं। यहाँ बहुत लोग गोठ करने के लिये आते हैं। आश्रम के पास के द्राक्ष की बेलों के मंडप, चारों तरफ के झाड़ी, जंगल

---

‡ देखो पृष्ठ ४।

और पहाड़ के दर्रे आदि प्राकृतिक दृश्य आनन्ददायक हैं। यहाँ प्रति वर्ष आषाढ शुक्ला १५ का मेला भरता है। राजपूताना होटल से गौमुख लगभग चार मील दूर है।

(७५) **जमदग्नि आश्रम**—वशिष्ठाश्रम से लगभग दो-तीन फर्लांग नीचे **जमदग्नि आश्रम** है। रास्ता विकट है। यहाँ पर खास देखने लायक कुछ नहीं है।

(७६) **गौतमाश्रम**—वशिष्ठाश्रम से लगभग तीन मील पश्चिम में जाने के बाद कई पक्की सीढियां उतरने से गौतम ऋषि का **आश्रम** आता है। यहां गौतम ऋषि का छोटा मन्दिर है। इसमें विष्णु की मूर्त्ति के पास गौतम और उसकी स्त्री आहिल्या की मूर्त्तियां हैं। मंदिर के बाहर एक लेख है, जिस में लिखा है कि—'ये सीढ़ियां महाराव **उदयसिंह** के राज्यकाल में वि० सं० १६१३ वैशाख सुदि ३ को चंपाबाई व पार्वती बाई ने बनवाई।'

(७७) **माधवाश्रम**—वशिष्ठाश्रम से नीचे करीब ८ मील पर **माधवाश्रम** होना बतलाया जाता है। यहां से आबूरोड (खराड़ी) लगभग दो मील शेष रहता है। वशिष्ठाश्रम से गौतमाश्रम और माधवाश्रम जाने के रास्ते बहुत विकट हैं। वशिष्ठाश्रम से माधवाश्रम और ऐसे ही

आबू पहाड़ के दूर दूर के ढाल उतरने के लिये चौकीदार को साथ लिये बिना किसी को साहस नहीं करना चाहिये।

(७८) **वास्थानजी**—आबू के उत्तरी ढाल में शेर गांव ‡ की तरफ बहुत नीचे उतरने के बाद **वास्थानजी** नाम का अत्यन्त रमणीय स्थान है। यहां १८ फीट लंबी, १२ फीट चौड़ी और ६ फीट ऊंची गुफा में विष्णुजी की मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के पास शिवलिंग, पार्वती और गणपति की मूर्त्तियां हैं। गुफा के बाहर गणेश, वराह अवतार, भैरव, ब्रह्मा आदि की मूर्त्तियाँ हैं। यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष हजारों आदमी दर्शन करने को आते हैं। आबू से वास्थानजी जाने का रास्ता बहुत विकट है। यहां जाने का सुगम मार्ग आबू के नीचे **ईसरा** § गांव के पास से है। ईसरा से लगभग दो मील दूर आबू पहाड़ है। वहां से आबू का कुछ चढाव चढने के बाद वास्थानजी नाम का स्थान आता है।

---

‡ आबू कैम्प से उत्तर पूर्व (ईशाण कोण) में लगभग १०-१२ मील दूर शेर नाम का गांव है।

§ 'ट्रिग्नॉमेट्रिकल' सर्वे के नकशे में इसका नाम ईसरि लिखा है। और 'सिरोही राज्य के इतिहास' में ईसरा लिखा है। यह गांव शेर से उत्तर में आबू पहाड़ की तलहटी से २ मील, सिरोही से दक्षिण में ११ मील वनास स्टेशन से पश्चिम में ११ मील, और पिंडवाड़ा स्टेशन से १७ मील होता है।

(७६) कोड़ीधज (कानरीधज)—अणादरा से लगभग २॥ मील और अणादरा तलेटी से करीब सवा-मील दूर, आबू के नीचे की एक टेकरी पर कोड़ीधज नाम का एक प्रसिद्ध सूर्य्य मन्दिर है। इसमें श्याम पत्थर की सूर्य्य की एक मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति मंदिर जितनी प्राचीन नहीं है। इस मन्दिर के सभा मण्डप के पास एक दूसरा छोटा सूर्य्य मंदिर है। उसमें सूर्य्य की मूर्त्ति है। इस मंदिर के द्वार के पास संगमरमर की अति प्राचीन एक सूर्य्य मूर्त्ति है। मालूम होता है कि-यह मूर्त्ति इस मन्दिर के समकालीन बनी हुई मूल मूर्त्ति हो और वह जीर्ण हो जाने से अलग कर मंदिर में नई मूर्त्ति स्थापन की गई हो।

इस मंदिर के सभा मण्डप के बीच में एक स्तंभ पर कमल की आकृति वाला सुंदर और फिरता हुआ सूर्य्य का चक्र रक्खा हुआ है। सभा मण्डप के स्तंभों पर वि० सं० १२०४ के दो लेख हैं और भी कई एक छोटे २ मंदिर हैं जिनमें देवियों और सूर्य्य आदि की मूर्त्तियाँ हैं। सभा मण्डप के कुछ नीचे एक खंडित शिव मंदिर है। इसमें शिवलिङ्ग के पास सूर्य्य, शेष शायी नारायण, विष्णु, हरगोरी आदि की मूर्त्तियाँ हैं। इस टेकरी के नीचे दूर दूर तक मकानों के चिह्न हैं और जगह जगह पर देव देवियों

की मूर्त्तियाँ पड़ी हैं। यहाँ से आधे मील की दूरी पर लाखाव (लाखावती) नामक प्राचीन नगरी के निशान हैं। यहाँ पर बड़ी-बड़ी ईंटें और पुरानी मूर्त्तियाँ उपलब्ध होती हैं। कोटिध्वज के पास श्रावण शुदि पूर्णिमा के दिन मेला लगता है।

(८०) **देवांगणजी**—कोड़ीधज से लगभग एक मील पर आबू के नीचे सघन वन और बांस की झाड़ियों से घिरे हुए एक नाले के पास कुछ ऊँचाई पर देवांगणजी का प्राचीन छोटा मन्दिर है। मन्दिर में जाने की सीढियाँ टूट जाने से वहाँ जाने में कठिनता होती है। इस मन्दिर में एक बड़ी विष्णु मूर्ति है। जो मन्दिर के जितनी प्राचीन नहीं है। मन्दिर के चौक में भींतों के पास कुछ मूर्त्तियाँ हैं, जिनमें दो नरसिंहावतार की, कई एक देवियों की व एक कमलासन पर बैठे हुए विष्णु (बुद्धावतार) की सुन्दर मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के दोनों हाथ जैन मूर्त्तियों की तरह पद्मासन पर रक्खे हुए हैं, और ऊपर के दो हाथों में कमल व शंख हैं।

इस मन्दिर के सामने नाले की दूसरी तरफ थोड़ी ऊँचाई पर शिवजी की त्रिमूर्त्ति का मन्दिर था। यद्यपि

यह मन्दिर टूट गया है, परन्तु शिवजी की त्रिमूर्त्ति अभी तक वहाँ मौजूद है। ‡

‡ इस प्रकरण के करीब २ छपजाने के समय "गुजरात" मासिक के पुस्तक १२, अङ्क २ में प्रकाशित श्रीमान् दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री का "आबू-अर्बुदगिरि"-नामक लेख मेरी निगाह में आया। इस अन्तिम प्रकरण में हिन्दू धर्म के बड़े २ तीर्थों का सविस्तार वर्णन तो दे ही दिया है, लेकिन उसमें नहीं दिये हुए कुछ छोटे २ तीर्थों और मन्दिरों के नाम उपर्युक्त लेख में देखने आये। उनका उल्लेख यहां पर किया जाता है।

(१-२) आबूरोड से (सड़क के रास्ते से) आबू जाते हुए बहुत चढ़ाव चढ़ने के बाद सूर्य्य कुण्ड और कर्णेश्वर महादेव आते हैं।

(३-६) कन्या कुमारी और रसिया बालम के मन्दिर से कुछ दूरी पर पंगुतीर्थ, अग्नितीर्थ पिंडारक तीर्थ और यज्ञेश्वर महादेव के दर्शन होते हैं।

(७) ओरीया गांव में श्री महावीर स्वामी के जिनालय के पास चक्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। आषाढी एकादशी को यहाँ मेला होता है।

(८) ओरिया से कुछ दूर जावाई गांव के पास नागतीर्थ है, यहां नाग पञ्चमी को मेला होता है।

(९-१०) ओरिया से गुरु दत्तात्रेय के स्थान को जाते हुए केदारेश्वर महादेव का स्थान और केदार कुण्ड आता है।

(११) नखी तालाव के पास कपालेश्वर महादेव का स्थान है।

———

उपसंहार

आबू पर्वत की यात्रा किस तरह करनी चाहिये—
आबू पर्वत के बिलकुल नीचे की चारों तरफ की टेकरियों से लेकर के ठेठ ऊँचे से ऊँचे शिखरों पर विद्यमान् जैन, वैष्णव, शैव वगैरह २ धर्मों के तीर्थ व मन्दिर; क्रिश्चियन, पारसी और मुसलमानों के धर्म-स्थान तथा कृत्रिम और प्राकृतिक प्राचीन दर्शनीय स्थान, जो मेरे देखने व जानने में आए उनका मैंने अपनी अल्प शक्ति के अनुसार इसमें वर्णन किया है। परन्तु इनके अतिरिक्त भी आबू पर अन्य छोटे बड़े धर्म-स्थान, मन्दिर, दर्शनीय पदार्थ, प्राचीन मकान, गुफायें, कुण्ड, नदी, नाले, चट्टानें आदि अनेक वस्तुएँ हैं। जिन लोगों को ये सब वस्तुएँ देखने की व जानने की इच्छा हो, उनको चाहिए कि वे वहां पर जाकर स्वयं देखें।

अन्त में वाचकों से एक बात कह देना चाहता हूँ कि आजकल रेल, मोटर आदि साधनों के कारण यात्रा करना बहुत ही आसान हो गया है। बल्कि यों कहना चाहिये कि यात्रा का कोई मूल्य ही नहीं रहा। शायद ही कोई लोग विचार करते होंगे कि—यात्रा है किस वस्तु का नाम? इसी का यह परिणाम हुआ है कि—"यात्रा, दृष्टि के

वेषय की पुष्टि करने का धन्धा माना जाता है। अर्थात् देश-विदेशों में भ्रमण करना, नये नये गांव, शहर व देशों को देखना, उन देशों के अजायबघर (Museum), चिड़ियाघर, कोर्ट-कचहरियाँ आदि सुन्दर मकान मनोहर ताल, नदी के घाट बाग-बगीचे, नाटक सिनेमा आदि देखना, देश विदेश के लोग व उनकी भाषा देख-सुनकर आनन्द मानना, विचारक दृष्टि से इन सब वस्तुओं में से भी तात्त्विक सार नहीं निकाल कर मात्र ऊपरी नजर से ये सब देखना और प्रसङ्गोपात मुख्य २ तीर्थ-स्थान, मन्दिर आदि के भी दर्शन कर लेना"।

यही यात्रा का अर्थ हो गया है और इसी कारण से यात्री लोग घर से निकलकर ताँगा, मोटरादि वाहनों के द्वारा स्टेशन पर पहुँचते हैं। वहाँ से रेल में सवार होते हैं। फिर स्टेशन पर उतर कर ताँगा, मोटर से तीर्थ-स्थान या धर्म-शाला में पहुँचकर मुकाम करते हैं। यदि पहाड़ पर चढ़ने की नौबत होती है तो डोली, पीनस आदि में बैठ कर मन्दिर तक पहुँच जाते हैं। वहां घण्टा आध घण्टा दर्शन पूजन में खर्च करके नीचे आकर भोजन आदि में आधा दिन निकाल देते हैं। शेष आधे दिन में शहर, बाजार और कुछ दर्शनीय स्थान देखने व माल वगैरह खरीदने

में बिता देते हैं। अगर तीर्थ-स्थान छोटे से गांव में हो तो लोग शेष समय सोने में अथवा विकथा में ‡ अथवा ताश आदि से खेलने में निकाल देते हैं।

तीर्थ-स्थान में यात्री शायद ही विचारते होंगे कि-"घर और व्यापार-रोजगार को छोड़ कर सैंकड़ों रुपये खर्च करके यहाँ तीर्थ यात्रा करने को आये हैं तो तीर्थ यात्रा, सेवा, पूजा, दर्शनादि धार्मिक कार्यों में हमने कितना काल व्यतीत किया? और कुतुहल तथा ऐश-आराम में कितना समय व्यतीत किया?" यदि इस तरह से थोड़ा बहुत भी विचार किया जाय तो जरूर मालूम हो कि-सच-मुच हमने कुछ नहीं किया। वास्तव में यदि तीर्थ यात्रा का सच्चा फल और सच्चा आनन्द लेना हो तो, धन्धा-रोजगार और घर आदि की चिन्ता को छोड़ कर पैर से तीर्थ यात्रा करनी चाहिये।

मार्ग में अथवा तीर्थ-स्थान में क्लेश, लड़ाई, झगड़ा, हंसी ठट्ठा, असत्य वचन, परनिन्दा और सप्त व्यसन आदि §

‡ (१) देश-विदेश के भले बुरे राजाओं की, (२) स्त्रियों की, (३) खाद्य पदार्थों की और (४) देश, शहर व गांवों की निरर्थक कथा-वार्ता या चर्चा, विकथा कहलाती है।

§ (१) मांस भक्षण, (२) मद्यपान, (३) शिकार करना (४) वेश्या गमन, (५) परस्त्री गमन, (६) चोरी और (७) जूआ—ये सात व्यसन कहलाते हैं।

दुर्गुणों का त्याग करना चाहिए। तीर्थ-स्थान में जाकर तीर्थ के निमित्त से कम से कम एक उपवास करके, विकथाओं को टाल कर, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह आदि दूषणों को दूर कर अपूर्व शान्ति के साथ तीर्थ के दर्शन पूजादि में प्रवृत होना चाहिये।

यथा शक्ति स्नात्र पूजा, अष्ट प्रकारी पूजा आदि बड़ी पूजायें, तथा अङ्ग रचना, रात्रि जागरण आदि महोत्सव पूर्वक भगवान् के गुणों को स्मरण करके शुद्ध भावना के साथ धर्म-ध्यान में तत्पर रहना चाहिये। प्रातः और संध्या समय में प्रतिक्रमण (संध्या-वन्दनादि) करना, अभक्ष्य तथा सचित (जीवमुक्त) भोजन का यथाशक्ति त्याग करना जीर्णोद्धार आदि कार्यों में सहायता करना, यदि मन्दिरों में आशातना होती हो तो उसको शान्ति पूर्वक दूर करना, स्वधर्मी बन्धुओं की भक्ति करना, साधर्मी-वात्सल्य करना, शक्ति अनुसार पांच प्रकार के दान (अभयदान, सुपात्रदान अनुकम्पादान उचितदान और कीर्त्तिदान) देना, तीर्थ-स्थान में रही हुई शिक्षण संस्थाओं की मदद करना, समय मिले तब २ धार्मिक पुस्तकें पढ़ना आदि, सच्चे यात्री के कर्त्तव्य हैं ौर इस प्रकार से जो वास्तविक फल सम्यक्त्व प्राप्ति, स्वर्गादि के सुख, कर्मों की निर्जरा और यावत् मोक्ष सुख को

प्राप्त कर सकता है । इसलिये प्रत्येक यात्रि को उपर्युक्त कथनानुसार कार्य करने के लिये उद्यमवंत होना चाहिये ।

कालेज, स्कूल और स्काउट के विद्यार्थी और अन्य प्रेत्तक आदि, जो दर्शनीय स्थानों को देखने के लिये जाते हैं, उनका पर्यटण तब ही सफल हो सकता है जब कि-वे अपने भ्रमण के समय शोध व खोल-खोज के साथ ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करें । तात्त्विक दृष्टि पूर्वक विचार करके अलौकिक तत्व हस्तगत करें । जीव और पुद्गल की प्राकृतिक अनंत शक्तियों का विचार करें । शान्तिपूर्ण स्थानों में जाकर क्रोधादि कषायों तथा हास्यादिक दुर्गुणों का त्याग करके कुछ न कुछ समय शुभ विचारों में व्यतीत करें । अपने में रहे हुए दुर्गुणों को छोड़ कर सद्गुणों की प्राप्ति के लिये कोशिश करें और समाज व देश की सेवा करके अपने का कृतार्थ करें । अपनी आत्मा को कर्मों से मुक्त करके उपायों को अमल में लावें । प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि प्राकृतिक दृश्यादि देखने में किया हुआ द्रव्य और समय का व्यय सफल हो, ऐसा प्रयत्न करें ।

———

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

जैन पारिभाषिक तथा अन्यान्य शब्दों के अर्थ

अट्ठाई महोत्सव—आठ दिन का महोत्सव।

अनशन—भोजनादि का त्याग।

अप्भुट्ठिअ खामना—गुरू को सुखशान्ति पूछना तथा अपराधों की माफी के साथ वंदन करना।

अवैतनिक—मुक्त।

अश्वमाल—अश्वों की पंक्ति।

अष्टांग नमस्कार—आठों अंगों को भूमि पर स्पर्श कर नमस्कार (दंडवत) करना।

आशातना—अविनय, अवज्ञा।

अंगरचना—जिन मूर्त्ति का शृंगार।

उत्कृष्ट कालीन—उत्कृष्ट समय जब कि १७० तीर्थंकर प्रभु विद्यमान होते हैं।

एक तीर्थी—जिन प्रभु की मूर्त्ति एक ही हो किन्तु चारों और परिकर हो वह मूर्त्ति।

एकलतीर्थी—परिकर रहित जिन मूर्त्ति

ओघा—'रजो हरण' रज को साफ करने के लिये तथा सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिये (फालियां) ऊन की दशियों

का एक गुच्छा जिसको जैन साधु हमेशा अपने पास रखते हैं।

कल्याणक—श्री तीर्थंकर के जन्मादि मांगलिक प्रसंग।

कसरत—बहुत।

काउसग्ग—ध्यान करने के लिये कायों को स्थिर कर देना (कायोत्सर्ग)।

काउसग्गिआ—ध्यान में खड़ी जिन मूर्त्ति।

कारखाना—कार्य्यालय।

कालकवलित—मृत्युवश।

केवलज्ञान—भूत, भविष्य और वर्त्तमान का संपूर्ण ज्ञान।

खत्तक—गोख, आला।

गजमाल—हाथियों की पंक्ति।

गणधर—तीर्थंकर प्रभु का मुख्य शिष्य।

गंभारा—वह स्थान जिसमें मूलनायक (मुख्य भगवान) विराजमान किये जाते हैं।

गराशादि—जागीर आदि।

गर्भागार—गंभारा।

गूढ मण्डप—गंभारे के पास का मण्डप।

चातुर्मास—वर्षा ऋतु के चार महिने।

चैत्यवंदन—स्तवन, स्तुति आदि से गुणगान करने के साथ जिन प्रभु को वन्दन करना।

चौमुखजी—मन्दिर में या समवसरण पर मूलनायकजी के स्थान पर चारों दिशाओं में एक एक जिन प्रभु की मूर्त्ति होती है।

चौबीसी—एक पत्थर या धातु पत्र में जिन प्रभु की २४ प्रतिमाएँ।

छः चौकी—गूढ़ मण्डप के बाहर का छः चौकी वाला मण्डप।

छद्मस्थ—सर्वज्ञत्व के पहिले की अवस्था।

जगती—देखो 'भमती'।

जाति स्मरण ज्ञान—पूर्व भव का स्मरण हो ऐसा ज्ञान।

जिन कल्पी—जैन साधु के उत्कृष्ट आचार के पालक।

जिन युग्म—प्रभु मूर्त्ति का युगल (दो मूर्त्तियाँ)।

जीर्णोद्धार—मरम्मत, सुधार काम।

टूंक—पर्वत का शिखर जिसके ऊपर देवालय हो।

टोल टैक्स—सड़क का कर।

ठवणी—लकड़ी की चौपाई जिस पर गुरु की स्थापना रखी जाती है।

तरपणी—जैन साधु का काष्ट का जल पात्र ।

तीनतीर्थी—जिसमें तीर्थंकर प्रभु की प्रतिमा के दोनों ओर दो खड़ी प्रतिमायें हों और परिकर हो ।

तोरण—महराब ।

त्रिक—तीन व्यक्ति ।

दीक्षा—संन्यास ।

देवकुलिका—देहरी ।

देहरी—छोटासा मन्दिर ।

द्वार मण्डप—दरवाजे के ऊपर का मण्डप ।

धर्म-चक्र—जिन प्रतिमा के परिकर की गद्दी के मध्य में जो खुदा हुआ रहता है तथा तीर्थंकर प्रभु के विहार में आगे रहने वाला चिह्न विशेष ।

नवकार—नमस्कार ।

नव चौकी—गूढ मण्डप के बाहर का नव चौकियों वाला मण्डप ।

नियाणा—इस भव के मेरे अमुक धर्म कार्य के प्रभाव से मुझे अमुक प्रकार का सुखादि मिले ऐसा विचार ।

निर्वाचन—पसंदगी ।

निर्वाण—मोक्ष-मुक्ति ।

पञ्च तीर्थी—तीन तीर्थी के परिकर में जिन प्रभु की खड़ी दो मूर्त्तियों के ऊपर बैठी हुई दो जिन प्रतिमायें।

पंच मौष्टिक लोच—पांच मुष्टि से शिर के सब बाल निकाल लेना।

पञ्चांग नमस्कार—दो हाथ, दो घुटने और मस्तक को भूमि पर लगा कर नमस्कार करना।

पट्ट—जिस पत्थर या धातु पत्र में एक से ज्यादा मूर्त्तियाँ हों वह।

पबासन—जिसके ऊपर जिन प्रभु की मूर्त्तियाँ विराजमान की जाती हैं।

परिकर—मूर्त्ति के चारों ओर का नकशी वाला हिस्सा।

पौषध—चार पहर अथवा आठ पहर तक का साधुव्रत।

पर्षदा—सभा।

प्रतिवासुदेव—वासुदेव का शत्रु।

प्रतिष्ठा—मन्दिर में मूर्त्तियों की धार्मिक क्रिया के साथ स्थापना।

प्राग्वाट्—पोरवाल ज्ञाति।

बलानक—जिन मन्दिर के द्वार के ऊपर का मंडप।

बिंब—मूर्त्ति।

भमती—मंदिर की प्रदक्षिणा, परिक्रमा, जगती।

भाता—नास्ता ।

भामण्डल—तेज का समूह (सूर्य्यमुखी) ।

महमूदी—मुसलमानी जमाने का एक प्रकार का चांदी का सिक्का ।

मातहत—आधीन, तावेदार ।

मुँहपत्ति—बोलते समय जीवों की रक्षार्थ मुख के आगे रखने के लिये छोटे वस्त्र का टुकड़ा ।

मूल गंभारा—देखो-गंभारा ।

मूलनायक—मंदिर की मुख्य प्रभु-प्रतिमा ।

यक्ष—व्यंतर देव की एक जाति ।

यति—साधु । वाहन आदि का उपयोग करने वाले तथा द्रव्य को पास रखने वाले । जैन साधुओं के भेद विशेष में 'यति' शब्द रूढ हो गया है ।

यंत्र—मंत्र विशेष जिसमें खुदा या लिखा हो ।

रंग मण्डप—सभा मण्डप ।

रजोहरण—ओघा शब्द देखो ।

रीक्षा—गाड़ी जो कि मजदूर खींचते हैं ।

लंछन—जिन प्रतिमाओं के चिह्न विशेष ।

लाग या लागा—कर ।

लुंचन—हाथ से बालों को उखाड़ना जो कि जैन साधु करते हैं।

वसहि—वसति, देव मंदिर।

वासक्षेप—सुगंधी चूर्ण (भुकी)

वासुदेव—भरत क्षेत्र के तीन खण्डों को भोगनेवाला।

विहरमान जिन—वर्त्तमान काल के तीर्थंकर जो कि हाल महाविदेह क्षेत्र में हैं।

विहार—परिभ्रमण।

शकुनिका—चील।

शाश्वत्—नित्य, अमर।

संघ—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं का समूह।

संघवी—संघपति।

सप्तक्षेत्र—धर्म के सात स्थान, (मूर्त्ति, मंदिर, ज्ञान साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका)।

सभामंडप—मंदिर का बड़ा मंडप।

समवसरण—संपूर्ण अनुकूलता वाली, देवों से रचित तीर्थंकर प्रभु की विशाल-दिव्य व्याख्यान शाला।

सामायिक—राग-द्वेष रहित होके दो घड़ी (४८ मिनिट) तक समभाव में रहना।

साधर्मीवात्सल्य—समान (अपना) धर्म पालन करने वालों की भक्ति करना।

साधारण खाता—जिस खाते का द्रव्य सभी धर्म कार्य में लगे उसको साधारण खाता कहते हैं।

साष्टांग नमस्कार—'अष्टांग नमस्कार' देखो।

सिलावट—पत्थर को घड़ने वाला।

सिंहमाल—सिंहों की पंक्ति।

सुरहि—दान पत्रादि के खुदे हुए लेख का पत्थर जिसके ऊपर बछिया सहित गौ और सूर्य-चंद्र खुदे हुए होते हैं।

सूरि—आचार्य्य, धर्म गुरुओं के नायक।

स्थविर कल्पी—धार्मिक व्यवहार मार्ग को अनुसरण करने वाले जैन साधु।

स्थापनाचार्य्य—आचार्य्य महाराज-गुरु का स्थापन जिस वस्तु विशेष में किया जाता है।

स्नात्र महोत्सव—इन्द्रादि से किया हुआ तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेकोत्सव।

परिशिष्ट २

सांकेतिक चिन्हों का परिचय

[   ] ऐसे कौंस में मूलनायक भगवान् का जो नाम लिखा है वह पबासन के लेख के आधार से लिखा गया है।

(   ) ऐसे कौंस में मूलनायक भगवान् का जो नाम लिखा गया है वह दरवाजे के लेख के आधार से लिखा गया है।

तथा

कौंस के सिवाय जहाँ मूलनायकजी का नाम लिखा गया है वह वर्त्तमान में विराजित मूलनायकजी का नाम है।

जहाँ मूलनायकजी का नाम नहीं लिखा है वहाँ समझना चाहिये कि वह निश्चित नहीं हो सका है।

* विमल वसहि की जिस देहरी की बारसाख पर सुन्दर नकशी है वहां देहरी के वर्णन के प्रारम्भ में उपरोक्त चिह्न दिये गये हैं। जहाँ उक्त चिह्न न हों उस देहरी की बारसाख में सामान्य नकशी समझना चाहिये।

लूणवसहि में प्रायः प्रत्येक देहरी की बारसाख पर बिलकुल सामान्य नकशी है।

† भव्य मूर्त्तियाँ तथा अत्यन्त मनोहर नकशी वाली चीजें जो कि फोटु खींचने के योग्य मुझे नजर आई उस चीज के पास उपरोक्त चिह्न दिया गया है।

परिशिष्ट—३

सोलह विद्यादेवियों के वर्ण, वाहन, चिन्ह आदि

नं.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	दाहिने हाथ की चीजें	बांये हाथ की चीजें
१	रोहिणी	सफेद	गौ	४	माला, शंख	बाण, धनुष्य
२	प्रज्ञप्ति	,,	मयूर	४	शस्ति, वरदान	बीजोरा, शस्ति
३	वज्रशृंखला	,,	पद्म	४	शृंखला, वरदान	कमल, शृंखला
४	वज्रांकुशी	पीत	गज	४	वरदान, वज्र	बीजोरा, अंकुश
५	अप्रतिचक्रा	,,	गरुड़	४	चक्र, चक्र	चक्र, चक्र
६	पुरुषदत्ता	,,	भैंस	४	वरदान, तलवार	बीजोरा, ढाल
७	काली	कृष्ण	पद्म	४	माला, गदा	वज्र, अभयदान
८	महाकाली	,,	पुरुष	४	माला, वज्र	अभयदान, घंटा
९	गौरी	पीत	गोधा	४	वरदान, मूशल	माला, कमल
१०	गांधारी	नील	कमल	४	,, ,,	अभयदान, अंकुश
११	सर्वास्त्र-महाज्वाला	सफेद	वराह	४	शस्त्र, शस्त्र	शस्त्र, शस्त्र
१२	मानवी	कृष्ण	कमल	४	वरदान, पाश	माला, सिंहासन
१३	वैरोट्या	,,	सर्प	४	खड्ग, सर्प	ढाल, सर्प
१४	अच्छुप्ता	पीत	अश्व	४	,, बाण	बाण, खड्ग
१५	मानसी	सफेद	हंस	४	वरदान, वज्र	माला, वज्र
१६	महामानसी	,,	सिंह	४	,, खड्ग	कुंडिका, ढाल

परिशिष्ट ४

आज्ञाएँ

१—चमड़े के बूंट की आज्ञा—
तारीख १०-१०-१९१३ ।

२—दर्शकों के नियम और सूचना
तारीख ३-३-१९१९ ।

True Copy.

Office of the Magistrate of Abu.

No. 2591 G. of 1913.

To

THE GENERAL SECRETARIES,

SHRI JAIN SHWETAMBER CONFERENCE,

Pydhonie, BOMBAY.

Dated Mount Abu, the 10th October 1913.

Dear Sir,

Please refer to the correspondence ending with my No. 2237, dated the 1st, September 1913, regarding the wearing of boots and shoes by visitors to the Dilwara Temples Mount Abu.

I am now to inform you that the Government of India are of opinion that visitors to the temples should remove their leather boots or shoes on entering as desired by the temple authorities, who should now be instructed in that sense and directed to provide for visitors a sufficient number of felt of canvas shoes to meet with ordinary requirements.

This concession now granted by the Government of India applies solely to Dilwara Temples

and in no way affects the usage regarding footwear prevalent in Jain or Hindu Temples in other parts of India.

Yours faithfully,

(Sd.) W. G. NEALE, CAPTAIN, I. A.,
Magistrate of Abu.

आबू के मजिस्ट्रेट का ऑफिस

नं० २५९१ जी. १९१३.

सेवा में,

जनरल सैक्रेटरियान्,
श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स,
पायधूनी, मुम्बई ।

तारीख १० अक्टूबर १९१३ मुकाम आबू

श्रीमान् !

आबू पर्वतीय देलवाड़ा मंदिरों के दर्शक लोगों के बूट अथवा जूते पहनने के सम्बन्ध में तारीख १ सितम्बर सन् १९१३ ई०, नं० २२३७ वाले पत्र व्यवहार के साथ मेरे इस पत्र का सम्बन्ध है ।

अब मुझे सूचना करनी है कि भारतीय सरकार का यह मत है कि मंदिर के व्यवस्थापकों की इच्छानुसार

मंदिर में प्रवेश करते समय दर्शक लोगों को चाहिये कि वे चमड़े के बूट अथवा जूते बाहिर उतारें तथा मंदिर के व्यवस्थापकों को कह दिया जाय कि वे साधारण आवश्यकानुसार कैनवास के जूते वहां तैयार रखें।

भारतीय सरकार की यह रियायत देलवाड़ा के मंदिरों के लिये ही है परन्तु भारतवर्ष के किसी भी दूसरे प्रदेश के जैन तथा हिन्दु मंदिरों के लिये जूता पहनने के रिवाज में किसी भी प्रकार से प्रभाविक नहीं होगा।

आपका विश्वासु—
(द०) डबल्यु० जी० नील कैप्टन आई० ए०
आबू का मजिस्ट्रेट.

जैन कान्फ्रेन्स हेरेल्ड (पु० नं० ६ अङ्क ११, नवम्बर १६१३, पृ० ४४८) से अनुवादित।

Rules for Admission to the Dilwara Temples.

1. Parties wishing to visit the Dilwara temples will, on application on the prescribed form (to be obtained at the Rajputana hotel and Dak-bungalow) be furnished with a pass, authorising their admittance. These passes to be given up on entrance.

2. Non-commissioned officers and soldiers visiting the temples will do so under the charge of a non-commissioned officers, who will be responsible for the party. He will be furnished with a pass specifying the number to be admitted.

3. Visitors will be admitted to the temples between the hours of 12 noon and 6 p. m.

4. All parts of the temples may be freely visited with the following exceptions:—

(*a*) The Shrines of the temples and the raised platforms immediately in front of them, in the centre of each of the court yards.

(*b*) The enterior of the cells opening from the galleries which form quadrangles.

5. Visitors must remove their boots or shoes, if made wholly or in part of leather before entering the temples if requested to do so by the temple authorities, who will provide other footwear not made of leather.

6. No eatables or drinkables to be taken within the outer walls which enclose the temples. Smoking in the temples strictly prohibited.

7. Sticks and Arms to be left out side.

8. All complaints to be addressed to the Magistrate, Abu.

(Sd.) ILLEGIBLE,
CAPTAIN, I. A.,
Magistrate, Abu.

देलवाड़ा के मंदिरों में प्रवेश करने के नियम।

१—जिनको देलवाड़ा के मन्दिरों का निरीक्षण करने का हो उनको अर्जी के फॉर्म जो कि राजपूताना होटल अथवा डाक बंगले से मिल सकते हैं उन पर अरजी भेजना चाहिए। तत्पश्चात् उनको प्रवेश के लिये एक पास (Pass) दिया जायगा जो कि प्रवेश करने के समय देना होगा।

२—नन कमिशण्ड ऑफिसर और सिपाही जिस ऑफिसर के नैतृत्व में जो ऑफिसर पार्टी के लिये जिम्मेदार होगा, मन्दिर देखने को जा सकेंगे। और उस अफसर का संख्या सूचक एक पास दिया जायगा।

३—निरीक्षण करने वाले मध्याह्न के बारह से लेकर शाम के ६ बजे तक ही प्रवेश कर सकेंगे।

४—निम्न लिखित स्थलों को छोड़कर मन्दिर के अन्य विभाग अच्छी तरह से देख सकेंगे।

(ए) गर्भागार के मध्य में आई हुई मन्दिर की प्रतिमायें तथा उनकी पीठिकायें अर्थात् नव चौकी रंग मंडप आदि।

(बी) चौक की भमती देहरियों का भीतरी हिस्सा।

५—मन्दिर के कार्य्यकर्त्ताओं के कहने पर चमड़े के या कुछ भाग में चमड़े से बने हुए जूते (Shoes) उतार देना होगा। वहाँ पर चमड़े से रहित जूते पहिनने के लिये दिये जावेंगे।

६—मन्दिर के भीतर कोई भी खाद्य और पेय पदार्थ नहीं ले जा सकेंगे।

७—शस्त्र तथा छड़ी (लकड़ी) बाहर रख देनी चाहिए।

८—यदि कोई शिकायत हो तो आबू के मजिस्ट्रेट से करना चाहिये।

हस्ताक्षर
आबू मजिस्ट्रेट.

— —

Office of the District Magistrate of Mount Abu.

NOTICE.

Dated the Mount Abu, 3rd March, 1919.

Visitors are enjoined to show due respect on entering Dilwara Temples and should allow themselves to be guided by the advice of the Temple attendents.

Leather boots or shoes must be removed and replaced by the footgear provided for the purpose by the Temple authorities.

(Sd.) H. C. GREENFIELD,
District Magistrate of Abu.

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट माउण्ट आबू का ऑफिस

नोटिस

३ मार्च १६१६, माउण्ट आबू

प्रेक्षकों को देलवाड़ा में प्रवेश करने के समय योग्य मान दर्शाना होगा तथा मन्दिरों के कर्मचारियों की सूचना के मुताबिक चलना होगा।

चमड़े के जूते निकाल कर मन्दिर के कार्यकर्त्ताओं से दिये हुए, बिना चमड़े के जूते पहिनना चाहिए।

(द०) एच. सी. ग्रीनफील्ड.
डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, आबू

Copy of letter No. 4231/199 D. M. 32, dated the 2nd December 1932, from the District Magistrate, Mount Abu, to the President of the Managing Committee, Abu Delwara Temples, Sirohi.

With reference to your letter No. 464/1932, dated the 28th September 1932, I have the honour to say that I fully consent with the suggestions contained in your letter and am having the words "For European only" printed in red ink on all the passes issued by me. With regard to the addition of these words on the notice boards in the temple will you please let me know when it would be convenient for me to send a painter to do the work.

नकल चिट्ठी नम्बर ४२३१-१९९ डी. एम. ३२, तारीख २ दिसम्बर १९३२ डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट आबू की तरफ से बनाम प्रमुख-व्यवस्थापक कमिटी, आबू देलवाड़ा मन्दिर; सिरोही.

बसिलसिले आपकी चिट्ठी नंबर ४६४/१९३२ तारीख २८ सितम्बर १९३२, मेरा यह कहना है कि आपकी लिखित तजवीज के साथ मैं पूरी तौर से सहमत हूं और पास जो के यहां से मेरी तरफ से जारी किये जायेंगे, उन पर 'फॉर यूरोपियन ओन्ली' (मात्र अंग्रेजों के लिये) इतने शब्द मैं लाल श्याही से छपवा रहा हूं। कृपा कर यह लिखें कि इन शब्दों को मन्दिर के नोटिस बोर्ड पर लिखने के लिये रङ्गसाज को किस समय भेजना ठीक होगा।

परिशिष्ठ ५

देलवाड़े के जैन मन्दिरों के विषय में कुछ अभिप्राय

"It was nearly noon when I cleared the Pass of Sitala Mata, and as the bluff head of Mount Abu opened upon me, my *heart beat with joy*, as with the sage of Syracuse I exclaimed " **'Eureka'**.

* * * * * * *

" The design and execution of this shrine, and all its accessories are on the model of the preceding, which, however, as a whole, it surpasses. It has *more simple majesty*, the fluted columns sustaining the Mandap (portico) are loftier, and the vaulted interior is fully equal to the other in richness of sculpture and superior to it in execution, which is more free and in finer taste."

"The dome in the centre is the most striking feature and a magnificent piece of work, and has a pendant, cylindrical in form and about three feet in length, that is a perfect gem," and "which

where it drops from the ceiling appears like a cluster of the half-disclosed Lotus, whose cups are so thin, so transparent, and so accurately wrought, that it fixes the eyes in admiration."

COL. TOD.

मैं जब शीतला माता के घाट से चला, तब मध्याह्न था और जब आबू की ऊँची टेकरी दृष्टिगोचर हुई तब मेरा हृदय आनन्द से नाच रहा था और सीराक्युभ के (प्रसिद्ध) ऋषि की तरह 'ऑयरेका' (जिसको खोजता था वह मिला) ऐसी आवाज लगाई।

इस मंदिर की तरज और उठाव और शृङ्गार संबन्धी प्रथम जो वर्णन किया गया है वैसा ही मगर बढ़कर है। प्रथम से ज्यादा सादा मगर विशेष शोभायमान है। मंडप को उठाने वाले खम्भे बहुत ऊँचे हैं और गुम्बज का भीतरी हिस्सा, नक्शी की विपुलता की अपेक्षा से समान है परन्तु उसकी कारीगरी जो कि ज्यादा उच्च कोटि की तथा विशेष स्वतंत्र है वह ज्यादा बढ़ करके है।

मध्य का गुम्बज लक्ष को खींचने वाला और शिल्प-कला के अत्यन्त मनोहर नमूने रूप है। उसके मध्य भाग से एक पेन्डेण्ट (गुम्बज के मध्य भाग में उसके साथ

लगे हुए पत्थर की, काच के झाड़ के आकार की चीज) जो कि लम्ब वर्तुलाकार वाला और तीन फीट लम्बा है, वह वास्तविक में एक रत्न समान है। वह जिस स्थान पर उस गुम्बज में से लटकता है, वहां वह अर्द्ध विकसित कमल के समूह जैसा मालूम होता है, जिसके पत्ते इतने पतले, इतने पारदर्शी और इतनी सूक्ष्म नक्शी वाले हैं कि जिससे हमारे नेत्र आश्चर्य्य के साथ वहां पर टकटकी लगाए रहते हैं।

कर्नल टॉड.

Amongst all this lavish display from the sculptor's chisel, two Temples *viz.*, those of Adinath and Nemnath, stand out as pre-eminent and specially deserving of notice and praise, both being entirely of white marble *and carved with all the delicacy and richness of ornament which the resources of Indian art at the time of their creation could devise.* The amount of ornamental detail spread over these structures in the minutely carved decoration of ceilings, doorways, pillars, panels and niches, is *simply marvellious*, while the crisp, thin translucent, shall like treatment of the

marble *surpasses anything seen elsewhere, and some of the* designs are just dreams of beauty. The general plan of the Temples, too, with its recesses and corrodor, lends itself very happily in bright and shade with every change in the sun's position.

COL., ERSKIN.

शिल्पकला की कारीगरी के इस विशाल प्रदर्शन में खास करके दो मंदिर अर्थात् आदिनाथ तथा नेमनाथ के मन्दिर अपूर्व ध्यान देने योग्य तथा प्रशंसा के योग्य हैं। ये दोनों मंदिर सफेद संगमरमर के और उस काल में जब कि ये निर्माण किये गये थे, उतने शिल्पकला के साधन जो खोज कर सकते हैं, उतनी सूक्ष्मता से तथा भांत २ की विविधता के साथ बनाये गये हैं। इन इमारतों में सौंदर्य की सूक्ष्मता का, तथा गुम्बज तोरण, स्तंभ, छत और गोख (आला) की सूक्ष्म नक्शी की सुन्दरता में जो विशेषता नजर आती है वह वास्तविक में अद्भुत है। आरस में दृष्टिगोचर होने वाला बरड, पतला, पारदर्शक तथा शंख के जैसा नक्शी काम, अन्य स्थानों में देखने में आता है, उस काम से यह बढ़कर है। कितनीक डिजाइनें तो वास्तविक में सौंदर्य के (साक्षात्) स्वप्न के जैसी हैं। प्रकाशवन्त धूप में, मंदिर की सामान्य

बनावट भी अपने गोख व भमती के साथ बहुत सुन्दर मालूम होती है और सूर्य की गति के परिवर्त्तन से वहां प्रकाश और छाया का विविध असर होता है।

कर्नल एरस्किन.

It hangs from the centre more like a lustre of crystal drops than a solid mass of marble, and is finished with a delicacy of detail and appropriateness of ornament which is probably unsurpassed by any similar example to be found anywhere else. Those introduced by the Gothic Architects in Henry the Seventh's chapel at Westminister, or at Oxford, are coarse clumsy in comparison.

MR. FERGUESSON,
The Eminent Archeologist.

वह आरस के एक ठोस समूह के बजाय एक रत्न विन्दुओं के गुच्छे के समान मध्य भाग से लटकता है और उस सूक्ष्म नकशी को ऐसी बारीकाई से और डिजाइन को इस योग्यता से बनाया है कि इस प्रकार का नमूना किसी भी जगह इससे बढ़ कर नहीं होगा। वेस्टमिनिस्टर के

सप्तम हेनरी की देहरी में अथवा ऑक्सफोर्ड में गॉथिक शिल्पियों के रक्खे हुए नमूने (Samples) आबू के उपर्युक्त नमूने से भी उतरते हुए और (शिल्प की दृष्टि से) बेडौल हैं ।

मि. फरग्युसन.
एक प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता

"There are two palaces, Umeer (Amber) and Jaipur, surpassing all which I have seen of the Kremlin, or heard of the Alhambra.................. *and the Jain Temples of Aboo..................rank above them all.*"

BISHOP HEBER.

मैंने जो कुछ क्रेमलिन (रशिया में मोस्को ग्राम के राज्यगढ) में देखा अथवा अलहंब्रा (दक्षिण स्पेन में सेरेसीन जाति की बनाई हुई एक इमारत) सम्बन्धी सुना, उससे अंबेर और जैपुर ज्यादा अच्छे स्थान हैं । ....और आबू के जैन मन्दिर...............सब से बढकर हैं ।

बिशॉप हेबर.

विमलशाह द्वारा निर्माण किया हुआ देलवाड़े का बड़ा देवालय समस्त भारत में शिल्प विद्या का सर्वोत्तम नमूना माना जाता है। देलवाड़े के मन्दिर केवल जैन मन्दिर ही नहीं हैं किन्तु वे सभी गुजराती की अतीत गौरवशीलता की अपूर्व प्रतिकृतियाँ हैं। उनके एक-एक तोरण से, गुम्बज से, स्तंभ और गवाक्षों से गुजरात की अपूर्व कला, शोख और लक्ष्मी की अप्रतिहत धारा बहती नजर आती है। ऐसी अपूर्व कृत्तियाँ निर्माण कराने वाली और उनको उत्तेजन देने वाली प्रजा का साहित्य और रसज्ञता उस समय के अनुरूप ही होना चाहिये।

*　　*　　*　　*　　*

देलवाड़ा के मंदिर

देलवाड़े में कुल पांच मन्दिर हैं। उनमें से दो के सदृश समस्त हिन्द में एक भी मन्दिर नहीं है। इनमें प्रथम मन्दिर आदिनाथ तीर्थंकर का है। शिलालेख द्वारा ज्ञात होता है कि विमलशाह ने यह मन्दिर ई० सन् १०३२ में बनवाया था। इस मन्दिर में आदिनाथ की एक भव्य मूर्त्ति है। चक्षुओं के स्थान पर रत्न लगे हुए हैं। बाहर से देखने पर मन्दिर बिलकुल सामान्य नजर आता है और

निरिक्षकों को उसकी आन्तरिक भव्यता का खयाल कभी भी नहीं आ सकता। इसके सामने ही नेमिनाथ तीर्थंकर का मन्दिर है। उसको वस्तुपाल और तेजपाल नामक दो भाईओं ने ई० सन् १२३१ में बनवाया था।

हमारे असाधारण स्थापत्य में से, अवशेष रूप से रहे हुए आबू-देलवाड़ा के ये देवालय आज भी गुर्जर संस्कृति के तादृश मूर्त्त स्वरूप को बतलाते हैं। युरोपवासियों में उनकी ओर सबसे प्रथम निगाह फेंकने वाला 'कर्नल टॉड' इन मन्दिरों का मुकाबला महान् मुगल सम्राट् शाहजहाँ की हृदयेश्वरी मुमताज की आरामगाह ताज महल से करता है और अन्त में वह लिखता है कि—दोनों का सौंदर्य ऐसा अलौकिक है कि किसी का किसी के साथ मुकाबला नहीं हो सकता। दोनों में स्वगत विशेषतायें हैं। उसका माप प्रत्येक अपनी बुद्धि अनुकूल निकाल सकता है।

किन्तु हम देलवाड़े के मन्दिरों में और उसके इतिहास में ताज से भी बढ़कर एक विचित्र विशेषता देख सकते हैं। ताज अनन्य पत्नी प्रेम से बनवाया गया है। देलवाड़े के मन्दिर जैनों की भक्ति, कर्म करने पर भी अद्भुत विराग और अपरिमित दान-शीलता से बनवाये गये हैं। ताज उसके चारों तर्फ के मकानात, बाग, नदी आदि दृश्यों की

समग्रता में ही रम्य नजर आता है। देलवाड़े के अन्दर से एक-एक स्तंभ, घुम्मट, गोख या तोरण अलग-अलग देखो या साथ में देखो रम्य ही नजर आते हैं। ताज में ऐसा नहीं है। ताज अर्थात् संगमरमर का विराट-खिलौना देलवाड़ा अर्थात् एक मनोहर आभूषण। ताज अर्थात् एक महासाम्राज्य के मेज पर का सुन्दर पेपर वेट है। देलवाड़े के मन्दिर अर्थात् गुर्जरी के लावण्यपुर में वृद्धि करने वाले सुन्दर कर्णपुर (Ear-ring) हैं। ताज की रंग विरंगी जड़ाऊ काम की नवीनता को निकाल देने पर केवल शिल्प विद्या और नक्शी में देलवाड़ा की रम्य नकशी उससे बढ़ जाती है। कभी-कभी नवीनता समय भेद से भी हो सकती है। उन दोनों महा मन्दिरों के समय में पांच सदियों का अन्तर पड़ा है। देलवाड़े के मन्दिर पांच सौ साल से ज़्यादा प्राचीन हैं, इस बात का विस्मर्ण न होना चाहिए। सबसे महत्व की वस्तु यह है कि ताज के निर्माण में समग्र भारतवर्ष की लक्ष्मी खड़ी है जब कि देलवाड़ा एक गुजराती व्यौपारी ने बनवाया है। ताज के पत्थरों में राजसत्ता की (वेठ) शक्ति के निश्वास भरे हैं। देलवाड़ा में गुर्जर वैश्यों की उदारता से उत्पन्न शिल्पियों के आशीर्वाद हैं और इसी कारण से सत्ता के भय से निर्मुक्त इन शिल्पियों ने स्वयं

एक मन्दिर बना कर इस सौंदर्य्य की सरिता में वृद्धि की है। ताज के मजदूरों को महनत के पूरे पैसे भी नहीं मिले। एक का निर्माता-महान् सम्राट, अन्य का एक गुजराती व्यापारी है। जिस संस्कृति ने ऐसे नर पैदा किये हैं उसकी मंगलमयी महत्ता आज दिन तक कायम है।

(रत्नमणीराव भीमराव)

'कुमार'—मासिक, अङ्क-२८, पृष्ठ-५६
(माह सं० १६८३, वर्ष ४, अङ्क-२)

गुजरात का अप्रतिम शिल्प

देलवाड़े के जैन मन्दिर में संगमरमर का एक गुम्बज

गुजरात ने भूतकाल में कला और शिल्प का समादर करने में तथा धर्म तत्व के साथ उसका मंगल योग करने में कैसी उच्च संस्कारिता बताई है तथा कितनी लच्-लूट दौलत खर्च की है, इन बातों को आबू देलवाड़ा के मन्दिर प्रत्यच्च बतलाते हैं। आबू के पर्वत पर एक सुन्दर दृष्य में स्थित यह मन्दिरों का छोटासा समुच्चय कला की

एक छोटीसी प्रदर्शनी जैसी मालूम होती है किन्तु उसके हार्द का शिल्प वैभव विश्व की अप्रतिम कृत्तियों की पंक्ति में गौरव पूर्ण स्थान पा चुका है। कुशल में भी कुशल कारीगर को स्तब्ध बनानेवाली कोमलता पूर्ण नकशी देखते देखते नेत्र तृप्ति से श्रमित हो जाते हैं, मगर देखना कम नहीं होता। इतनी कारीगरी वहां के प्रत्येक गुम्बज में इतनी ऊँचाई पर कैसे स्थिर हुई होगी यह कल्पना ही दृष्टी को मूढ बनाती है। मोम में भी दुष्कर ऐसी नकशी आरस में लटकती जब नजर आती है तब इस युग की कला प्राप्ति का हिसाब शून्य ही नजर आता है। ऊपर बनाया हुआ पुतलियों का छोटा गुम्बज केवल ६ फीट चौड़ाई का होगा किन्तु उसमें स्थित आकृतियों में नृत्य की जो तनमनाट भरी विविधता नजर आती है उससे यह मालूम होता है कि पत्थर के जड़त्व को तिलांजली देकर प्रत्येक आकृतियां सजीव भाव की स्वतंत्रता का आस्वाद कर रही हैं। ऊपर के चित्र को चौतर्फ से घुमा कर देखने पर भी प्रत्येक आकृति का अङ्ग भङ्ग (नृत्य भाव) अन्य से अद्वितीय सुरेख तथा समतोलन से पूर्ण दृष्टि गोचर होता है। मनुष्य देह की इतनी विविधता पूर्ण लीलाओं का दृष्य और उन लीलाओं को निर्जीव

त्थरों में अमर बनाने वाला सृष्टा-शिल्पी अनेक ातब्दियों के व्यतीत होने पर भी आज हमारा हृदय उत्साहपूर्ण सन्मान को प्राप्त होता है।

('कुमार' मासिक अङ्क-६७, पृष्ठ २४८, अषाढ १९८५)

'आबू, अर्बुदगिरि'

देलवाड़े के जैन मन्दिर पश्चिम हिन्द के स्थापत्य के उत्तमोत्तम नमूने स्वरूप हैं बल्कि समस्त हिन्द के हिन्दू स्थापत्य के उत्तम नमूने स्वरूप भी कह सकते है। स्थापत्य कला कोविंद इन मन्दिरों को तथा ताज महल को एक समान गिनते हैं। ताज महल के निर्माण में एक प्रेमी शहनशाह का खजाना तथा एक महान् साम्राज्य की अपार साधन संपत्ति खर्च की गई है, जब कि आबू के ये मन्दिर धर्म प्रेम से गुजरात के पौरवाल मंत्रियों ने बनवाये हैं। अलबत्त, इन मंत्रियों ने अगनित द्रव्य खर्च किया है और उस समय की गुजरात की समृद्धि ही ऐसी थी जो कि इन मंत्रियों ने १०-१२ मील से सफेद आरस मँगवाकर, पर्वत के ऊपर इतनी ऊँचाई पर ले जाकर यह रमणीय सृष्टि पैदा की है।

विमलवसहि का सविस्तर वर्णन करने का यह स्थल नहीं है किन्तु गुजरात के एक स्थापित कलाभिज्ञ सत्य कहते हैं कि यह देवल उसके अणिशुद्ध नक़्शी काम से प्रेक्षक को विचार में गर्क कर देता है। उसकी कल्पना में यह मनुष्य कृति होगी ऐसी कल्पना नहीं आ सकती। ये इतने तो पूर्ण हैं कि कुछ भी परिवर्त्तन ही नहीं हो सकता। इस मन्दिर का सामान्य 'प्लान' गिरिनार अथवा अन्य जैन मन्दिरों के जैसा है। मध्य में मुख्य मन्दिर और आस-पास में छोटी देहरियाँ हैं। मन्दिर के मुख्य प्रवेश द्वार के अग्र-भाग में एक मडण्प है। इस मन्दिर के आगे छः खम्भे वाला एक लम्बचौरस कमरा है, जिसमें विमलशाह अपने कुटुम्ब को मन्दिर की ओर ले जाता है। यह कल्पना नवीन है। ये हाथियों की मूर्त्तियाँ कद में छोटी किन्तु प्रमाणयुक्त हैं और हौदे का काम भी बहुत अच्छा है।

सामान्य रीति से मन्दिर भीतर से बहुत ही सुशोभित और कारीगरी से भरपूर है किन्तु बाहर से बिलकुल सादे नजर आते हैं। इन मन्दिरों को बाहर से देखने पर उसकी आन्तरिक शोभा का जरा भी खयाल नहीं आता। विमान का शिखर भी नीचा और कढंगा है। ये मंदिर कद में छोटे रक्खे गये हैं क्योंकि उतनी ऊँचाई पर बहुत बड़े मंदिर

बनवाना शक्य न था। क्योंकि आबू के पर्वत पर धरती-कम्प होता रहता है। इस बात का ज्ञान वहां के निर्माता को अवश्य होना चाहिये। इसलिये ऊँचाई या विशालता से मन्दिर भव्य बनाने के बजाय जितनी हो सकी उतनी कला भीतर के काम में खर्च की।

इस मन्दिर में सब से ज्यादा नकशी का काम मण्डप में देखने में आता है। मण्डप की ऊंचाई प्रमाणयुक्त है और उसके भीतर के सफेद आरस के नकशी काम से इतना तो मनोहर मालूम होता है कि प्रेक्षक स्तब्ध हो जाता है। मण्डप का गुम्बज अष्टकोणाकार में खंभों के ऊपर इतना नकशी काम किया है कि उसकी नकशी देखते देखते थक जाते हैं और इतना महीन नकशी काम के लिये आज के मनुष्य को धैर्य भी नहीं रह सकता। मण्डप में खड़े रहने पर चारों ओर का हिस्सा नकशी काम के शणगार से भरा नजर आता है। वह इतना तो बारीक है कि मोम के ढाँचे में बनाया मालूम होता है और उसकी अर्धपारदर्शक किनारी की मोटाई नजर नहीं आती। इसके बाद वस्तुपाल तेजपाल के मन्दिरों में नकशी काम विमल-शाह के मन्दिर से बहुत ही ज्यादा है। किन्तु कलाकी नजर से तत्वज्ञों का ऐसा अभिप्राय है कि विमलशाह का

मन्दिर मुसलमान के पहिले की स्थापत्य कला की सर्वोत्तमता बतलाता है।

इस तरह ताज महल के पीछे एक प्रेम पात्र स्त्री की याददास्त खड़ी है तो आबू के मन्दिरों के पीछे एक धर्मनिष्ट उदार चरित स्त्री की प्रेरणा है।

मण्डप के ऊपर का गुम्मज विमलशाह के मन्दिर के जैसा ही रक्खा है किन्तु उसके भीतर की नकशी का काम प्रथम से बढ़ कर है। गुम्बज के दूसरे थर से १६ बैठकों के ऊपर विद्यादेवियों की मूर्त्तियाँ रक्खी हैं। इस गुम्मज के बिलकुल मध्य भाग में एक लोलक किया है जो कि बहुत रमणीय माना जाता है। यह बहुत ही नाज़ुक है। गुलाब के बड़े पुष्प को उसकी डण्डी से सीधा पकड़ने से जैसा आकार होता है वैसा ही आकार उसका है। इस लोलक (Pendant) की समानता पर इङ्गलेण्ड के सप्तम हेनरी के समय के वेस्टमिनिस्टर के लोलक (Pendant) प्रमाण से रहित और भारी नजर आते हैं। इसकी सुन्दरता और सुकुमारता का सच्चा खयाल केवल देखने से ही आता है।

(मासिक, गुजरात, पुस्तक १२, अङ्क २)

शंका समाधान

जैनों में विश्वासपूर्वक माना जाता है कि विमलवसहि की लागत अठारह करोड़ तिरेपन लाख रुपये और लूणवसहि की लागत बारह करोड़ तिरेपन लाख रुपये हैं।

विमलवसहि और लूणवसहि इन दोनों मन्दिरों की लागत का मुकाबला करते एक प्रश्न स्वाभाविक उपस्थित होता है कि—इन दोनों मन्दिरों की कारीगरी आदि के काम में करीब २ समानता है। इसी प्रकार इसके बाद काम की सामग्री एकत्र करने का खर्च करीब २ समान होने पर भी इनके खर्च के आंकड़े में इतना फरक क्यों रहा ?

इस पर दीर्घ विचार करने से यह विदित होता है कि—एक मनुष्य हजारों प्रकार के प्रयत्न से नवीन आविष्कार करके नई चीज का आयोजन सब से प्रथम करता है। जब कि दूसरा मनुष्य इसी चीज का नमूना अपने सामने रख उसकी नकल करता है। इन दोनों मनुष्यों के परिश्रम और खर्च में बहुत फरक पड़ता है। यही बात उपरोक्त मन्दिरों के बनाने में भी हुई है।

विमलवसहि मन्दिर सब से प्रथम बना है वह तथा जिस और जितनी भूमि पर बना है उस जमीन को चौरस सोना-मोहर बिछा कर खरीदनी पड़ी थी।

इन कारणों से विमलवसहि मन्दिर के निर्माण में विशेष रुपया खर्च हुआ है।

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	४	से	और
७	१४	महावीर स्वामि	आदीश्वर भगवान्
८	१७	१॥	१
१८	१५	गुफ	गुफा
२१	१३	है (के आगे)	कार्यालय के सामने
२४	१७	सोना	सानी
२४	१८	ओरीसा	ओरिया
२७	६	सेनपति	सेनापति
३२	१६	देरी	देहरी
३५	१६	पूर्वक (के आगे)	चलने
३६	२०	है	होगी
३६	१८	खुनी	खिलजी
४२	१५	२	१
४८	१४	६	३
४६	११	६	५
६०	३	क	के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६०	६	उसके	उनके
१०६	११	बिंब (के आगे)	हैं
११२	१३	बाद उन (,,)	के बड़े भाई

उपोद्घात

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२३	१८	यो	को
२५	८	ह	है